ज्ञानदीप लावू जगी

पुणे नगर वाचन मंदिर

स्थापना : ७ फेब्रुवारी १८४८

email : pnvm1848@gmail.com
www.punenagarvachan.org

पुस्तकाचे नाव : जयवंशमहाकाव्यम्

लेखक : श्रीसीतारामकवि

प्रकाशक : राजपुताना विश्वविद्यालय, कलकत्ता

प्रकाशन वर्ष : १९५२

मूळ ग्रंथ प्रत : शिक्षण प्रसारक मंडळी, पुणे

पुणे नगर वाचन मंदिर

अंकेक्षण (डिजीटायझेशन) प्रकल्प
अंकेक्षण रूपांतर - २०२१

श्रीः

पर्वणीकरोपाह्वश्रीसीतारामकविविरचितं

जयवंशमहाकाव्यम्

जयपुरमहाराजसंस्कृतकालेजाध्यक्षेण

मीमांसान्यायकेसरिणा विद्यासागरेण

पं० पट्टाभिरामशास्त्रिणा

विरचितया भूमिकया विवृत्या च

विभूषितम्

891
Pat
6734

University of Rajputana
1947

D.V.POTDAR LIBRARY
S P COLLEGE
D00945

१९५२

श्रीः

पर्वणीकरोपाह्वश्रीसीतारामकविविरचितं

जयवंशमहाकाव्यम्

जयपुरमहाराजसंस्कृतकालेजाध्यक्षेण
मीमांसान्यायकेसरिणा विद्यासागरेण

पं० पट्टाभिरामशास्त्रिणा

विरचितया भूमिकया विवृत्या च
विभूषितम्

891 see-Pat
UNIVERSITY OF RAJPUTANA
1947

१९५२

मुद्रक :—
राजस्थान प्रिंटिङ्ग वर्क्स
जयपुर

श्रीमानर्सिहो जयवंशकेतुरम्बाकटाक्षेण विशुद्धकीर्तिः ।
जीव्याच्चिरं भूपतिचक्रचुञ्चुस्साहित्यसङ्गीतविनुन्नचेताः ॥

6734
891·Pat
2669

प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य हमारे देश की एक अमूल्य निधि है – जिसकी अगाधता के सम्बन्ध में सम्पूर्ण विश्व निर्विवाद है। हजारों वर्षों की विस्तृत सीमाओं को पार करते हुए इसे अनेक युग शासन और साम्राज्य देखने को मिले हैं एवं हमारे देश की सांस्कृतिक और साहित्यिक प्रवृत्तियों का यह सदा से ही जन्म–दाता रहा है। इसके सत्य, अहिंसा, शान्ति आदि नैतिक तत्व संसार को सदा से ही प्रभावित करते रहे हैं और इसी के अवलम्ब पर हमारे देश को "जगद्‌गुरु" कहलाने का गौरव प्राप्त हुआ है। ज्ञान विज्ञान की अनेक धाराओं पर इसके अनेक उपासकों ने प्रकाश डाला है, इसीलिए शाश्वत संघर्षों का सामना करते हुए भी इसे आज तक अमरत्व प्राप्त है। प्रत्येक राष्ट्र के नैतिक शिक्षणालय आज भी इसकी ओर महान् आशाओं के साथ निर्निमेष दृष्टि से ताक रहे हैं। हमारे देश की संस्कृति का तो यह केन्द्र-बिन्दु है ही । भारत के स्वर्णिम युग से इसका अटूट सम्बन्ध रहा है एवं आज भी राष्ट्र के उत्थान-विशेषतः सांस्कृतिक तथा नैतिक विकास के लिए इसकी उपयोगिता पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है।

काव्य का महत्व :—साहित्य के उत्तम अंग के रूप में सदा से ही काव्य की परिगणना होती रही है। काव्य एक आदर्श कवि–कर्म–विधान है—जो विधि के विधान से अनेक प्रकार की विशेषताओं के कारण समुन्नत है। उसकी रचना शक्ति स्रष्टा की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिशाली है और उसकी लेखनी विधाता की तूलिका की अपेक्षा कहीं अधिक कोमल एवं समर्थ है। यह उसका एक अमर विधान है–जो विधि की विनश्वर रचना को अविनश्वरता प्रदान करता है। यही एक ऐसा प्रेय मार्ग है–जो हमें माधुर्य के माध्यम से श्रेय तक पहुंचा सकता है। कवि

की इस सृष्टि में दुःख और सांसारिक चिन्ताओं के लिए कोई स्थान नहीं है। यह तो एक इस प्रकार की आह्लादमयी शाश्वत धारा है-जो रुला रुला कर भी आनन्द देती है। हमारा आदि-वाङ्मय इन्हीं विशेषताओं के कारण स्रष्टा को "कवि", एवं आचार्य मम्मट कवि को सर्व-तन्त्र-स्वतन्त्र कह कर सम्मानित करता है—

नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम् ।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती, भारती कवेर्जयति ॥

(काव्य-प्रकाश १ पृष्ठ)

संस्कृत साहित्य को इस प्रकार के सरस्वती के वरद सपूतों को अतिशय मात्रा में उत्पादित, लालित, पालित और फलित करने का पर्याप्त अवसर और गौरव प्राप्त हुआ है। कालिदास जैसे कुशल कलाकार भारवि जैसे अर्थ-विशेषज्ञ, दण्डी जैसे शब्दप्रयोग-शास्त्री एवं माघ जैसे चतुर चित्रकारों को जन्म देकर इसने केवल संस्कृत साहित्य ही नहीं, अपितु विश्व के वाङ्मय को विभूति-मय बनाया है। ये ही नहीं-अन्य भी अनेक रचना-पटु काव्य-लेखक अत्यधिक मात्रा में इस साहित्य की श्री-वृद्धि कर चुके हैं? किन्तु संसार की परिवर्तन-शीलता ने इसे भी नहीं छोड़ा व एक ऐसा समय आगया—जब कि दिन दिन इसके उपासकों की संख्या न्यूनता की ओर उन्मुख हो गई। ऐसे संकटमय समय में भी भारतीयता के परम उपासक एवं कर्त्तव्य-परायण कतिपय शासकों की कृपा से हमारी यह प्राचीन संपत्ति सुरक्षित रह सकी। गुणग्राही, कला के वास्तविक पुजारी इन नरेशों की वह उदारता-जिसने सैकड़ों कवियों को आश्रय और सम्मान देकर हमारे राष्ट्र की इस भारती का जीवन बचाया—युग युग तक के लिए प्रशंसा, यथार्थ कृतज्ञता और धन्यवाद की पात्र है। इस प्रकार के गण्यमान्य महापुरुषों

में जयपुर के नरेन्द्रों का प्रमुख स्थान रहा है। विशेषतः इसके निर्माता महाराजा जयसिंह की विद्वत्ता ज्योतिष यन्त्रालय के रूप में, गुण-ग्राहिता विद्वानों की सत्कृति व कलाप्रियता जयपत्तन निर्माण की पटुता में आज भी सारे विश्व को चमत्कृत कर रही है।

कवि–परिचय :—प्रस्तुत महाकाव्य उसी महामना के वंश का एक उज्ज्वल, गौरव एवं शौर्यपूर्ण इतिवृत है—जिसका विषय इसके अन्वर्थ नाम से ही विदित हो जाता है। महाराजा जयसिंह द्वितीय ने (१७४९ वि०) अपने शासन काल में अनेक कवियों, तांत्रिकों, याज्ञिकों एवं कलाकारों को अपनी राज्य सभा में उच्चतम पद, प्रतिष्ठा और वैभव प्रदान किया यही कारण था कि उनकी राज्य-सभा विलक्षण विलक्षण विचक्षणों एवं गुणियों से सुसंपन्न थी। इसी कोटि के वंशों में भट्ट पर्वणीकर एवं सम्राट पौंडरीक का स्थान प्रमुख है। सम्राट् पौंडरीक महान् याज्ञिक थे - एवं पर्वणीकर वंश के भट्ट सखाराम जी माधवसिंह जी प्रथम (जयसिंह जी के सुपुत्र) के गुरु थे—

"गुरु : सखाराम इति प्रतीतः" (जयवंश महाकाव्य १६ सर्ग २४)

महाराजा जयसिंह द्वितीय के समकालीन एवं इन्हीं सखाराम जी के अनुज भट्ट श्री सीताराम कवि ने प्रस्तुत काव्य की रचना की—इसी से हम इसके काल और प्रामाणिकता का सहज ही परिचय पा सकते हैं। स्थान स्थान पर स्वयं कवि ने ही अपना परिचय दिया है—

"आसीद्यस्य पराजितामरगुरुः श्रीलक्ष्मणाख्यः पिता।
माता यस्य सती सतीव्रतपरा यस्याग्रजौ भ्रातरौ॥
स्तः स्वन्ताधिपदाद्यजन्तजयतिप्राग्वर्तिरामाभिधौ।
रामास्यास्यकृतौ कवेरिह गतः सर्गोऽयमादिर्नवः॥

(जयवंश प्रथम सर्ग ४६ पद्य)

प्रसंगतः कवि ने दो अन्य भाइयों की ओर भी संकेत किया है— जिनका नाम सखाराम और जयराम था—

"आद्यः सखाराम इति प्रसिद्धो जयादिरामस्त्वपरः प्रतीतः ।
सीतादिरामस्त्वपरोऽथ सर्वे सर्वागमानाञ्च विचारदक्षाः ॥

(जयवंश दशम १६६)

अस्तु, संक्षेप में इन सब विवरणों से हम काल और कवि-परिचय के सम्बन्ध में स्वयं को एक प्रकाश में पाते हैं, क्योंकि इसके लिए कवि ने हमें पर्याप्त सामग्री प्रदान की है।

उपयुक्त कथानक :—जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है— अनेक शताब्दियों से संस्कृत साहित्य—विशेषतः कविताओं की धारा प्रतिहत थी। कोई भी महाकवि दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। नवीन नवीन कथानकों एवं विषयों पर साहित्यकारों की लेखनी नहीं चल रही थी—न इस ओर समाज की अभिरुचि थी–न समय का प्रवाह। एक सभ्यता इतर सभ्यता से आक्रान्त होने जा रही थी एवं उसके अवशेष अन्तिम श्वास गिन रहे थे। इस प्रकार के संक्रमण काल में प्रस्तुत महाकवि का पदार्पण होता है। उसकी लेखनी एक इस प्रकार के वंश पर चलती है—जिसका भारतवर्ष के इतिहास में सम्मान और वैभवपूर्ण स्थान रहा है। भारतीय विभिन्न साम्राज्यों के स्थापन, विस्तार एवं निर्माण में इस वंश के सपूतों का चिर-स्मरणीय योग रहा है। आज भी यहां का सौन्दर्य और वैभव हमें इस वंश की सम्पन्नता की साक्षी दे रहा है एवं इसकी कला, शिक्षा, धर्म और प्रजा-वत्सलता प्रत्येक विवेकशील मानव के मस्तक को कृतज्ञता-नत करती है। इस वंश की इन्हीं गौरव-गाथाओं और गरिमाओं से प्रभावित होकर इस महाकवि ने इसे अपने काव्य का कथानक बनाया है, अतः इस दृष्टि से इसकी उपादेयता और पूर्णता तर्क-संगत है।

शैली :—काव्य के आरम्भ से ही हम इस कवि की शैली में एक स्वाभाविक प्रवाह पाते हैं—जिससे काव्य में जीवन का संचार होता है। इस दिशा में कवि महाकवि कालिदास का ऋणी है। प्रथम सर्ग के द्वितीय तृतीय पद्य में :—

क्वासौ पदार्थो जयवंशनामा, क्वाहं विमूढोऽल्पमतिः प्रकामम्।
तद्वर्णनेच्छा मयि सेयमस्ति, सिन्धोस्तितीर्षेव लघुप्लवेन॥
अमन्दसम्बन्धिपदं लघीयानारोढुमिच्छाम्यतिमन्दबुद्धिः।
सेयं मदिच्छोच्चमहीरुहाणां पुष्पोच्चिचीषा खलु वामनस्य॥

हम महाकवि कालिदास के उस स्वाभाविक विनय का प्रदर्शन देखते हैं—जिसे उसने रघुवंश के प्रारम्भ में इन प्रभावपूर्ण शब्दों में अभिव्यक्त किया है—

"मन्दः कवियशः प्रार्थी, गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः॥

यही भाव, यही शैली और यही कल्पना यों के यों उपर्युक्त पद्यों में अवतीर्ण है। इसी ओर नहीं, परन्तु भाषा, अलंकार, छन्द आदि साहित्य के अंगों के क्षेत्र में भी कवि ने कालिदास के अनुकरण का प्रयास किया है-पर उसकी सफलता विवादास्पद है। भाषा में स्वाभाविक गति नहीं है, अपितु इसने उसे स्थान स्थान पर व्याकरण-संमत किन्तु क्लिष्ट और अप्रयुक्त शब्दों का उपन्यास कर अपने पांडित्य-प्रदर्शन का माध्यम बना लिया है। अलंकारों का प्रयोग भी रीतिकालीन प्रणाली की तरह कृत्रिमता और आडम्बर-पूर्ण है। सप्तम सर्ग में यमक इतनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया है कि अर्थाभिप्राय तक पहुंचना दुर्भर है —

"विदधतं दधतं च नवं वयः॥ ५४॥
प्रियतमासु तमासु महाहवः॥ ५५॥

दुरितकारित कारितदुर्गतिः ॥ ५६ ॥
अदहदुज्वलनो ज्वलनो महत् ॥ ५७ ॥
समुदिता मुदिता जलदालयः ॥ ५८ ॥

इस अनवरत गति से हम अनुमान लगा सकते हैं कि कवि की लेखनी कितने अलंकार-चमत्कार को रखती है। कहीं कहीं परिसंख्या का उपयोग भी मनोरम है—

रजस्वलात्वं वनितासु केवलं, न पुंसु धर्मैकपरेष्वधिष्ठितम् ॥
तमांसि रात्रौ न जनेषु केषुचिद्विरागितानर्हविधानकारिणि ॥
(तृतीय सर्ग ३३)

यहीं तक नहीं—त्रयोदश सर्ग में चित्र—बन्धक काव्य के विभिन्न चित्रों द्वारा उसने अपने कलापक्ष-कौशल के व्यापक अधिकार को व्यक्त किया है। यहाँ आकर कवि का शाब्दिक चमत्कार अतिशय उभर आता है। इस प्रसङ्ग में केवल एक एक दो दो वर्णों वाले पद भी लिखे गये हैं:—

परापररपारायराजजाररजाजराः ।
पाजापरारापजापाररराररारर ॥
(५८ पद्य १३ सर्ग)

कृत्वा कृतकृतः कृत्यकृती कृतिकृतीकृतः ।
कृमिकृत्याकृतः कृच्छ्रं, कृशः कृशकृपाकृतः ॥
(७२ पद्य १३ सर्ग)

किन्तु इन पटुताओं के प्रदर्शन में कलापक्ष को जितनी अधिक प्रधानता दी गई है—भावपक्ष उतना ही अधिक दुर्बल बन गया है।

महाकाव्यता :—जैसा कि इसके नाम से व्यक्त होता है—यह एक महाकाव्य है। "सर्गबन्धो महाकाव्यम्" इत्यादि आचार्य विश्वनाथ की परिभाषाओं के अनुरूप कवि ने इसमें महाकाव्य के सम्पूर्ण लक्षणों के क्रियान्वयन का प्रयत्न किया है-जिसमें इसे किसी सीमा तक सफलता भी मिली है। इसके १९ सर्ग इसी परंपरा पर लिखे हुए हैं—जिनमें षड्तुओं (१९ वें सर्ग में) जल व उद्यान क्रीडाओं, युद्धों, आश्रमों, तीर्थों, पर्वतों, यज्ञों, नगरों, दिग्विजयों एवं सामाजिक महोत्सवों का मनोरम वर्णन किया है। नायक महाराज जयसिंह और उनके वंशज नायकत्त्व के उपयुक्त गुणों से सम्पन्न हैं। किन्तु सम्पूर्ण बाह्य गुणों के रहते हुए भी हम इसमें मानव-जीवन की पूर्ण व्याख्या नहीं पाते-जो महाकाव्य का प्रमुख लक्षण है। रसात्मक प्रणाली भी-जो कि "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" के अनुसार काव्य की आत्मा है—इसमें संतोष-जनक स्थिति में नहीं है। किसी भी एक गणनीय रस की हम इसमें प्रधानता नहीं पाते—केवल अपनी अविकसित अवस्था एवं शान्त स्वरूप में वीर रस की धारा बह रही है। अतः महाकाव्य के उपयुक्त औपरिक सामग्री से सम्पन्न होने पर भी भावपक्ष की आत्मिकता, चरित्र निर्माण का उच्चतम संकेत एवं रसात्मकता का भंडार हम इसमें नहीं देखते— जिसके बिना यह एक निष्प्राण सा प्रतीत होता है।

ऐतिहासिकता :—वस्तुतः यह एक इतिवृत्त है। भारतीय साहित्य में इतिहास और साहित्य के समन्वय की प्रशस्त प्रक्रिया आदि काल से ही चली आ रही है। हमारे आदर्श ग्रंथ रामायण, महाभारत इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

आमेर राज्य के मूलोत्पादक सोढदेव से लेकर (१०२३संवत्) माधवसिंह प्रथम (१८००) तक के शासन काल का इसमें विस्तृत

वर्णन है। इसके गणनीय पुरुष मानसिंह प्रथम की वीरता इतिहास प्रसिद्ध है–उसकी काबुल विजय जयपुर के वैभव–विलास का पूर्व–रंग है। उसी ने जयपुर के राज्य को पंच रंगा (नीला, पीला, लाल, हरा, काला) झंडा प्रदान किया। ७० वर्ष की आयु में इस युद्ध निष्णात शूर ने ९५ युद्ध किये —

"सांगानेर को सांगो बाबो, जयपुर (चांदपोल) का हनुमान।
आमेर की शिला–देवी, लाया राजा मान॥"

मान की स्थायी देनों के सम्बन्ध में यह किंवदन्ती जयपुर के आबाल-वृद्धों तक सुविदित हैं। इसके अनन्तर--कालीन मिर्जा राजा जयसिंह प्रथम की गुण-ग्राहिता अतिशय विख्यात है—जिसने महाकवि बिहारी को आश्रय देकर उसके एक एक पद्य पर मोहरें प्रदान की थीं। जयसिंह द्वितीय की प्रतिभा तो देश काल की सीमा को भी पार कर चुकी है। यही भारत–का एक अपने काल का सर्वोत्तम महाराजा था–जो हिन्दी, फारसी, संस्कृत और ज्योतिष का अद्वितीय विद्वान् था। ऐतिहासिक कहते हैं—यह चौदह विद्याओं, ६४ कलाओं एवं १०८ अन्य सामान्य गुणों में निष्णात था। जयपुर की आतिश (अश्वशाला) तालकटोरा, गोविन्द–मन्दिर, चन्द्र–महल आदि इसकी वास्तु कला-प्रियता के प्रतीक हैं। इसने दिल्ली, काशी, उज्जैन एवं जयपुर में यन्त्रशालाओं का निर्माण करा कर ज्योतिष-विज्ञान को सर्व-प्रथम मूर्त्तता प्रदान की। गणित का तो यह स्वयं विशेषज्ञ था–पुर्तगाल से विशिष्ट मनीषियों को बुलाकर उसने ज्यौतिष-यन्त्रशाला का निरीक्षण कराया। पुंडरीक आचार्य की आचार्यता में वाजपेय-यज्ञ का अनुष्ठान कर इसने अपनी याज्ञिक श्रद्धा को क्रियान्वित किया। यह एक ऐसा महामना था–जो केवल गुणों का व्यसन रखता था। जयपुर को राजधानी बनाना आज भी उसकी दूरदर्शिता का साक्षी दे रहा है, एवं जयपुर का जो वैभव आज हमें दिखाई दे

रहा है–इसी प्रतिभाशाली की पृष्ठ भूमि पर अवस्थित है। किसी भी देश को ऐसे शासकों पर गर्व हो सकता है। जयसिंह के आत्मज माधवसिंह प्रथम ने रणथंभौर जैसे दुर्ग पर अधिकार, हवा-महल, माधवविलास और मोतीडूंगरी के महलों का निर्माण करा कर स्वयं को सपूत सिद्ध करने में कोई कमी न रखी। जयवंश के इसी क्रमिक उत्थान को कवि ने अपनी कल्पना के आधार पर किस मनोरम स्वरूप में उपस्थित किया है—यह एक दर्शनीय सुषमा है।

इतिहास और साहित्य :—इतिहास यथार्थ का पक्षपाती है और काव्य कल्पना का। यथार्थ और कल्पना दो विरोधी तत्व हैं—जिनका सामञ्जस्य किसी साधारण लेखनी द्वारा संभव नहीं है। यथार्थ की पराकाष्ठा अथवा नग्नता काव्य को नीरस बना देती है एवं कल्पना का उत्कर्ष इतिहास की वास्तविकता को नष्ट कर देता है। इसीलिए इतिवृत्तात्मक रचनाओं के लेखकों को विशेष सतर्क रहना पड़ता है। उन्हें इस धर्म-सङ्कट से निकालने के लिए दोनों ही पर समान नियन्त्रण रखना पड़ता है। यदि नियन्त्रण की यह संतुलन-शक्ति सूक्ष्म रूप में भी एक ओर अधिक झुक जाती है, तो वह रचना या तो ऐतिहासिक क्षेत्र में अथवा काव्य की दिशा में अपूर्ण रह जाती है। यहां आकर कवि न कवि ही रह जाता है और न ऐतिहासिक ही। इस सङ्कट पर अधिकार करने के लिए एक ईश्वरीय प्रतिभा की आवश्यकता होती है—जो अनेक नहीं, कुछ इने गिने कवियों को प्राप्त होती है—जिनका यश शाश्वत और प्रभाव अमर होता है।

जयवंश और उसके लेखक पर भी यही विषम परिस्थिति थी-जिसे कवि की कुशल लेखनी ने यथा-संभव पार करने का प्रयास किया है। पूर्ण रूप से तो नहीं, किन्तु सोढदेव से लेकर जयसिंह द्वितीय के

पुत्र माधवसिंह जी तक के नियत एवं इतिहास-संमत वर्णनों से हम उसे जहाँ एक ऐतिहासिक रूप म पाते हैं, वहाँ शृङ्गार के चाकचक्य, चूरमा, दाल, बाटी के आस्वाद, घाट और गलता के प्राकृतिक विभव, रण-चातुरी एवं नगर सौंदर्य के अङ्कन में एक सफल काव्यकार मानने में आपत्ति नहीं कर सकते। ऐतिहासिक तथ्य जितनी अधिक मात्रा में इस काव्य में हमें सत्य मिलते हैं, अन्य काव्यों में संभवतः उतने न हों। अतः काव्य और इतिहास के समन्वय के इस प्रशंसनीय प्रयत्न में संकीर्ण एवं संकेतित अपूर्णताएँ वस्तुतः अपूर्णताएँ नहीं हैं-वे तो एक तार्किक व्यायाम हैं। यह अवश्य है कि काव्य के चमत्कार में इतिहास हत-प्रभ हो गया है। संस्कृत साहित्य की इस सेवा और जयवंश के इस गरिमामय इतिवृत्त से परिचित कराने के कारण वस्तुतः कवि हमारी कृतज्ञता और सत्कृति का पात्र और उसका यह प्रयास अनुकरणीय है।

आभार-प्रदर्शन :—अस्तु, प्रस्तुत ग्रंथ का संपादन राजपूताना विश्वविद्यालय की ओर से मुझे सौंपा गया है। मैंने इसकी अन्य प्रतियों की प्राप्ति के लिए अत्यन्त प्रयत्न किये, पर कोई प्रति उपलब्ध न हो सकी। जिस पांडु-लिपि के आधार पर इसका संपादन किया गया-वह इतनी अधिक अशुद्ध थी-जिसे पर्याप्त मात्रा में शुद्ध करने पर भी इसमें अनेक अशुद्धियां रह गई हैं। इस त्रुटि के लिए मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ। परिशिष्ट में कुछ कठिन शब्दों के अर्थ भी संयुक्त करने का प्रयास मैंने किया है। आशा है, उससे अध्ययन में सहायता मिलेगी।

इसके प्रकाशन की स्वीकृति के लिए मैं राजपूताना विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० श्री महाजनी एवं राजस्थान-शिक्षा विभाग के अध्यक्ष डा० श्री मथुरालाल शर्मा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना अपना पुनीत

कर्त्तव्य मानता हूँ और विश्वास करता हूँ कि विश्वविद्यालय आगे भी संस्कृत-ग्रन्थों के उद्धार में अधिक से अधिक योग-दान करेगा। इसके संशोधन में मेरे प्रिय शिष्य श्री मंडन मिश्र शास्त्री ने पूर्ण सहायता प्रदान की है; मैं इसके लिए उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

स्वतन्त्रता दिवस १९५२ — विदुषां विधेयः—

कलकत्ता-विश्वविद्यालय — पट्टाभिराम शास्त्री

—:[❀]:—

महाराज जयसिंहजी द्वितीयः

❀ श्रीः ❀

श्रीसीतारामकविविरचितं जयवंशमहाकाव्यम्

प्रथमः सर्गः

प्रणम्य मातापितरौ गुरूणां शुभं पदाम्भोरुहयुग्ममस्मि।
वंशावलीं श्रीजयसिंहनाम्नो महीपतेः शासनया प्रवच्मि ॥१॥

क्वासौ पदार्थो जयवंशनामा क्वाहं विमूढोऽल्पमतिः प्रकामम्।
तद्वर्णनेच्छा मयि सेयमस्ति सिन्धोस्तितीर्षेव लघुप्लवेन ॥२॥

अमन्दसम्बन्धिपदं लघीयानारोढुमिच्छाम्यतिमन्दबुद्धिः।
सेयं मदिच्छोच्चमहीरुहाणां पुष्पोच्चिचीषा खलु वामनस्य ॥३॥

पूर्वप्रबन्धादवगत्य वृत्तं महीपतीनां जयवंशजानाम्।
बुद्धिं स्वकीयामनुसृत्य किञ्चित्प्रशंसितुं सत्वरमुद्यतोऽस्मि ॥४॥

तेषामनन्यप्रतिमप्रभाणां प्रभावमात्रानमिताखिलानाम्।
गुणोदया ये प्रथिता जगत्सु तेषां श्रुतेर्नोदनयोद्यमोऽयम् ॥५॥

पराक्रमक्रान्तदिगन्तचक्रो विभूतिभूतीकृतवज्रिभूतिः।
नीवृत्सु पूर्वं निषधाभिधेषु श्रीसोढदेवो नृपतिर्बभूव ॥६॥

यतः प्रतापोऽजनि बाहुवल्या सुशीलया भानुविभानुकारी।
दिगन्तचक्रेषु परप्रतापान् प्रताप्य भूयानतपत्स्वयं सः ॥७॥

राजाऽपि यो नैव रजस्वलोऽभून्नक्षत्रहन्ताऽपि तमोऽभिभूतः।
रिपूनसत्वान्व्यदधात्स्वयन्तु ससत्व एवाऽभवदुन्नताङ्गः ॥८॥

अपारपारावरपारपारि दुर्लङ्घशैलव्रजलङ्घि भूयः।
दिगन्तकान्ताजनगीयमानं यशो यदीयं परितः ससार॥ ९॥

पुरी यदीया निषधेषु रेजे देशेषु नाम्ना महती बरेली।
सौराज्यरम्या सुकृतेन पूर्णा पुरीं महेन्द्रस्य जिगाय सेयम्॥१०॥

यां योऽध्यतिष्ठत्स जनो न भेजे पदेऽपि लिप्सां ननु वासवीये।
अलब्धभोगैरपि यत्र भोगान्संसेवितुं नित्यमकारि वासः॥११॥

यामाश्रयद्भिः सततं बभाषे जनैरशेषैरितरेतरेण।
का द्यौरियं कैलबिलस्य पूर्वा लङ्काऽपि का काञ्चनमय्यपीति॥१२॥

युग्मम्

स्वर्गं गते स्वे पितरीशसिंहे स्वीयं गवालेरपदं वितीर्य।
स्वभागिनेयाय धनं द्विजेभ्यः स्थिते ससूनौ पुरि वै बरेल्याम्॥१३॥

वह्निद्विशून्येन्दुमिते कुमारः संवत्सरे कार्तिककृष्णपक्षे।
तिथौ दशम्यां पदमत्र पित्र्यं समृद्धमारादधितिष्ठति स्म॥१४॥

यस्मिन्प्रजाः शासति सोढदेवे के सस्मरुः पूर्वनृपं तु लोकाः।
लब्धे सुवर्णे विशदेऽग्नितापात्को वा मनुष्यो रजतं हि लिप्सुः॥१५॥

वर्णाश्च सर्वे निजधर्मसक्ता बभूवुरीषन्न ततो विचेलुः।
वर्णाश्रमाचारविदां नृपाणामौचित्यमेवैतदिदं न चित्रम्॥१६॥

सोऽयं नृपो धर्मपरः प्रतापी व्युवाह तां जादमनामराज्ञीम्।
या रूपलावण्यगुणैरशेषैरशेषकान्तागुणदर्पहन्त्री॥१७॥

तस्यामसौ दुर्लभनामधेयमुत्पादयामास सुतं सुशीलम्।
यः शैशवे विक्रमशालिनोऽरीनितस्ततो बाहुबलैर्जघान ॥१८॥

स पञ्चवारेशचवाणशीलारसीसुतां ? पद्ममुखीमुवाह।
बहून्विलासानमरेशयोग्यांस्तया रमण्या सह सम्बुभोज॥१९॥

स दुर्लभः स्वस्य पितुर्निदेशाद्द्योसाभिधेयां नगरीं ससेनः।
ग्रहीतुमुत्कस्य पराक्रमेण प्रतस्थिवान्वै बडगुर्जरीयाम्॥२०॥

द्वयोर्महद्युद्धमभूदशेषैः शस्त्रैः पुरोऽभ्यर्णमतीव घोरम्।
तान्गुर्जरान्विक्रमतोऽभिहत्य प्रसह्य पुर्यां स्वपदं न्यधत्त॥२१॥

आहूतवांस्तातमसौ पुरेऽस्मिन्नुपार्जिते विक्रमतः स्वकीयात्।
स सावरोधं समुपागतेन निजेन पित्रा सह संन्यवात्सीत्॥२२॥

चिरं वसंस्तत्र स यौवराज्यं भुञ्जन्कुमारो विचचार चित्ते।
सन्तीत्यनल्पा ह्यनुजीविराजाः स्थलं त्विदं नालमशेषपूर्त्यै॥२३॥

ग्रामीणलोका बलिनोऽध्यवात्सुर्यां तां कुमारो बलवान्ग्रहीतुम्।
प्राचीं प्रतस्थे बलमात्मनीनमादाय दूरे व्यवसायिनां किम्॥२४॥

तैस्सार्द्धमत्यन्तबलैः प्रवृत्ते रणे कुमारस्य जनैरतर्कि।
स्वर्गो मही किं यदि वा महीयं स्वर्गोऽद्य किं वोभयमेकमित्थम्॥२५॥

घोरे रणे ग्राम्यजनैः कुमारः खड्गैर्विदीर्णो भुवि सम्पपात।
बलं समस्तं समघानि शस्त्रैरस्त्रैरशेषैः प्रतिकूलदैवम्॥२६॥

इत्थं स्थिते रात्रिरभून्निशीथे देवी पुरोऽस्याविरभूद्दयालुः।
आपन्नदीनोद्धरणव्रतं यन्न देवतानामिदमस्ति चित्रम्॥२७॥

उत्तिष्ठ वत्सेति वचो निशम्य देव्याः कुमारः सहसोदतिष्ठत्।
उत्थाय तां बुद्ध्यनुसारमेव स्तोतुं प्रवृत्तो व्यथितोऽपि देवीम्॥२८॥

नमोऽस्तु ते देवि विशालनेत्रे ! कृपानिधे ! त्वं शरणागतान्नः।
पाहि प्रशंस्यासि महेन्द्रपूर्वैः सुरैर्न चेत्तर्हि कुतो मनुष्यैः॥२९॥

महेशपूर्वा अपि देवसङ्घा यामन्तरा विक्रमशालिनोऽपि।
न शक्नुवन्त्यल्पतमेऽपि कार्ये तां त्वामहं केवलमानतोऽस्मि॥३०॥

एवं स्तुता सा तमुवाच वाचं प्रसन्नमूर्तिः कृपयाभिषिक्ता।
भक्त्या प्रसीदेदपि शक्त्ययुक्तस्तद्युक्तिभाजस्तु तथाविधाः किम्॥३१॥

अस्याः प्रतीरे खलु वाणनद्या मूर्तिं मदीयां यमवोयनाम्नीम्।
विधाय संस्थाप्य यथावदेनां पूज्यामविच्छिन्नतया यजस्व॥३२॥

एवं कृते ते विजयो रणे स्यादरातयस्ते सकला विनाशम्।
एष्यन्ति ते राज्यमसद्वितीयं भविष्यति प्राह ततः कुमारः॥३३॥

अनश्यदेतत्सकलं मदीयं सैन्यं जयो मेऽधिरणं कथं स्यात्।
संस्पर्शमात्रेण करस्य सर्वं जीवत्विति प्रोच्य तिरोदधे सा॥३४॥

अथ स्वसैन्ये सकले मृतेऽपि सम्प्राणिते सत्यवनीशसूनुः।
प्रत्यूषकाले व्यचलत्स योद्धुं भूयोऽपि माचीपतिभिः सहैव॥३५॥

गव्यूतिमात्रादवरस्थितस्य कुमारसैन्यस्य बलीयसस्ते।
सम्भावनादेव परस्परेण निस्त्रिंशशस्त्रैरुरसि प्रजघ्नुः॥३६॥

हतेषु सर्वेषु विनैव यत्नं माच्यां कुमारः स्वपदं न्यधत्त।
सम्भावनामात्रवशेन नष्टाः स्युः सोढदेवस्य न विद्विषः किम्॥३७॥

ततो यथावैभवमेव तस्या निर्माय देव्या नरदेवसूनुः ।
स्वं मन्दिरं तां यमवायदेवीमास्थापयामास यथावदर्चाम् ॥३८॥

खोहं ग्रहीतुं भुजदण्डशाली ग्राम्ये शकं विक्रमनिर्जितारिः ।
सेनासमेतः पृथिवीन्द्रपुत्रः शस्त्रास्त्रधारी मतिमान्प्रतस्थे ॥३९॥

खोहाधिपोऽपि श्रुतराजपुत्रागमः स्वयं वै समनद्ध योद्धुम् ।
समुद्धतो ध्वस्तभटो भटान्स्वानजिज्ञपद्यु द्धविधौ समर्थान् ॥४ ॥

तयो रणोऽन्योन्यपराजयेच्छ्वोरभूदियं भूरतिकम्पमाप ।
पत्यन्तरप्राप्तिमुदा नु किंवा स्वस्वाम्यनिष्टोद्भवशङ्कया नु ॥४१॥

जघान लीलाकृतयुद्धकेलिश्चिराय खोहाधिपतिं सचान्द्रम् ।
शितासिना भूमिगतं शिरोऽस्य रेजे समद्यं चषकं यमस्य ॥४२॥

निधाय तत्र स्वपदं कुमारः सान्तःपुरः पित्रनुशासनेऽस्थात् ।
स एव पुत्रोऽभिमतोऽपि सः स्यान्नोल्लङ्घयेद्यः स्वपितुर्महाज्ञाम् ॥४३॥

दिनेष्वतीतेषु कियत्सु राजा स सोढदेवः स्वरवाप पुण्यैः ।
पुण्यात्मनां विक्रमशालिनाञ्च किं वाऽनवाप्यं न यदाप्यतेऽन्यैः ॥४४॥

स्वर्यातस्य पितुः परं सुकृतिनामग्रेसरस्य स्वयम्
विद्वान्विद्वदुपाश्रयेण सततं सोऽयं कुमारो महान् ।
पाश्चात्या विभवानुकूलमखिलाश्चक्रे क्रियाः पुत्रिणा-
मग्रण्या भुवि तेन के नृपतिना सादृश्यमुच्चैर्ययुः ॥४५॥

आसीद्यस्य पराजितामरगुरुः श्रीलक्ष्मणाख्यः पिता
माता यस्य सती सतीव्रतपरा यस्याग्रजौ भ्रातरौ ।

स्तः स्वन्ताधिपदाद्यजन्तजयतिप्राग्वर्तिरामाभिधौ
रामस्यास्य[1] कृतौ कवेरिह गतः सर्गोऽयमादिर्नवः ॥४६॥

इति श्री पर्वणीकरोपनाम श्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भसम्भव-
श्रीसीतारामकविविरचिते जयवंश-
महाकाव्ये प्रथमः सर्गः ॥१॥

द्वितीयः सर्गः

अथोद्भटः संयति सञ्जितारिः स सौढदेविः सुकृती कृतज्ञः।
समस्तभूपालसमर्चितांघ्रिरलञ्चकारासनमाशु पित्र्यम् ॥१॥

द्योसामसीमश्रियमुच्चगेहाम् अनुच्चचन्द्रामनुकूलकालाम् ।
अशोकलोकामतिनाककान्तकान्तामशेषाम् अशिषन्नरेन्द्रः ॥२॥

दिवं विहायैव सुरैरशेषैरर्चानिविष्टात्मभिरालयेषु।
सौजन्यसिन्धौ सति राज्ञि तस्मिन्याऽधिष्ठिताऽधिष्ठितपूर्णधर्मा ॥ ३ ॥

कलिः प्रवृत्तोऽपि विधर्मलोकः सधर्मलोकामुपितासुरारिम्।
अकालकालानभिभूतलोकां यामभ्यभून्नैव निरामयाधिम् ॥ ४ ॥

समाधिभाजोऽप्यसमाधिभाजो द्विजा विजातीयगुणा गुणेशाः।
यामध्यवात्सुः सततं निजौजःपराजिताका विषयेष्वलुब्धाः ॥५॥

---

1. सीतारामकवेरिहेति पाठः

राजन्वती या यदपेक्षयान्याः पुरोबभूवुः खलु राजवत्यः।
रतीशदर्पघ्नरुचो युवानो वधूजनोऽभूद्रतिगर्वहर्ता ॥ ६ ॥

इत्थं सुराज्ञि क्षमयोपपन्ने धर्मेण लोकान् परिपाति नित्यम्।
राज्ञी महेन्द्रादिदिगीशमात्राविपोषितं गर्भमधत्त साध्वी ॥ ७ ॥

विषेदुरङ्गान्यतिपाण्डुराणि भरेण गर्भस्य नरेन्द्रपत्न्याः।
तान्यन्वहं भूपतिरीक्षमाणो मुदं स्वचित्ते नितरामवाप ॥ ८ ॥

रसान्तरे गार्ध्यमुपेक्षमाणा नृपप्रिया गर्भवती बभूव।
मृत्स्नामनन्यामदती त्वनल्पां चित्ते मुदं सा सुदती जगाम ॥ ९ ॥

यद्यत्प्रिया वस्तु सुवस्तुमध्ये सुदुर्लभं साधु समाचकाङ्क्ष।
सखीमुखात्तत्तदवेत्य शीघ्रं निवेदयामास पतिः प्रियायै ॥१०॥

असूत काले सुतमुच्चगामिग्रहे शुभे सा रवितेजसं यः।
जातोऽप्यरिष्टं वितमस्कमेव व्यधादनाकांक्षितदीप्तदीपम् ॥११॥

यः कञ्चुकी सूनुजनुर्नृपाय निवेदयामास मुदो निदानम्।
मुदो निदानं स नृपादवापद्राजचिह्नं वसुपूर्णकामात् ॥१२॥

पुरोहितेनाहितजातकर्मा शिशुः परां कान्तिमवापदङ्के।
असंस्कृता एव तथाविधा ये ते संस्कृताः किं पुनरत्र वाच्यम् ॥१३॥

काकाह्वयद्वीपवतां जनानां रूपादिकं लाति यतः कुमारः।
अतः पिताऽप्यस्य च नाम चक्रे सकाकिलेति द्विजनोदनेन ॥१४॥

यः शैशवे सर्वगुणाश्रयोऽभूद्व्यजेष्ट शत्रूनमितान्स्ववीर्यात्।
अध्यैष्ट विद्यां गुरुतो नुतोऽन्यैर्जनैरशेषैरजितो द्विषद्भिः ॥१५॥

राजा कदाचित्खलु सौढदेविर्ग्रहीतुकामोऽजनि भांडरेजीम्।
स्वभाव एवैष हि विक्रमस्य युयुत्सुता प्रत्यहमुद्भवेद्यत् ॥१६॥
विचार्य चञ्चद्भुजदण्डवीर्यं नृपोत्तमः काकिलमादिदेश।
कुमारविक्रान्तिदिदृक्षुचित्तः स तु प्रणम्याथ युधे प्रतस्थे ॥१७॥
स भाण्डरेजीपतिरुच्चवीर्यः सम्प्रस्थितं दौर्लभिमुद्यतं स्वम्।
पदं ग्रहीतुं विनिशम्य भीतः कृताभिमुख्यो भवति स्म दूरात् ॥१८॥
उपेत्य तस्याङ्घ्रिसरोजयुग्मे जिजीविषामात्रकृते न्यपप्तत्।
अशक्तिभाजामिदमेव युक्तं नदीरये वेगवतीव वेतः ॥१९॥
नतं तमालक्ष्य कुमारतुल्यो जगाद वाचं मधुरां कुमारः।
वक्रे तु वक्रत्वमृजावृजुत्वं स्वीकृत्य ये सन्ति हि ते जयन्ति ॥२०॥
पितुर्ममास्तां भवतः पुरेऽपि सत्ता स्वसत्ता विनिवृत्तिपूर्वा।
इतीरितः श्वः कथयामि तुभ्यं कृतप्रतिज्ञः स्वगृहं जगाम ॥२१॥
आहूय राजा निजमन्त्रिवृद्धांस्तैर्मन्त्रयामास सचिन्तचित्तः।
किमत्र कर्तव्यमरौ पदोत्के बलीयसि प्राहुरिमं वचस्ते ॥२२॥
न शङ्कितव्यं नरनाथ ! कोऽयं भवत्प्रतापस्य पुरोऽतिबालः।
पिताप्यमुष्य प्रबलोऽपि गेहे तेजस्वितां ते तु कथं लभेत ॥२३॥
योद्धव्यमेतेन बलीयसस्ते जयस्त्वदीयो भविता न चास्य।
रवौ तपत्यभ्युदितोऽपि शक्तः पराभवं तस्य न कर्तुमिन्दुः ॥२४॥
इत्यादिवाक्यैर्हितयुक्तियुक्तैः प्रोत्साहितो भूमिपतिः ससैन्यः।
योद्धुं कुमारेण बहिः पुरोऽभूद्युद्धं तयोर्भीमतरं प्रवृत्तम् ॥२५॥

अन्योन्यमन्योन्यमघानि वीरैः शरैश्च भल्लैरसिभिः सुतीक्ष्णैः।
सैन्यं रिपोः क्षीणमकारि सद्यः कुमारसैन्येन बलोर्जितेन ॥२६॥

सैन्यक्षये सत्यपि युद्धवीरः कुमारमाराद्विशिखैः सुतीक्ष्णैः।
तुतोद कोपादतिकम्पितोष्ठो वचोभिरुच्चैः परुषाक्षरैश्च ॥२७॥

शपत्यरातौ नरदेवजन्मा सन्मित्रवत्स्वासिमथाललम्बे।
तेनाऽच्छिनच्छत्रुशिरः शराणामोघं विमोघं विततान वीरः ॥२८॥

रिपौ हते वीर्ययुतेऽपि तस्मिन् पदं स्वकीयं पुरि भाण्डरेज्याम्।
कृत्वा प्रसह्याशु नुतोऽतितुष्टैर्जनैरशेषैर्निजगेहमाप ॥२९॥

गृहागतं विक्रमशालिनं तं नमन्तमाराच्चरणाब्जयुग्मे।
पिताशिषा वर्द्धयति स्म नित्यं जयस्त्वदीयो भवतादितीति ॥३०॥

युग्मम

पतिर्गवालेरपदस्य वार्तामश्रावयद्दूतमुखेन राज्ञे।
इदं पदं ते बलिनो ग्रहीतुकामाः प्रसह्येति हि दाक्षिणात्याः ॥३१॥

हेतोरतस्त्वं समुपेहि शीघ्रं तेभ्यः पदं स्वं परिपालय त्वम्।
वयं न तादृग्बलिनो यतः स्युः पराजितास्ते विमुखा भवेयुः ॥३२॥

ततः स दूतादिति सन्निशम्य प्रकोपशाली नृपतिः प्रतस्थे।
जेतुं रिपूंस्तान्विनिवारितोऽपि सुतेन न त्वं किमुताहमित्थम् ॥३३॥

गत्वा गवालेरमसौ नरेन्द्रस्तैर्दाक्षिणात्यैर्बलिभिस्त्वनन्तैः।
शस्त्रास्त्रविद्यानिपुणैः ससेनैरयुद्ध दोर्दण्डपराक्रमेण ॥३४॥

गजा गजैर्वाजिभिरश्ववारा रथा रथैः पत्तिभिरङ्घ्रिगाश्च।
तुल्यप्रतिद्वन्द्वितयेत्थमासीदायोधनं युद्धविशारदानाम् ॥३५॥

रदारदि प्रोद्धतकुम्भिवृन्दैरायोधनेऽन्योन्यमुपोह्यमाने।
समुत्पतन्दीपितकाष्ठमग्निरुवोष सेनासमवेतलोकान् ॥३६॥

दग्धेऽपि सैन्ये सकले स्वकीये वीराग्रणीरेकक एव राजा।
द्विषद्दलं सर्वमकोशखड्गैः कबन्धतामेव निनाय सद्यः ॥३७॥

द्विषोऽथ खड्गैर्नृपतिं प्रजह्नुः सर्वेऽपि सर्वैर्युगपत्प्रवीराः।
तथाऽपि तस्मान्न चचाल धीरस्तद्धैर्यमस्थैर्यनिदानबाधि ॥३८॥

स छिन्नभिन्नापघनो घनोऽपि पेपीय्यमानश्रुतशोणितोस्रैः।
लेभे महेन्द्रादवनीमहेन्द्रः सत्कारमर्हत्तममाशु नाके ॥३९॥

इति गतवति नाकं स्वामिनि स्वे रणान्ता-
दभिषिषिचुरमात्या दौर्लभिं तत्पदे स्वे।
विधिमखिलमथान्त्यं कारयित्वा यथावत्
सकलविधिविधानज्ञानभाजां यथोक्तम् ॥४०॥

पित्र्यं तत्पदमाप्नुवन्तमखिलास्तं दौर्लभिं काकिलं
राजानोऽधिपदाम्बुजं विजयिनं नेमुः प्रसादार्थिनः।
पाणिन्यस्तमहोपदा नरपतेर्लिङ्गोन्मितान्तर्मुदः
प्राप्यानुग्रहमुद्ययुर्निजनिजं वेश्माऽथ सर्वे नृपाः ॥४१॥

आसीद्यस्य पराजितामरगुरुः श्रीलक्ष्मणाख्यः पिता
माता यस्य सती सतीव्रतपरा यस्याग्रजौ भ्रातरौ।

स्तः स्वन्ताघिपदाद्यजन्तजयतिप्राग्वर्तिरामाभिधौ
रामस्यास्य कृतौ कवेरिह गतः सर्गो द्वितीयो नवः ॥४२॥

इति श्रीपर्वणीकरोपनाम श्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भसम्भव-
श्रीसीतारामकविविरचिते जयवंशमहाकाव्ये
द्वितीयः सर्गः ॥

तृतीयः सर्गः

स काकिलः पित्र्यमवाप्य भूपतिः पदं समृद्धं द्विषतामगोचरम् ।
शशास लोकाञ्जनकः सुतानिव प्रतापसन्तापितशात्रवो बली ॥१॥

बलीयसामग्रसरे प्रतापिनां प्रतापमान्द्यप्रतिपत्तिकारिणि ।
नवे नृपे सत्यपरा इवाऽभवन् प्रजाः समस्ताः सुकृतेषु तत्पराः ॥२॥

सनीतयोऽप्यत्र नृपे ह्यनीतयो जना बभूवुः कुशलाऽनुबन्धिनः ।
अबन्धवोऽपि प्रयताः सबन्धवस्तथोत्तमा नोत्तमताधिगामिनः ॥३॥

अथ स्मरन् पित्र्यवधोद्धतश्रियामपारमागोवसतामधिश्रियाम् ।
वरे गवालेरपदे नराधिपः स दौर्लभिस्तद्विजिगीषुतां गतः ॥४॥

स सैन्यमुद्घोषितजन्तु निष्क्वणन्ननेकभेरीपटहोद्धतध्वनि ।
नृपोऽध्वनि ध्वानितदिक्कमुच्चकैरधिज्यधन्वा व्यचलद्रिपून्प्रति ॥५॥

निशम्य तत्सैन्यमनन्यसन्निभं युयुत्सु शस्त्रास्त्रसमिद्धमुद्धतम् ।
युयुत्सवोऽत्युत्कटमन्युधर्षिता विजज्ञिरे दौर्लभिशत्रुपुङ्गवाः ॥६॥
बलद्वयेऽन्योन्यमयोधि योद्धृभिः क्रुधा रदोद्दष्टनिजाधरैः परैः ।
धृतासिबाणौघसुभल्लशक्तिकैः परन्तपौजोग्रसितार्कमण्डलैः ॥७॥
धनुर्ध्वनिध्वानितनिध्वनद्दिशं प्रवीरनादस्फुटिताद्रिगह्वरम् ।
प्रवृष्टबाणौघनिवृत्तधर्मकं बभूव तद्युद्धमभाव्यभावितम् ॥८॥
नदी नदीना रुधिरौघपूरिता मही द्विषच्छीर्षसरोजपूजिता ।
विमानमालाभिरलङ्कृतं नभो वियुध्यमाने सति दुर्लभात्मजे ॥९॥
अरातयस्ते सकला महीभुजो विचिच्छिदुर्विग्रहमुद्धतासिभिः ।
विभिन्नदेहो भुवि मूर्च्छितोऽपतत्सहैव सैन्याश्रुभिरस्रसिञ्चितः ॥१०॥
तदाविरासीद्यमवायदेवता दयार्द्रचित्ता सुरभिस्वरूपिणी ।
विपन्निवृत्तिर्न तमेव तादृशां विपत्तिभाजो निजभक्तिशालिनः ॥११॥
विलोक्य तां मातरमंशुमालिनीं महीपतिर्दुर्लभभूपनन्दनः ।
नुनाव नावं समुपेत्य वाहिनीं प्रवाहमध्ये पतितो यथातले ॥१२॥
कृपात्मको यो निधिरस्ति सोऽसको तवाङ्घ्रिमूलं भजतेऽनुवासरम् ।
स एव चान्यानपि मादृशाञ्जडान् त्वदाज्ञयैवानयते निजं पदम् ॥१३॥
हरो हरिर्वा द्रुहिणस्तथेतरे विदन्ति नैवेशदपीशमानिनः ।
यथार्थतां ते तु महेशवल्लभे चिदात्मिकायाः किमुताऽपरे नराः ॥१४॥
चतुर्भुजोऽपि प्रसभेण सेवितुं त्वदङ्घ्रिपङ्केरुहयुग्ममुच्चकैः ।
न शक्तिमाप्नोति कुतो द्विबाहवस्तथाऽपि तेऽनुग्रहणं न दुर्लभम् ॥१५॥

चतुर्मुखेनाऽपि सुदुस्तवा गुणाः सदैव वेदान्पठताऽपि तेऽम्बिके।
यदा तदैकं वदनं दधानकैः कुतः पुनर्मादृशमन्दबुद्धिभिः ॥१६॥

त्वदीयमेतत्खलु रूपमुच्चकैर्विलोकमानोऽपि सहस्रलोचनः।
न तृप्तिमासेचनकं प्रयाति चेत्तदा द्विनेत्रीं दधतान्तु का कथा॥१७॥

अलं वचोभिर्मदनुग्रहस्त्वया विधीयतामित्यफलैः कृपानिधे।
अनुग्रहायैव यतो विशेषितो जनोऽयमुच्चैर्निजरूपदर्शनात् ॥१८॥

तथाप्यतीवातुरचेतसा मया निवेद्यसे हन्त दयार्द्रमानसा।
विपन्मदीयानुभवाध्वनि स्थिता निवर्तनीया विहितोऽयमञ्जलिः॥

इदं वचो दुर्लभनन्दनस्य सा विपत्तिसंभ्रान्तिमतो नतस्य च।
निशम्य मार्द्वीकरसाधिजित्वरं परोपकारव्रतवत्यवोचत ॥२०॥

नरेश वत्स स्तुतिमीदृशीममूं भवत्कृतां श्रोत्रपथीकृतामहम्।
विधाय तुष्टाऽस्मि तव द्विषोऽखिलान्विमोचयिष्ये त्वसुभिस्सुवल्लभैः॥

मदाज्ञयेतो रचयाम्बिकापुरीं पुरीं महेन्द्रस्य पराजये तया।
तथैकपिङ्गीमपि सम्पदञ्चितां दशाननीयामपि हाटकोचिताम् ॥२२॥

भुवोऽन्तरालीनमिहैव यत्नतो नरेन्द्र निस्सार्य तमम्बिकेश्वरम्।
प्रतिष्ठितीकृत्य यथावदर्चयेर्जयस्ततस्तेऽधिरणं भविष्यति ॥२३॥

वचोभिरेतैः सरसैः पयस्रवैर्यथा स्ववत्सं यमवायदेवता।
निषिञ्च्य राजानमनल्पशक्तिकं तिरोदधे तत्क्षणमर्थिकामधुक् ॥२४॥

वचः स्मरन्मातुरनन्यविक्रमः स दौर्लभिर्बुद्धिमतां वरो नृणाम्।
अनेकपुर्युज्जयशालिनीमथाम्बिकापुरीं संरचयाञ्चकार च ॥२५॥

गृहाः समुच्चा निचितोन्नतश्रियः समुज्ज्वलद्धेममयाः क्वचिद्व्यभुः ।
बभुः क्वचिद्रौप्यमयास्तथा क्वचिद्धरिच्छिलाखण्डमया दिदीपिरे ॥२६॥

सुवर्णकुड्येष्वनुबिम्बिता वधूः पृथक् प्रतीतिं विदधे जनस्य न।
पयस्सु पाथोभिरतीव निर्मलैः विमिश्रितेषु प्रतिभा न पार्थकी ॥२७॥

अनर्थकः स्वर्गपुरीविलिप्सया विधित्सितः पुण्यमतीव दुष्करम्।
समुद्यमस्तत्सुखभोगसाधनं पुरीव या क्वापि न काचिदप्यभूत् ॥२८॥

सुराः स्वरप्यात्ममुदं न तादृशीं सुकेशिकाद्यप्सरसां गणैः समम्।
ययुस्तथा यामधिवासिता जना वधूजनैर्नागरिकैर्यथैव याम् ॥२९॥

न मन्दरेऽद्रावपि शर्ममन्दिरे सुपर्वशैलेऽपि सुवर्णमन्दिरे ।
न रैवते भोगविधायिदैवते सुखं न तद्विन्ध्यगिरौ यथाऽभवत् ॥३०॥

अधर्मधर्माावितरेतरं परं विवादमातेनतुरुच्चकैरुभौ ।
त्वमत्र मा तिष्ठ पुरे स्थितिर्मया विधास्यते नैव भवानहं त्विति ॥३१॥

विवादमित्थं दधतोः परस्परं नराधिपो दुर्लभनन्दनस्तयोः ।
विधाय माध्यस्थ्यमदत्तबुद्धिमान्पुरान्तरं स्वाञ्च पुरीं यथाक्रमम् ।३२॥

रजस्वलत्वं वनितासु केवलं न पुंसु धर्मैकपरेष्वधिष्ठितम् ।
तमांसि रात्रौ न जनेषु केषुचिद्विरागिताऽनर्हविधानकारिणि ॥३३॥

परस्य कान्ताकनकेषु निःस्पृहा न मर्मवाक्योच्चरणप्रयोगिणः ।
विधर्मसंयोगपराङ्मुखाः सदा जना बभूवुर्यदधिष्ठिताः खलु ॥३४॥

अकालमृत्योः खलु यत्र वश्यता वशंगतास्तस्य तु नाभवञ्जनाः ।
न दुर्मतिं दुर्मतिरप्यधिश्रिता यदा तदा दुर्मतिविद्विषः किमु ॥३५॥

लघुर्महीयांसमसेवताऽधिकं लघुं महीयानधि पयपालयत् ।
यदाश्रितानामिति नीतिवर्तिनां सुवृत्तिरुद्वर्णयितुं न शक्यते ॥३६॥
परोवयः प्राप्य गुणानशिक्षत प्रियं वयश्चार्थमुपार्जयज्जनः ।
तपस्तृतीये वयसि प्रयुक्तवानथो परिव्राडभवच्च शेषके ॥३७॥
न दौर्लभेः कः प्रियतामवाप्तवान्न धार्मिकीं वृत्तिमुपाश्रितं विना ।
स्वधर्मवृत्तिः सुखदा ह्यनुष्ठिता न कस्य जायेत सधर्मवर्मणः ॥३८॥

तत्राम्बिकेश्वरमथार्च्यमशेषदेवैः
सन्मन्दिरे धरणितो नृपतिः प्रतापी ।
उद्धृत्य सद्द्विजवरैः प्रयतैः प्रतीतैः
तं प्रत्यतिष्ठिपदथान्वहमार्चिचच्च ॥३९॥

देव्योक्तं सकलमिदं विधाय सम्यक्
तान्युद्धे ऽव्यजयत वीर्यशालिनोऽरीन् ।
हत्वा तत्पदमधिगम्य तत्र राज्यम्
भुक्त्वाऽथो सुकृतवशेन नाकमाप ॥४०॥

आसीद्यस्य पराजितामरगुरुः श्रीलक्ष्मणाख्यः पिता
माता यस्य सती सतीव्रतपरा यस्याग्रजौ भ्रातरौ ।
स्तः स्वन्ताघिपदाद्यजन्तजयतिप्राग्वर्तिरामाभिधौ
रामस्यास्य कृतौ कवेरिह गतः सर्गस्तृतीयोऽद्भुतः ॥४१॥

इति श्रीपर्वणीकरोपनामश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भसम्भव-
श्रीसीतारामकविविरचिते जयवंशमहाकाव्ये
तृतीयः सर्गः ॥३॥

विजित्य शत्रूनतिवीर्यशालिनो बहून्विलासान् परिभुज्य भूभुजा।
अनेकधर्मं परलोकसाधनं विधाय जज्ञे त्रिदिवौकसामुना ॥३०॥

भुवं शशासैकमनाः स कीलनो नराधिपो धर्मविदां पुरःसरः।
अकीलयद्यो द्विषतां पुराण्यतो बभूव नामास्य नृपस्य सार्थकम् ॥३१॥

गुणा विवृद्धिं दिवसा इवाययुः क्षयं ययौ दोषगणो मृगाङ्कवत्।
नराधिपे शास्तरि कीलनाभिधे दधे भयं चेतसि धर्मराडपि ॥३२॥

न वेदविद्यारतिमाचरन्तमां तमांसि लोकं परिभूय नासिरे।
धृतासि रेजे नितरां कुलं बलं नराधिपानामिह राज्ञि कीलने ॥३३॥

सुपुण्यकर्मावलिरूपधारिणीं सुधीः स्वनिःश्रेणिमसावधिश्रयन्।
अधीतविद्योऽर्जितसद्यशा दिवं समाललम्बेऽभिमतो दिवौकसाम् ।३४।

पितुः पदं पालयति स्म कैलनिर्यशस्विनामग्रसरो महारथः।
कुशब्दपूर्वां तिलकेति लब्धवान्कुशब्दभूवाचकतामतेऽभिधाम् ॥३५॥

नतानकार्षीदनतानपि क्षमाभुजो भुजोद्ग्राहितभूमिमण्डलान्।
स कैलनिः कैलबिलस्य दानिता नितान्तमेतस्य विलोक्य दानिताम् ॥

हता हता एव रणे रणोद्भटा भटा भटीभिस्सहसा त्रिविष्टपम्।
त्रिविष्टपीया वनिता हिताहिता न मन्दरागादगुरुस्स्मितानना: ॥३७॥

गते दिवं पुण्यवशेन कैलनावलब्ध पित्र्यं पदमृद्धिमत्तरम्।
प्रतापवान् कौतिलकिः स योनशीत्यवाप संज्ञां नशनोनितो यतः ॥

मही महीनेन महीयसी महीयसा महीभर्तृ महोपहारिणा।
अभूत्तमां कौतिलकेन भूभुजा भुजङ्गराजाधिकवीर्यशालिना ॥३९॥

उपेत्य नागौरमनल्पविक्रमस्तदीशगौरीपतिना नृपः समम् ।
अयुद्ध लक्षत्रयसैन्यसंयुजा स्वयं परं पञ्चसहस्रसैनिकः ॥१०॥
नृपं स्वसेनाधिपतिर्मनीषिणां पुरःसरो वाचमवोचदच्युताम् ।
मनीषितैवास्ति निदानमुच्चकैस्तदाधिपत्ये खलु निश्चयो हि नः ॥११॥
महीन्द्र गौरीपतिसैन्यमुत्कटं स्वसैन्यमल्पं युधि शक्तिमन्न हि ।
अतः परावृत्य गतिर्गरीयसी विरुद्धमेतन्न किलाल्पशक्तिषु ॥१२॥
अशक्तयो यूयमितः पलायनं कुरुध्वमित्येव भवादृशोचितम् ।
निजाननारूढतृणानि भस्मसात्कुरुध्वमिद्धे परमग्नितेजसि ॥१३॥
इतीति निर्भर्त्स्य तमेष वादिनं रणे तमावध्य दधे पदं पदे ।
नृपोत्तमो ज्ञानददेवनन्दनः प्रजोननामा शरणं नते जने ॥१४॥
अनेकशो विक्रमकार्यकारिणा नृपेण तेनार्कनिभौजसाञ्जसा ।
यशांसि भूमौ प्रवितत्य कर्मभिर्महेन्द्रलोकातिथिता स्म लभ्यते ॥१५॥
मलेषिनामा नरनाथनन्दनः पितुः पदं प्राप्तमशास्त ऋद्धिमत् ।
द्विषोऽद्विषः सन्नतिमापुरुन्नते नराधिपे यत्र नवेन्दुसन्निभे ॥१६॥
स्वविक्रमोपार्यत्रिवेऽर्यधात्तमां स गुर्ज्जरीयेऽसुलभेऽपि नीवृति ।
पदं स्वकीयं निहितं हितं ततं न कस्य विक्रान्तिबलं बलीयसः ॥१७॥
अहीनमोजोभिरहीनमुर्वराभरोद्वहे वीक्ष्य महीपुरन्दरम् ।
दरं दरीदारदरादृता द्विषोऽवहन्सकम्पा हतहन्तृसैनिकाः ॥१८॥
कदाचिदत्यन्तरणोद्धतोद्भटः क्षमापतिः प्राप्तमहेन्द्रविक्रमः ।
मिवाडदेशाधिपतिं ससेनकं रणेषु धिक्कृत्य पदं स्वकं न्यधात् ॥१९॥

इत्याद्यनेकान्भुजविक्रमानसौ विधाय राजा वनिताभिरुच्चकैः ।
सम्भुज्य भोगानमरेशदुर्लभानवाप नाकं सुकृती विदांवरः ॥२०॥

मलेषिसूनुर्विजरो रणोद्भटः पितुः पदं प्राप्य समृद्धमद्यु तत् ।
प्रसृत्वरैर्यो जगतीतलेऽखिले यशःपटैरावृत सर्वदिग्वधूः ॥२१॥

वधूभिरासेवि मनोभवोद्भवं सुखं सतीभिर्नयवृत्तिशोभिना ।
नृपेण येनातुलकान्तिभिस्तथा शरीरभासा जितमीनकेतुना ॥२२॥

धनैः कुबेरीयति स स्म कान्तिभिस्तथा स्म कामीयति दानकर्मभिः ।
स्म कर्णति प्राणिदयापरान्तरस्तथा स्वतोऽजायत केवलं बली ॥२३॥

युधिष्ठिरादप्यधिकः स धार्मिकः परन्तपौजोभिरनुद्धतोऽधिके ।
समे समः स्वाल्पतमे तु वर्तयन् पितेव सूनावनुजेऽग्रजो यथा ॥२४॥

स राज्यमित्थं सुकृतोपजीवितं नितम्बिनीभोगसुखानुभावकम् ।
विधाय पुण्यैस्त्रिदिवे दिवौकसामसीमकीर्त्तिः सदसि व्यदीप्यत ॥

स राजदेवो विजरात्मजो भुवं शशास शास्ताऽननुकूलभूभुजाम् ।
भुजार्जिता एव दिगन्तसम्पदो नयेन येनाददिरे महीभुजा ॥२६॥

अनीतिभाजो न जना न जज्ञिरे स्वधर्मनिष्ठास्स्म भवन्ति नो जनाः ।
सदासदाचारपराश्च नाभवन्भुवं महीन्द्रेऽवति तत्र वैजरौ ॥२७॥

अरोगिता सर्वजनेऽजनिष्ट या न सान्यराज्ये भवति स्म भाविनी ।
समाधयो योगिजनेषु केवलं प्रजासु नासन्निह राज्ञि शासति ॥२८॥

स्वधर्मपत्नी विजरात्मजस्य सा स्वसोष्ट सूनुं खलु कीलनाभिधम् ।
यशस्विनं तातनतं रतं नये सुशीलमाशीलितशास्त्रशासनम् ॥२९॥

विजित्य शत्रूनतिवीर्यशालिनो बहून्विलासान् परिभुज्य भूभुजा।
अनेकधर्मं परलोकसाधनं विधाय जज्ञे त्रिदिवौकसामुना ॥३०॥

भुवं शशासैकमनाः स कीलनो नराधिपो धर्मविदां पुरःसरः।
अकीलयद्यो द्विषतां पुराण्यतो बभूव नामास्य नृपस्य सार्थकम् ॥३१॥

गुणा विवृद्धिं दिवसा इवाययुः क्षयं ययौ दोषगणो मृगाङ्कवत्।
नराधिपे शास्तरि कीलनाभिधे दधे भयं चेतसि धर्मराडपि ॥३२॥

न वेदविद्यारतिमाचरन्तमां तमांसि लोकं परिभूय नासिरे।
धृतासि रेजे नितरां कुलं बलं नराधिपानामिह राज्ञि कीलने ॥३३॥

सुपुण्यकर्मावलिरूपधारिणीं सुधीः स्वनिःश्रेणिमसावधिश्रयन्।
अधीतविद्योऽर्जितसद्यशा दिवं समाललम्बेऽभिमतो दिवौकसाम् ।३४।

पितुः पदं पालयति स्म कैलनिर्यशस्विनामग्रसरो महारथः।
कुशब्दपूर्वां तिलकेति लब्धवान्कुशब्दभूवाचकतामतेऽभिधाम् ॥३५॥

नतानकार्षीदनतानपि क्षमाभुजो भुजोद्ग्राहितभूमिमण्डलान्।
स कैलनिः कैलबिलस्य दानिता नितान्तमेतस्य विलोक्य दानिताम् ॥

हता हता एव रणे रणोद्भटा भटा भटीभिस्सहसा त्रिविष्टपम्।
त्रिविष्टपीया वनिता हिताहिता न मन्दरागादगुरुस्स्मितानना: ॥३७॥

गते दिवं पुण्यवशेन कैलनावलब्ध पित्र्यं पदमृद्धिमत्तरम्।
प्रतापवान् कौतिलकिः स योनशीत्यवाप संज्ञां नशनोनितो यतः ॥

मही महीनेन महीयसी महीयसा महीभर्तृ महोपहारिणा।
अभूत्तमां कौतिलकेन भूभुजा भुजङ्गराजाधिकवीर्यशालिना ॥३६॥

बहुसुखमिह भुक्त्वा वैरिणोऽरीन्विजित्य
प्रसभममलकर्मा कर्मभिः सोऽवदातैः ।
सकलजगति कीर्त्तीः संवितत्य प्रतापी
त्रिदिवपतिसमर्चामर्चनीयाङ्घ्रिराप ॥ ४० ॥

आसीद्यस्य पराजितामरगुरुः श्रीलक्ष्मणाख्यः पिता
माता यस्य सती सतीव्रतपरा यस्याग्रजौ भ्रातरौ ।
स्तः स्वन्ताधिपदाद्यजन्तजयतिप्राग्वर्तिरामाभिधौ
रामस्यास्य कृतौ कवेरिह गतः सर्गश्चतुर्थोऽद्भुतः ॥४१॥

इति श्रीपर्वणीकरोपनामश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भसम्भव-
श्रीसीतारामकविविरचिते जयवंश-
महाकाव्ये चतुर्थः सर्गः ॥४॥

पञ्चमः सर्गः

उदयकरणनामा योनशेरात्मजन्मा
पितुरगमदनाश्यं राज्यमत्यन्तमृद्धम् ।
पितुरधिकमकार्षीत्स्वोदयं येन तस्मा-
दलभत किल लोकख्यातिभाग्योऽभिधानम् ॥१॥

व्यदधुरवनिनाथा नाथमात्मभ्युदासा-
दुदयकरणमुर्वीवासवं वासहेतोः ।

निवसतिमदिताऽसौ तेभ्य एष स्वकीयां
समुदितकरुणः सन् यौनशिर्वीर्यशाली ॥२॥

अजनि जनितलोकख्यातकर्मा सुशर्मा
समनुदितविधर्मा पूर्णधर्मा सुधर्माम् ।
अभिभवपथमुच्चैर्लम्भयित्वा द्वितीया
भुवि परिषदमुष्य क्ष्मापतेः पूर्णकामा ॥ ३ ॥

बहुभुजबलशाली शालिकेदारदारै-
रनुदिनमुपगीताखण्डलाखण्डकीर्त्तिः ।
नयविनयविशेषादाप्तलोकप्रथिम्ना
पृथुमपि स जिगाय क्ष्मापतिं योनशीयः ॥ ४ ॥

उपगतवति पुण्यैः स्वःपदं राज्ञि तस्मिं-
स्तदुदितजनिरासीद्भूमिपालो नृसिंहः ।
अजयदरिनृपालान् भूयसीः सम्पदो यः
स्वपितृगुणविशेषैरर्जयामास वीरः ॥ ५ ॥

रिपुबलमबलीयो यश्चकार प्रसह्य
प्रबलमपि बलीयान् बाललीलासु सक्तः ।
अबलमपि पयोधिं दानपाथः प्रवाहै-
रनबलमकृताम्भःपूर्णमम्भोदरिद्रम् ॥ ६ ॥

नरपतिपतिरूहे सन्नतानाधिपत्यं
प्रतिविधि विधिकर्तृ नाहृतस्वामिभावान् ।

त्रिभुवनमिव यस्य क्ष्मापतेरेकमासी-
द्भुवनमनयवर्तिप्रापिताशासनस्य ॥ ७ ॥

दिवि दिवषदहोभिः कैश्चिदेवाथ जज्ञे
नरपतिरुपभोगान् भुक्तवान् भूमिभूतान् ।
निजपदमतिऋद्धं सूनवे ज्ञानभाजे
हतरिपु वनवीराख्यातये संवितीर्य ॥ ८ ॥

समवति वनवीरे नारसिंहे समन्ता-
दवनिमवनिपाला भग्नवीर्याभिमानाः ।
रणमुखविमुखत्वं प्राप्य कान्तारगानां
बत निजरमणीनामास्यचन्द्रानपश्यन् ॥ ९ ॥

विधुवति निजचापं चापयातप्रभाणा-
मवनिपतिपतीनां सिंहनादोऽप्यपास्तः ।
विदधति रणमध्ये सिंहनादं नृसिंहे
व्यधुरपसृतिमुच्चैः सिंहशङ्कागजेन्द्राः ॥१०॥

असितघनघटाभेभालिभीमे रणान्ते
समुदयमुपयाते भूमिपालार्कबिम्बे ।
रिपुजनवनितानामाननानुष्णभासो
हततनव इवासन् यातवानस्तमर्कः ॥११॥

गतवति वनवीरे नाकलोकातिथित्वं
तदुदितजनिरापद्राज्यमत्यन्तमृद्धम् ।

रिपुजलधिनिमग्नां स्वावनीमुद्धरन्नु-
द्धरण इति समाख्यां यो जगाम प्रवीरः ॥१२॥

तपनमपि ततापं स्वीयतेजोभिरुष्णै-
स्तपसमयसमुन्नं यत्प्रतापोऽतितेजाः ।
भुवनमखिलमागोऽप्यन्तरैष प्रकामं
ज्वरयति खलु दण्ड्यो भूभुजामित्थमेव ॥१३॥

अनयदनयवृत्तौ वर्तमानाञ्जनान् यो
यमसदनमनाज्ञाकारिणोऽप्यन्यवासान् ।
समुदयमुपयातो भानुमानंशुमाली
परिहरति समन्तान्नैशमन्धन्तमोऽपि ॥१४॥

अरिमनरिमकार्षीद्यो विपन्नं तदन्यं
कुपथगतमहौषीद्दण्डकुण्डे प्रदीप्ते ।
स्वपथचरमपात्तत्तुल्यता केन लेभे
भुवि परिखितपाथोराशिकायां जनेन ॥१५॥

त्रिदिवपुरि स सभ्यः सभ्यभावं प्रपेदे
त्रिदशपरिवृढाद्यैर्गीयमानोरुकीर्त्तिः ।
अथ तदुदितजन्मा माननीयो नराणां
भुवनमवललम्बे चन्द्रसेनाभिधानः ॥१६॥

पितुरधिकमपारीच्चन्द्रसेनो नरेन्द्रः
सजनविजनभावं योऽनयत्पत्तनानि ।

प्रतिनृपतिजनानां नीतिमार्गानुसारी
हरिरिव भुवमेतामाययौ रक्षणाय ॥१७॥

प्रतिदिनमतिऋद्धा ऋद्धिमन्तोऽप्यभूवन्
नयपथमनुसृत्योद्योगकर्माण एव ।
वसु धरणिरसूतोद्योतिमाणिक्यरूपं
दधति भुवनभारं चन्द्रसेनेऽधिपाणि ॥१८॥

सुतमधिपतिजायाऽसूत शीतांशुतुल्यं
सकलगुणविशिष्टं शिष्टमान्यं गुणज्ञम् ।
त्रिभुवनमपि सर्वं चान्द्रसेनिं विनीतं
निवसितगुणि पृथ्वीराजनामानमाह ॥१९॥

अथ सुतमधिराज्यं न्यस्य राज्याधिकारे
क्षमतममतमाः सन्नीरजाः सत्वयुक्तः ।
अगमदवनिनाथःचन्द्रसेनाभिधान-
स्त्रिदशपरिषदन्तः पुण्यकर्मा सुशीलः ॥२०॥

अथ नरपतिरासीच्चान्द्रसेनिर्विनीतो
भुवनमखिलमुच्चैः कीर्त्यमानोरुकीर्त्तिः ।
रणमुखकृतकर्माऽनेकशो वीर्यशाली
धनुरधिकमधिज्यं बिभ्रदत्यन्तधीरः ॥२१॥

कुलमसुकुलयद्योऽनुष्ठितैः स्वावदातै-
रजयमजयदुर्वीपालकं विक्रमैः स्वैः ।

अबलमबलयद्यः पक्षपातैः स्वकीयैः
समदमदमयद्यो दण्डदानैः स्वयोग्यैः ॥२२॥

अचलमचलयद्यश्चान्द्रसेनिः स्ववीर्यै-
रतलमतलयद्यः शक्तिमाँल्लीलयैव ।
अतुलमतुलयद्यः कान्तिमद्भिर्निजाङ्गै-
रनममनमयद्यो युक्तिभिर्युक्तिशाली ॥२३॥

सुतमजनि च जाया भूपतेः साधुवृत्ता
सदनुकरणलब्धख्यातिधन्यस्य तस्य ।
अलभत नृपसूनुर्भारमल्लेति संज्ञा-
मभृत भुवनभारं यो यतो मल्लतुल्यम् ॥२४॥

उपगतवति पुण्यैरर्जितां कर्मभिर्या-
ममरसदृशि पृथ्वीराजनाम्नि क्षितीशे ।
अथ भुवमवति स्म प्राप्तराज्याधिकार-
स्तदुदिततमजन्मा भारमल्लाभिधानः ॥२५॥

भुवमवति नरेन्द्रे भारमल्लाभिधाने
रजनय इव वध्वो रेजिरे ता इवैताः ।
वदनहिमकराभाभासमानाः समन्तात्
विशदधवलमुक्ताहारताराल्लिभासः ॥२६॥

(युग्मम्)

दिवस इव जनोऽभादातपानिह्सीयो
विदलितधवलाभामल्लिकापुष्पभारी ।

विजहदतिदृढानि स्थूलवासांसि गन्धो-
दकशिशिरगृहान्तर्वासनौचित्यकारी ॥२७॥

गुरुभजनसमस्तप्राप्तविद्याविनोदे
सदनुचरितकर्माचारशिष्टालिशैष्ट्ये ।
उपचितविभवे भूमण्डलं नित्यधर्मै-
रपचितदुरितौघे शासति क्ष्मामहेन्द्रे ॥२८॥

हतनयमनयद्यो भारमल्लः क्षितीन्द्रो
यमसदनमसीदन् धर्मकर्मानुवृत्तौ ।
कलियुगमपि पूर्णं सत्यमेषोऽवतेने
जन इति निजचित्ते शङ्कते स्म प्रकामम् ॥२९॥

सुकृतविनयभाजश्चोपचक्रे विचक्रे
हतनिजसुकृतानां स्वद्विषां योऽपचक्रे ।
क्रतुशतमधियज्वा किन्न चक्रेऽकृशीया-
नधिविभवमुमेशाराधनादाप्तकामः ॥३०॥

त्रिदिवमधिरुरोहारुह्य भूपो विमानं
सह सुरवनिताभिश्चोर्वशीपूर्विकाभिः ।
निजनिजरुचिशोभादर्पिकन्दर्पपत्नी-
विजयजनितचित्तौद्धत्यसंशालिनीभिः ॥३१॥

अथ धरणिमरक्षद्भारमल्लस्य सूनु-
र्भगवदिति पदप्राग्वर्तिदासाभिधानः ।

भगवति परभक्त्या यो व्यधान्नाम युक्तं
निजमजनिकरे स्वां भक्तिमातन्वतान्तु ॥३२॥

मदनमदमकार्षीन्मन्दमत्यन्तवीर-
स्त्रिभुवनजयजन्यं भारमल्लात्मजन्मा ।
रिपुजनवनिता यो वैधवेयीमनैषी-
दतुलपरमशोभामाहतद्वेषिलोकः ॥३३॥

अवतमसनिगीर्णं यामिनीयाममध्ये
जगदुदितखरांशुर्द्योतयत्याशु कल्ये ।
उदयमधिगतो योऽज्ञानविक्लिन्नमेत-
द्भुवनमधिकमत्रोल्लासयामास सर्वम् ॥३४॥

दुरधिगममलम्भि क्ष्माभुजा येन वस्तु
प्रतिनृपतिजनेभ्यः सोऽदितासूनसुभ्यः ।
अभयमदित तस्मै स्वानुकूले निवासं
स्वमदित खलु तस्मै लाघवं स्वात्मनेऽदात् ॥३५॥

तस्मादसूत समये शुभचिन्हयुक्ते
पत्नी पतिव्रतपरा सुतमुन्नतेच्छात् ।
शम्भोः शिवा गुहमिव स्वरधीशितुस्सा
पौलोमजेव तनयं सजयं जयन्तम् ॥३६॥

सुतोत्पत्तिः कस्य प्रसभमभिधत्ते श्रुतिपथी-
कृता नात्यानन्दं स्मृतिविषयतां वा खलु गता ।

सभासीनः श्रुत्वा सुतजनिमन्तःपुरचराद्
यमानन्दं लेभे स पुनरभवद्वागविषयः ॥३७॥

प्रसेदुराशाः पवनाः सुखा ववु-
र्हविर्हविर्भुङ्मुदितः समाददे ।
नभः प्रसन्नं हरिदश्वमण्डलं
प्रकाशमापन्नृपसूनुजन्मनि ॥३८॥

जातकर्मणि कृते नृपसुनुः कर्मकाण्डपरपारगतेन ।
शोभते स्म सुतरां सदृशं नीहारमुक्तवपुषोष्णकरेण ॥३९॥

स मानसिंहेत्यथ नामधेयं पिता चकार स्वसुतस्य तस्य ।
मानेन यः सिंह इवातिरेजे यतोऽमुतो नाम न रूढमासीत् ॥

आसीद्यस्य पराजितामरगुरुः श्रीलक्ष्मणाख्यः पिता
माता यस्य सती सतीव्रतपरा यस्याग्रजौ भ्रातरौ ।
स्तः स्वन्ताधिपदाद्यजन्तजयतिप्राग्वर्तिरामाभिधौ
रामस्यास्य कृतौ कवेरिह गतः सर्गो नवः पञ्चमः ॥४१॥

इति श्रीपर्वणीकरोपनामश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भसम्भव-
श्रीसीतारामकविविरचिते जयवंश-
महाकाव्ये पञ्चमः सर्गः ॥५॥

—❀—

षष्ठः सर्गः

इत्थं सुसंस्कृतिसमृद्धिमदोजसं तं
पुत्रं प्रवीरमुपलभ्य नराधिनाथः ।
संख्येष्वसंख्यरिपुराजविनाशकारी
नारीजनान्तरहरोऽधिकशक्तिरासीत् ॥१॥

पारावरान्तविषयेष्वपि यस्य कीर्त्ति-
र्नारीमुखाम्बुजमता कुरुते स्म नृत्यम् ।
पाण्डित्यशोभिजनताननवर्त्तिनीव
वाग्देवता परिषदन्तरपेतशङ्का ॥२॥

कैदारिकैर्लुलुविरे परिपाकबुद्ध्या
धान्यानि नीरमपि हंसगणैरपायि ।
दुग्धभ्रमेण सरितोऽप्यखिला विरेजु-
र्गङ्गेव यद्यशसि दिक्षु वितत्य वृत्ते ॥३॥

कीर्त्तिः कलङ्कितमवेक्ष्य सुधांशुबिम्बं
भेजेऽनुरूपमपि नो नयनाभिरामा ।
तं क्षीरनीरधिमुपेत्य भजत्युपोढ-
सन्मार्गया तनयया सदृशी नृपस्य ॥४॥

पातालमाप्य भुवनं भुजगाधिवासं
कीर्तिश्चकार सकलानुरगान्वलक्षा ।

स्वस्वामिभासुररुचीरुचितान्फणानां
संख्यैव भेदमतिमातनुतोभयेषाम् ॥५॥

कीर्तिः सरोजवनमप्यकरोद्विचित्रं
चित्ते विचार्य धवलं धवला किमित्थम् ।
नेत्रे हरेरुपमितेः फलमेतदेया-
दद्वैतभावमयमत्र च पुण्डरीकम् ॥६॥

विम्वं विधोरधिदिनं न चकास्ति पूर्णं
तूर्णं विचूर्णयति देहमनङ्गतायै ।
यस्माद्विभाकरकरैरुपहन्यमानं
यस्तेन कीर्तिमसृजन्नहतां नहीनाम् ॥७॥

कौमारमेव दधता वधतापभाजो
भर्तुः प्रतीपनृपपूर्णसुधांशुमुख्यः ।
राज्ञः सुतेन विनतेन रतेन पुण्ये
जन्याङ्गणे विदधिरे दधिरेऽनुकूलाः ॥८॥

कूलङ्कषोऽपि सरितां हरिदन्तगानां
यद्विक्रमोऽतनुत ता विततः प्रकामम् ।
सोपानपङ्क्तिमधिकृत्य तटान्तरुच्चैः
कूलङ्कषेतरतयाभिहताम्बुधाराः ॥९॥

देशः स को भवति भूवलये स्म कामं
यद्विक्रमस्य विषयो भवति स्म नो यः ।

भानोः समभ्युदयमाप्तवतः कराणां
को वा न वेह विषयो विषयत्वमेति ॥१०॥

साशा च काऽजनि जनाधिपसूनुरेष
यस्याः प्रकाममपिपः कृपयैव नाशाम् ।
आशामशास्त त्रिभयो न हि कोऽपि भूयो
राजत्यमन्दमतिशालिनि राजपुत्रे ॥११॥

त्रेतां कलावपि चकार नकारकारी
नैवार्थिषु क्षमतमो हि तदिष्टपूर्तौ ।
पूर्णौजसामपहृतौजसि यत्र के वा
नाचेरुरुच्चमतयो नतिमङ्घ्रियुग्मे ॥१२॥

यस्य प्रतापतपनो नयनन्दितान्त-
र्लोकस्य कस्य न रिपोरदहत्पुराणि ।
नारीमनांसि च तमांसि ससौ जनानां
नानाविधानविषयेषु समुद्भवानाम् ॥१३॥

को नाम नो नमनमातनुताङ्घ्रिपद्म-
युग्मेऽनुकूलपरितापहरावमुष्य ।
नव्योदितेन्दुसितपादमतापकारं
को वा नमेन्न परिशीलितशास्त्रमार्गः ॥१४॥

गाम्भीर्यमस्य मनसः खलु वीक्ष्य कस्य
नैवाभ्युदेति जलधावहेलनापि ।

योऽसौ सुधांशुकरसङ्गमवाप्य धैर्यं
स्वीयं जहाति सहसैव तथाविधोऽपि ॥१५॥

जम्भद्विषं क्रतुभिरुत्कटदक्षिणोद्यै-
र्यज्वाऽयजन्निगमतत्त्वविचारदक्षः ।
तृप्तो हविर्भिरमलैरथ सोऽपि वर्षै-
रेनं यथाभिलषितं समतोषयच्च ॥१६॥

वर्षाम्बुदा ददति केवलमेव नीर-
मन्यन्न किञ्चन भुवि प्रथिमानमाप्ताः ।
नित्यं सनीरवसु पात्रकरेऽर्प्यमाणं
येन प्रसिद्धिमकरोन्न तु सान्यलभ्या ॥१७॥

मुख्यो य एव धनदोऽर्थिजनाय नाथं
यो लोकपोऽस्ति धनदो भुवने प्रसिद्धः ।
यस्मात्स्वयं धमदतां यदधीत्य मन्ये
लोके निजां धनदतां प्रकटीकरोति ॥१८॥

विद्यावतामनिशसङ्गमलब्धविद्यो
विद्यावदर्चनविधानजपूर्णपुण्यः ।
नैवेदृशोऽजनि पुरा वलये क्षमाया
भावी न कोऽपि मनुजः पुरतोऽन्तरा यम् ॥१९॥

आराधनैरसुकरैरितरेण देवी-
माराधयन्व्रततपोनियमादियोगैः ।

आत्मीयदृग्विषयतामनयत्सुधीरो
बाल्यं दशामनुभवन्नपि राजसूनुः ॥२०॥

लावण्यशीलनयचित्तहरा नृपाणां
कान्ताः परं परिणिनाय स राजसूनुः ।
तं प्राप्य ता बभुरतीव वरं वरेण्यं
ताः प्राप्य सोऽपि नितरामरुचद्वरेण्याः ॥२१॥

का नाकलोकवनिता वनितासु तासु
दृष्टासु या नृपसुतः परिणीतवान्सः ।
दृष्टेऽधिकेऽनधिकवस्तुनि दुर्मतिर्या
सोऽयं स्वभाव इव चित्तवतो जनस्य ॥२२॥

ताभिः सयौवनमदोत्करकर्बुराभिः
सोऽयं नराधिपसुतो मदनाधिरूपः ।
भोगानभुक्त विविधान्दिवि देवतानां
स्वर्वामवामनयनाः परिभुञ्जतीनाम् ॥२३॥

कामागमेषु परिपूर्णविबोधशाली
चक्रे स शम्बरसुरारिहरं कुमारः ।
आनन्दमन्दिरनिवासविशालमोदं
केलीभिरुन्नततराभिरुदारशीलः ॥२४॥

प्रासादमुच्चतरमुच्चबलो महीया-
नारुह्य शारदसुधाकररश्मिशुभ्रम् ।

नानाविधाप्रतिमभूषणभूषिताङ्गः
कान्तासखः स विहरन् सुरवद्रराज ॥२५॥

हैमन्तिकीषु रजनीषु वधूसखेन
संश्रित्य गर्भगृहमूष्मनिवृत्तहैमम् ।
हेमन्तकालिकसुखानुभवः सुरस्त्री-
युक्तेन तेन हरिणेव दिवि व्यधायि ॥२६॥

चैत्रक्षपासु सुरतानि च तानि ताभिः
साकं वधूभिरकृत प्रणयास्वतन्त्रः ।
पर्यङ्कमुल्लसितगन्धवहप्रसूनैः
सङ्कल्पितं समधिरुह्य नरेन्द्रसूनुः ॥२७॥

ग्रीष्मेऽम्बुयन्त्रपरिनिःसरदम्बुशीतं
नीतं सशैत्यमथ मन्दसमीरयातैः ।
नानामहीरुहसभाघनताधियायि-
च्छायं विहारमकरोद्वनमाश्रितः सन् ॥२८॥

वर्षासु वर्षति नभोगतमेघबृन्दे
गर्ज्जीरवैः सह चमत्कृतिकृत्तडिद्भिः ।
आरामहर्म्यमधिगत्य नवोढकान्ताः
सम्मानयन्मुदमवाप न वाप कोऽपि ॥२९॥

वृन्दावने हरिरिवाप्रतिमप्रभाभिः
कान्ताभिरिन्द्र इव नन्दननाम्नि ताभिः ।

ऋद्धे वधूभिरिव चैत्ररथे कुबेरः
सोऽयं विहारमकरोत्स्ववने सदारः ॥३०॥

या काऽपि तस्य कनकावतिकेति नाम्ना
साध्वी वधूः सुतमसूत शरद्विभूपैः।
संवत्सरे परिमिते विमलोर्जमासे
तिथ्यां सितस्य पुरतः स्थितिभाजि सेयम् ॥३१॥

सङ्ग्रामभूमिषु चकार वधं रिपूणां
सिंहेन तुल्यमिभराजवधोद्धतेन।
तेनाप नाम जगतीप्रथितं महीपो
यः पूर्वसंस्थितजगत्पदसिंहनाम ॥३२॥

वीराग्रणीर्बलवताञ्च जितेन्द्रियाणां
सौजन्यशालिमनसामयमग्रयायी।
श्रीमानसिंहतनयो विनयेन वृत्तिं
ताते चकार न चकार तदन्यथात्वम् ॥३३॥

देवारिवारितबलो बलवानपीन्द्रः
शक्नोति तान् युधि निवर्तयितुं स्वयं न।
बालोऽपि यः समिति शत्रुबलानि हत्वा
शस्त्रैरवाप महतीं भुवनेषु कीर्त्तिम् ॥३४॥

आयोधनेषु शमनः सुरतेषु कामः
पापेषु शङ्कितमतिः सुकृतेषु वीरः।

दीनेषु वत्सलतरो नृपसूनुतोऽन्यो
नासीच्च कोऽपि पुरतो भविताऽपि नैव ॥३५॥

श्रीमानसिंहजलधेरतिगाधभावा-
दाविर्बभूव नव इन्दुरिवैष मन्ये ।
धन्ये समभ्युदयमाप्तवतीह कामं
के वा न हर्षमगमन्नयनेषु हृत्सु ॥३६॥

तेजस्विनोऽपि विभवस्तु कृपीटयोनेः
संसर्पति प्रणयिकम्पनसङ्गतस्य ।
यस्याऽसहायविभवस्य भवस्य तन्वां
वीर्यं जगत्सु सकलेष्वभितः ससार ॥३७॥

आधीरनीरधिचतुष्टयसीमसु द्राक्
द्राघीयसोऽस्य भुजदण्डजविक्रमोऽभूत् ।
विश्रान्तिभाग्भजनलब्धमहोदयेन
कः प्राप्नुयान्नृपसुतोऽस्य सुतेन साम्यम् ॥३८॥

वर्षासु वार्षुकसगर्जनमेघसङ्घो
धारा न वर्षति जलस्य च तावतीस्तु ।
यो यावतीरधिरणं रणकर्मदक्षो
धारा शिताग्रफलकाः सुशिलीमुखानाम् ॥३९॥

तातेऽपि जीवति च तत्पितरि प्रवृद्धे
बालोऽपि कालवशमाप नरेन्द्रसूनुः ।

दारिद्र्यरोगमृतिसन्ततिदुःखमध्ये
ह्येकं पुमाननुभवत्यतिबुद्धिशाली ॥४०॥

सङ्ग्रामरूपजलधीन्बहुलान्स तीर्णो
नैवाशकत्तनयशोकसमुद्रमुच्चम् ।
सङ्ग्राहितुं नहिं विचित्रमिदं महान्त-
स्तत्त्वावधानसुकृतोऽपि शुचां हि वश्याः ॥४१॥

तस्यात्मजं समवलम्ब्य समं स तेन
विश्वासमाप महदादिकसिंहसंज्ञम् ।
विश्वास एव परमेश्वरकर्तृकासु
योग्यो विपत्सु हि सतां सुविवेकभाजाम् ॥४२॥

राजा बली बलवतां बलमात्मनीन-
मादाय गुर्जरसमाह्वयदेशमुच्चम् ।
कर्तुं वशे निजकरस्य कदाचिदीशं
जित्वैव तस्य बलिनं बलिनं प्रतस्थे ॥४३॥

अश्वाः समुच्चवपुषः प्रसमिद्धतेज-
स्सम्बन्धिनः पवनतुल्यजवाश्च पुष्टाः ।
रुष्टाः पराश्वनिवहे भृशमश्ववारैः
संयन्त्रिता वसुमतीमभितः प्रचेलुः ॥४४॥

निम्नोन्नतप्रधिनिपातविचूर्णभूमि-
सम्प्रोल्लसद्घनरजः परिमण्डिताशाः ।

वेगोद्धतध्वनिघनस्वनबुद्धिनृत्य-
द्बर्हिव्रजा घनरथा जविनोऽधिजग्मुः ॥४५॥

प्रोत्तुङ्गमत्तसमलङ्कृतमेचकाभा-
मातङ्गराजनिवहाः प्रवभुः प्रयान्तः ।
वर्षोद्धतोद्धततडिद्द्युतिशोभिमेघ-
सङ्घा इव स्वरधिपायुधभूषिताङ्गाः ॥४६॥

निस्त्रिंशिनः कवचिनः सशराः सचापाः
शक्त्या युताश्च सगदाः समलङ्कृताश्च ।
एकैकशोऽखिलरिपुक्षयकर्मदक्षाः
पादातयोऽपि युधमाततिनुं प्रयाताः ॥४७॥

संवाह्यमानमुरुभिस्तुरगैरनेकै-
रारुह्य नीरदघनध्वनितं सवेगम् ।
स स्यन्दनं रिपुजयोत्सुकितान्तरात्मा
भृत्योच्यमानजयघोषमथो चचाल ॥४८॥

मार्गे रजोभिरकरोत्स घनैः क्षमोत्थैः
किं रोदसी विगतभेदगुणे बलौघः ।
उच्चान्यवाञ्चि विदधे विपरीतमन्या-
न्यन्यानि च स्थगितभानुकरप्रचारः ॥४९॥

श्रुत्वाम्बिकापुरमहेन्द्रमतीव वीरं
वीरोऽपि गुर्जरसमाह्वयदेशनाथः ।

राज्यं ग्रहीतुमनसं मनसा विचिन्त्य
स्वं सैन्यमुत्कटबलं समनीनहच्च ॥५०॥

सैन्ये उभे मिमिलतुर्युधि योद्धुकामे
शस्त्रास्त्रधारिकरयोधगणे सरोषे।
पूर्वं यथा दशरथात्मजराक्षसेन्द्र-
सैन्ये परस्परजयोत्सुकचेतसी द्राक् ॥५१॥

पादातयो युयुधिरे युधि रेणुकीर्णे
व्योमन्यदृश्यमभवद्रविचक्रवालम्।
नद्यो नदाश्च परितो रुधिरौघपूर्णाः
सम्प्रावहन्भटशिरःकमलावलीकाः ॥५२॥

यन्त्रा गजस्थमतितीक्ष्णशरौघकृत्त-
मूर्द्धानमत्र परिलभ्य नभोगकान्ता।
तं कान्तभावमुपनीय जगाम गाम-
ध्याशिश्रियेऽपघनमस्य परिक्षतञ्च ॥५३॥

गन्धर्वगास्तुरगगैः सह युद्धकेलिं
चक्रुः क्रुधा रदनदष्टनिजाधरोष्ठाः।
कान्ताधरे यदमृतं तदिहापि किं वा
तस्माददोऽधिकमथोनमिदं विचार्य ॥५४॥

युद्धं रथा अपि रथैर्विदधुर्महीयो
वाहाः क्षयं ययुरथो सगदा व्यधुस्तत्।

छिन्ना गदा अपि परस्परमल्लयुद्धं
चक्रुः प्रचण्डभुजदण्डपराक्रमेण ॥५५॥

तेनाम्बिकापुरपतिर्युयुधे रथस्थः
शस्त्रैः समिद्धरणिर्वीरतमस्तरस्वी ।
प्रागर्जुनोऽर्जुनयशास्तपसा कृशाङ्गः
कैरातिकीं विदधतेव तनुं शिवेन ॥५६॥

बाणौघमच्छिनदसौ निजबाणसङ्घैः
शत्रोः शितैः शितमतिः प्रतिघप्रतप्तः ।
दृप्तो बुधो निगमगैर्विषयैः सुतीक्ष्णै-
र्वाद्यन्तरस्य वचनानि यथा छिनत्ति ॥५७॥

शक्तिं नृपोपरि रिपुः प्रजिघाय रुष्टो
मूर्त्तां प्रवास्यतनुशक्तिमिवात्मनीनाम् ।
तामप्यसावपि तथैव चकार भूमी-
रेणूपमामनुपमद्युतिविद्युदाभः ॥५८॥

तं वीक्ष्य पाणिधृतमुष्टिकरालखड्गं
शत्रुं नृपः सपदि चोद्धृतकोशमेव ।
उद्यम्य खड्गमसितं प्रजहार शत्रोः
कण्ठे पतन् स तु चकार कवन्धमेनम् ॥५६॥

हत्वेत्थमुद्धतमरिं रणभूमिमध्ये
स्थाने बलान्निजपदं प्रणिधाय तस्य ।

सर्वैर्जनैः प्रमुदितैरुपगीयमानः
सोऽयं न्यवर्तत पुरं प्रति तां ससैन्यः ॥६०॥

तस्यावनीमघवतस्तनयो लघीया-
ञ्जज्ञे बली बलिषु माधवसिंहनामा ।
विक्रान्तिविक्रमवदूर्जितवीर्यधैर्य-
जेता जगत्सु महतां पदवीमवाप ॥६१॥

व्यूढा वधूः प्रथममेव पुरि स्थितेन
दान्दूरिति प्रथितनामयुतेन लोकैः ।
सम्भुज्यते भययुतैर्विनिवेद्यमाना
स्वीयं पतिं पुनरुपैति यतो बली यः ॥६२॥

श्रुत्वेत्यनीतिमवनीतलनाथसूनुः
कोपेन कम्पिततराधर एष दुष्टः ।
दण्ड्योऽयमेव धरणीपतिभिस्त्ववश्यं
सम्भाव्य भावयति स स्म मनस्युपायम् ॥६३॥

व्यूढां निवेदयितुमुत्सुकमाह कञ्चित्
कान्तां नरेन्द्रतनयो वचनं दयालुः ।
मैनां निवेदयतु किन्तु वधूविशेष-
वेषं निवेदयतु मां करवै तदन्तम् ॥६४॥

इत्थं निगद्य वचनं परिपूर्णचन्द्र-
तुल्यानना कमलसूनसमाननेत्री ।

विद्युन्निभाङ्गलतिका तिलकालिकाभा
ज्ञातो मनोहरतनूर्वनिताकुमारः ॥६५॥

तन्मन्दिरं सुतनुरस्तमिते खरांशौ
चन्द्रे समभ्युदितवत्यबलावृताऽगात् ।
स्रग्गन्धभूषणविभूषितगात्रयष्टिः
सिञ्जन्मनोहरविभूषणसंयुताङ्घ्रिः ॥६६॥

नृत्यादिकं विलसितं पुरतोऽस्य हृद्यं
चक्रे निशीथसमयावधि सा मनोज्ञा ।
स्थानादथो सहचरीर्विनिवर्त्य तस्मा-
त्तेनाकरोद्रहसि सारसवाग्विलासम् ॥६७॥

आलम्बताग्रकरमेव शनैरमुष्याः
स क्षेत्रपाल इशिलीमुखतापतप्तः ।
आलम्बनार्थमुपनीतमसौ तदीयं
पाणिं करेण सहसा बलिनी न्यधत्त ॥६८॥

तं मोचयन्नपि शशाक यदा न मोक्तुं
क्रुद्धो जगाद स इयं वनितापि केति ।
नान्यास्ति काचन पितामहिका तवेयं
किं पश्यसि प्रहर मल्लवदित्यवादीत् ॥६९॥

अन्योन्यमित्थमतिगर्वभृतोः स्वचित्ते
युद्धे तयोरुरगयोरिव सम्प्रवृत्ते ।

भूः कम्पमापदुभयाङ्घ्रिचतुष्कघातै-
राकाशतः पिपतिषन्ति तथा स्म ताराः ॥७०॥

मुष्ट्याघातैः पादघातैर्बलिष्ठैश्चूर्णीभूतो विग्रहः क्षेत्रपालः ।
वान्ति चक्रे रौधिरीं श्वासवातान्मुञ्चन्भूमिं प्रापदम्बामिव स्वाम् ॥

पाहि त्वं मां राजपुत्रातिदीनं दीनं पातुं शक्तिभाजः स्वभावः ।
आगस्कारे मादृशे त्वादृशानां दण्डो युक्तः शासनं ते करोमि ॥७२॥

इत्थं वाणीं दीनवत्क्षैत्रपालीं श्रुत्वा भूयो वाचमादत्त सोऽयम् ।
कोऽयं गर्वस्तावकस्त्याज्यमेतन्न्यायादन्यत्कर्म गर्ह्यं महद्भिः ॥७३॥

यौष्माकीणे शासने राजपुत्र स्थास्यास्येव त्वं प्रसीदाधुना मे ।
इत्युक्त्वान्तर्ध्यानमागात्स देवः सोऽपि क्षोणीनाथसूनुः स्वसद्म ॥७४॥

भाग्यं राज्ञो वाच्यमेतन्महीयः किं यस्यामू ईदृशौ शर्वसूनुम् ।
ज्येष्ठं जित्वा संस्थितावेव सूनू नूनं चित्रं भाग्यभाजां किमत्र ॥७५॥

सोऽयं भूमिपतिर्यशांसि जगतीमध्ये समस्ते सतां
मान्यः ख्यापितवान्सुतौ च गुणिनौ वीक्ष्य प्रसन्नो हृदि ।
भोगान्भोगवतीसखः सुरसमः सम्भुज्य पुण्यात्मभिः
सोपानैर्दिवमारुरोह सुदृढैः पुण्यात्मनामग्रणीः ॥७६॥

गतवति दिवं ताते तात क्व चासि गतोऽधुना
चिरतरममू सूनू त्यक्त्वा निजप्रियतास्पदे ।
इति बहु विलप्यान्तःशोकं वरुध्य विवेकवा-
नकृत सकलाः पित्र्याः ज्येष्ठः क्रियास्तदनन्तराः ॥७७॥

इति गतवति राज्ञि द्यामामात्याः समस्ताः
सुतमभिषिषिचुस्तं मानसिंहाभिधानम् ।
नृपपदमधिगत्य प्राप्तमत्यन्तमृद्धं
बलवदरिनिहन्ता बुद्धिशाली स रेजे ॥७८॥

आसीद् यस्य पराजितामरगुरुः श्रीलक्ष्मणाख्यः पिता
माता यस्य सती सतीव्रतपरा यस्याग्रजौ भ्रातरौ ।
स्तः स्वन्ताधिपदाद्यजन्तजयतिप्राग्वर्तिरामाभिधौ
रामस्यास्य कृतौ कवेरिह गतः सर्गो नवष्षष्ठकः ॥७९॥

इति श्रीपर्वणीकरोपनामश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भसम्भव-
श्रीसीतारामकविविरचिते जयवंश-
महाकाव्ये षष्ठः सर्गः ॥६॥

—❀—

सप्तमः सर्गः

अथ पुरं स पुरन्दरविक्रमः समशिषत्समशेषजनप्रियः ।
सबलनिर्बलसन्नतवत्सलो निवसतिर्वसतिप्रभवैषिणाम् ॥१॥

अकलयत्सकला जनता नता नतिमतामुदयानुदपादयत् ।
अतिबलो विबलानुदनीनमत्सुजनता जनतामधिशिश्रिये ॥२॥

अनयतो नयता नयवर्त्मनि प्रतिजनान्प्रभुणा गुरुणोरुणा ।
जनकताऽपि जनौ खलु हेतुता जनिकृतां निकृतान्तकतेजसा ॥३॥

उपगता गुणिताऽगुणितोज्झिता जनतया नतयाखिलयालया ।
कुमतिकर्मसु लब्धसुशर्मणा त्रिदिवपादिव पात्यधिकं नृपे ॥४॥
विधवताधवतावितचेतसो न वनिता वनिताः पुरि जज्ञिरे ।
तपति भास्वति भा स्वतितेजसामपिहितापि हिताय समुद्यते ॥५॥
चुरमुषार्थकषातुजनो ध्रुवं निजपदं समशिश्रयतागमम् ।
पुरि पदं समपद्यत नैव यः सभयतोभयतो जगतोर्यतः ॥६॥
उपनता वनितेव नराधिपं विधुवती शरदम्बुजलक्षणा ।
समधिगम्य स तामलमाबभौ भयददोऽयददोऽरिसुहृज्जने ॥७॥
पथि शुशोष च पङ्किलतालता रविकरैः परितः परितापिता ।
कुसुमचापशरैरुपपीडिता विरहितारहिता वनिता यथा ॥८॥
सितसरोजकृतातपवारणो विदलकाशविकाशितचामरः ।
अनुचकार ऋतुर्मनुजेश्वरं न समता समता समिताऽमुना ॥९॥
उदयमाप्तवताऽभिनवं जनाधिपसुतेन विलोचनयायिना ।
मुदमवाप समं जनताऽखिला सितरुचा तरुचारुनभस्तले ॥१०॥
कलशयोनिसमभ्युदयादपाममलता मलतापकरी वरी ।
नृपतिवैरिनराधिपचेतसां सभयताऽभयतामितवत्यलम् ॥११॥
समहरत्स्वधनुस्त्रिदशाधिपः समदधात्सगुणं जगतीपतिः ।
निजनिजावसराप्तमहोदयैर्भुवि न मा विनमा न विधीयते ॥१२॥
भुजगभोजिगणारवमाधुरीं धवलपक्षविकूजितमुच्चकैः ।
निशमयन् परुषत्वमितां जनः परमबोधिमबोधि निधिर्धियाम ॥१३॥

अतुरनोदयदेनसनाकुलं नरपतिं विजिगीषुमरीनिति ।
जिगमिषा यदि ते विजयेच्छया बलवतो लवतो गमनं कुरु ॥१४॥

गजवरूथितुरङ्गमपत्तिकं निजबलं बलवानवनीपतिः ।
समधिगृह्य ययौ प्रथमां दिशं त्रिदशराजशराजधनुर्धरः ॥१५॥

व्रजपतिं व्रजमेत्य रणाङ्गणे बलवदुद्धतसैनिकमुन्नतम् ।
अधिजिगाय सगायकसंस्तुतः स शरणं शरणं तमुपेयिवान् ॥१६॥

तमभिवीक्ष्य नृपः शरणागतं व्रजपतिं करमात्मसमन्ततः ।
समुपलभ्य पदं विजहौ महत् स्मयहरोऽयहरो न महाजनः ॥१७॥

मधुपुरीमधिगम्य यमस्वसुः सपयसा जलजावलिशोभिना ।
अतनुत स्नपनं विधिवन्नृपो मुदमितो दमितोद्धतचेतनः ॥१८॥

उपवने हरिपादरजःकणैः प्रतिपदं परिपूततमीकृते ।
अकृत पूततमां तनुमात्मनः सनृपतिर्नृपतिर्गुणवित्तमः ॥१९॥

प्रतिनिकुञ्जमकुण्ठितचेतनो नरपतिः प्रतिमाः स हरेः स्थिताः ।
समवलोक्य यथा निजशक्तिकं निरुपदीरुपदीकृतवान्वसु ॥२०॥

निशि शयानममुं समदर्शयन्निजतनुं गवि विन्दति धातुतः ।
शपरतः खलु नाम तदाश्रयन्निति वचोऽतिवचोविभवोऽवदत् ॥२१॥

भुवि निलीनमपारपराक्रमस्त्वमिह मां समनुद्धर यत्नतः ।
निजपुरं नृप मां नयतां भवान्यजतु माजतु मा तु मदर्चनम् ॥२२॥

इति निशम्य वचो नृपतिर्हरेर्हरिमवोचत वाक्यविदां वरः ।
विनयतो नयमार्गमनुश्रितो जितरणोऽतरणो विपदो द्विषाम् ॥२३॥

प्रतिदिशं विजयो यदि मे तदा त्वदनुशासनसाधनकारिता ।
मयि पदं प्रणिधास्यति निश्चयाज्जनय तां नय तां हरितां हरे ! ॥२४॥

भवतु ते विजयो जयतो भवन्निति निगद्य तिरोहितवान्हरिः ।
प्रबुबुधे च नरेन्द्रपुरन्दरः शयनतोऽयनतो मुदितो हृदि ॥२५॥

उषसि सम्प्रतिबुध्य स मन्दिरं प्रविरचय्य यथाविभवं महत् ।
प्रणिदधेऽवनितोऽभ्युदितं हरिं विधिवदाधिवदाधिनिवर्त्तकम् ॥२६॥

शिवपुरीमथ शाङ्करवासितां सुरसरित्प्रवहज्जलपाविताम् ।
नरपतिः प्रचचाल स वाहिनीपरिवृतोऽरिवृतो विधृतायुधः ॥२७॥

शिवपुरीपतिना सह युध्वना नृपतिना बलिना समजीयत ।
बलवतोऽरिपराभवकारिता न हि जनस्य जनस्य विचित्रकृत् ॥२८॥

सरिति तत्र निमज्य वपुर्निजं समपुनीत सरिद्गुरुपूजनम् ।
व्यधित भूमिपतिः प्रददौ धनं द्विजकुलाय कुलायनवेदिने ॥२६॥

समतनोत् पितृकृत्यमनेकशो विधिवदेष नरेन्द्रपुरन्दरः ।
द्विजवरान्सकलान्खलु भोजयन्नतनुताऽतनुतापि यशो महान् ॥३०॥

अकृत भूपतिरीश्वरदर्शनं लघु कृतार्थयितुं वपुरात्मनः ।
वसु निवेदयति स्म च पुष्कलं सुरवरै रवरैर्महिते हरे ॥३१॥

व्यधित तत्र सदैवतमायतं नवमगारमगारवरं नृपः ।
प्रथितमात्मसमाभिधमुन्नतं कृतिवरोऽतिवरो नृपसंसदि ॥३२॥

पटणनायकतां दधदीश्वरः प्रणतिमेव चकार नराधिपे ।
प्रणतिरेव बलिन्यधिके स्वतो निगदिता गदितापनिवृत्तये ॥३३॥

पदमधत्त निजं पटणे नृपस्तदधिपार्चितपादयुगोऽन्वहम् ।
पुरजनैरनुगीतयशास्त्वयं न हि नृपोऽहिनृपोऽमरनायकः ॥३४॥

अथ गयामगमन्नृपतिः स तां भवति यत्र समुद्धरणं पितुः ।
विहितकव्यविधेर्विधिवत्सुतैर्निरयतो रयतोऽपगतस्य च ॥३५॥

नृपतिरप्यकरोद्बहुशोऽवशः स्वपितृकव्यविधिं विधिवत्ततः ।
स्वपितृभक्तिमतामनिशं सतामुचितमस्ति तमस्तिरयन्ति ये ॥३६॥

जगदधीशपुरं पुरतोऽगमन्न हि कदापि च वर्णविवेचना ।
भवति यत्र यतो जगदीशितुः करदतारदता सभिदे जने ॥३७॥

सनिजशक्तिजगत्पतिदर्शनं मुसलिनश्च चकार स दर्शनम् ।
कृतितया ततया समलङ्कृतः सजनतो जनतोषकताश्रयः ॥३८॥

अटकजान्नमभुक्त नराधिपः सुविमलं हरिभोगवशेषितम् ।
विमलधीः परिपूततनूरभूद्विमलभावलभावपरिप्लुतः ॥३९॥

अथ स वङ्गकलिङ्गमुखान्बहून्नरपतिर्विषयान्निजकीर्तिभिः ।
धवलितानकृताम्बुनिधेर्जलैः स्वमसितासिसितासिमधावयत् ॥४०॥

अथ विधातृसुतं नदमाययौ तदुपवृत्तिकदीपमहीपतेः ।
बलवतो बलिनः स जिगीषया समरभूमरभूमिमधिश्रितः ॥४१॥

प्रववृतेऽथ रणोत्सुकयोस्तयोरतिभयङ्करतां प्रदधद्रणः ।
धनुरसिप्रभृतीनि रणोद्भटा विजयिनो जयिनोऽत्र भटा दधुः ॥४२॥

प्रहृतवानितरेतरमुद्भटो भटगणो धनुषो बहुलाञ्छरान् ।
असुवतेव धनूंषि शरावलिं युगपदेव पदे वहितात्मकः ॥४३॥

त्वयमगादरिसैन्यमनाकुलं सकलमेव नराधिपसैनिकैः ।
परिहृतं बलिभिर्निशितायुधै रविकरैर्विकरैरिव तत्तमः ॥४४॥
रिपुनृपो नृपतिं गदयाऽद्ययं प्रतिघयुक्तमनाः प्रजहार तम् ।
इति विचारितमन्तरनेन नो वनितताऽनितताहरणी कथम् ॥४५॥
उपगतामभिवीक्ष्य स तां हतामकृत केवलहुङ्कृतिहेतिभिः ।
भगवतीबलमात्मनि बिभ्रतां कथमशक्यमशक्यमपीतरैः ॥४६॥
अलमवर्षि नृपोपरि वैरिणा शितशरावलिरुन्नतमन्युना ।
वनितयाऽस्य मया न जयो भवेदिति गताऽतिगता विलयं भुवि ॥
परिघमक्षिपदेष नृपोत्तमस्तदुरसि प्रबलामकरोद्व्यथाम् ।
व्यथितताममसहन् परिमूर्च्छितो भुवि पपात पपात भटाश्रु च ॥४८॥
अचिरमेव समुत्थितिमाचरन्स युयुधे युधि सोत्सवमानसः ।
भुजबलेन समुन्नतचेतसामयमहो यमहोत्कट उत्सवः ॥४९॥
उरसि खड्गमकोशकमक्षिपन्नरपतेरतिदुस्सहतेजसः ।
स तु न सिद्धिमवाप न विस्मयो जयति सायति सा श्रियमन्तरा ॥
नृपतिनासिमुपक्षिपता शितं रिपुनृपस्य शिरो महदाहृतम् ।
बलिरदीयत किं खलु भूमये निपततां पततां परितो गणम् ॥५१॥
जितवतोऽरिमजय्यमपीशितुः स्तुतिमकुर्वत बन्दिजनाः पराम् ।
जय जयेति भटा जगदुः स्वनं परमुदारमुदारगिरो मुदा ॥५२॥

(युग्मम्)

अथ स तत्र वपुस्थमुपस्थितः प्रबलमद्रिसुतासमनुग्रहात् ।
अपसरेति यदा वदनात्तव त्रिदिवमेष्यति मेष्यति नो भवान् ॥५३॥

इति वचो विनिबद्धतरं तया जितसमस्तनराधिपमण्डलम् ।
किमयमित्यवहेलनमन्तरे विदधतं दधतं च नवं वयः ॥५४॥

अथ तयोरुभयोरितरेतरं प्रववृते तुमुलः स्वजयैषिणोः ।
कुशलयो रणकर्मणि भीषणः प्रियतमासुतमासु महाहवः ॥५५॥

रिपुरुदञ्चितमस्त्रममुञ्चत ज्वलनदैवतमस्य महीशितुः ।
उपरि सैनिकलोकदिधक्षया दुरितकारितकारितदुर्मतिः ॥५६॥

अदहदुज्ज्वलनो ज्वलनो जगच्चटचटेति समुच्चरितारवः ।
ध्रुवमशोभत तापितहाटकैर्विरचितं रचितं हरिणैव तत् ॥५७॥

नृपतिरेतदवेक्ष्य महोद्भटो दहनशस्त्रनिवृत्तिविधित्सया ।
जलददैवतमस्त्रमथाक्षिपत्समुदिता मुदिता जलदालयः ॥५८॥

मुदिरबृन्दमपाम्भरणोधितं तडिदुपस्कृतमुद्धतगर्जनम् ।
सुरधनुस्समलङ्कृतमम्बरे जलमवर्षमवर्षदलन्तमाम् ॥५६॥

जलमयं जगदद्य युगक्षयं किमु विना सकलं घनमण्डले ।
समभिवर्षति शङ्कितमन्तरे भुवि जनेन जनेनवपुस्थयोः ॥६०॥

शमितमस्त्रमवेक्ष्य तदात्मनो जलददैवतकेन स तत्क्षणम् ।
रिपुरतीव रुषाकुलमानसः प्रहितवान् हितवान् फणिदैवतम् ॥६१॥

गरलमुत्सृजतः सृजतो व्यथामतिविशालसुपीनकविग्रहान् ।
जनयति स्म तदस्त्रमुदासितं विभु जगान् भुजगान्बहुशोऽरिणा ॥६२॥

तदुपदंशनसेव्य विमूर्च्छिता रणभुवि प्रथमे बलिनां नृणाम् ।
सपदि केचिदसून्विजहुः परं समितिगामितिगा नतिगा भुवि ॥६३॥

(युग्मम्)

असितमेष निरीक्ष्य नराधिपः सकलसैन्यमनन्तकलानिधिः ।
फणिगणैरथ पन्नगवैरिणां युधि दृढोऽधिदृढोन्नतविग्रहः ॥६४॥
जनयितारमतारमजीजपत्प्रमितमन्त्रमनुद्धतचेतनः ।
उदभवन् बहवो विनतासुता भुजगभोजनभोजनकर्मणे ॥६५॥
गरुडपक्षसहस्रसमुत्थितैरतिजवैः पवनैः खलु दारुणैः ।
प्रलयकाल उपस्थितिमाप्तवान् किमधुना मधुनाशकनोदितः ॥६६॥
इति जनैरुदटङ्कि विटङ्कितैर्मनसि शश्वदुपार्जितसद्गुणैः ।
अभवदस्तमयः खररोचिषो विमलमम्बरमम्बरवेष्टितम् ॥६७॥
अघसदौरगमुत्फणमण्डलं विहगराजगणः स रुषान्वितः ।
मकरसङ्घ इवागुरुयादसां निवहमावहमाचलसम्पदः ॥६८॥
अथ स मोहमयं समुदक्षिपद्रिपुनृपो नृपतिं प्रति रोषवान् ।
जगदपूपुपदर्धनिशीव तत्समुदिते मुदिते तिमिरेऽभितः ॥६९॥
तदपि सोऽथ रविस्मरणादपाकृत कृतोत्तमकीर्त्तिततिर्नृपः ।
प्रहितमस्त्रमुदस्तमवेत्य स प्रतिनृपोऽतिनृपो युयुधे शरैः ॥७०॥
चिरतरमिति युद्ध्यमानयोर्न व्यजयत कोऽपि शिलीमुखैर्विचित्रैः ।
प्रबलतरकदेवतानुचर्या भवति कथं विफला क्रमैर्विचित्रैः ॥७१॥
रविरनुदयमाप भान्युदीयुः पुनरुदये सति तिग्मभानुभानोः ।
प्रतिनृप भविता रणे महीयांस्त्वमिह न विश्वसिहीत्युवाच भूपः ॥
नृपतिरथ निशीथकाललाभे जपविधिनाऽभिमुखीचकार देवीम् ।
प्रणतिजनविपत्तिदुःखहन्त्रीमतिकरुणां समवृत्तिचित्तवृत्तिम् ॥७३॥

भगवति भवदीयमेनमुज्झस्यनुदिनचिन्तनसक्तमानसं माम् ।
अनुचितमिदमित्यवोचदेनामथ तमभाषत सापि सूनृतानि ॥७४॥
अयि नृप तव मानसप्रसादो भवतु घनात्यय ! पूर्ण ! शीतरश्मेः ।
भृशमिह रिपवो हता भवेयुः समिति पराभवमाप्य तावकास्त्रैः ॥७५॥
इति वचनममुं निगद्य सत्यं सपदि पुरोऽस्य तिरोबभूव देवी ।
इदमृतमुपधार्य वाक्यमस्याः शयनविधिं विदधे विशङ्कचित्तः ॥७६॥
उषसि नियमकर्म कुर्वता स्वं निजतनयाङ्कुतरूपधारिणी सा ।
अनुपदमथ कुर्वती शिशुत्वं नरपतिना जगदे वपुस्थितेन ॥७७॥
अयि चपलमते सुते त्वमस्मादिहि खलु गच्छ किल प्रयाहि नूनम् ।
त्रिरिति गमनवाक्यमाकलय्योपधितनया तमुवाच वाचमित्थम् ॥७८॥
त्वयि नृप विहिता मया प्रतिज्ञा बहुगुण सम्प्रति पूर्णतामयासीत् ।
अथ निजपदमीयते मया ते सुखमनिशं भवतात्स्वरेहि जन्यात् ॥७९॥
इति गदितवतीमिमामवोचच्छिथिलमनाः कृतवेपथुर्वपुस्थः ।
भगवति कपटेन हारितोऽहं रुचिकरमस्ति यदेतदाचर त्वम् ॥८०॥
तिरोहितायां सहसैव तस्यां चिक्षेप तस्याः प्रतिमां नदेऽसौ ।
श्रीमानसिंहेन युधि प्रवृत्तो निन्ये व्यसुत्वं च बलेन सार्धम् ॥८१॥
जित्वा रिपुं तं रणभूमिमध्ये श्रीमानसिंहो नितरां स रेजे ।
उन्मत्तकुम्भीन्द्रपराजयेन नृकेसरीव प्रबलो महीयान् ॥८२॥
स्वप्ने निशायां समुपेत्य देवी राजानमाजानुविलम्बिबाहुम् ।
आह स्म वाचं हितवाञ्छयैव विराजमानं द्विषतां जयेन ॥८३॥

नदोज्झितां मत्प्रतिमां द्विषा ते निस्सार्य यत्नान्नरनाथ ! वत्स ! ।
पुरे प्रतिष्ठाप्य निजावरोधे बलिप्रदानादिभिरर्चयस्व ॥८४॥

बलिप्रदानं भवतः कुले मे यावद्भवेत्तावदिह स्थितिर्मे ।
यावत्स्थितिः तावदिदं पदन्ते पुनर्विनङ्क्ष्यत्यतिनिश्चयोऽयम् ॥८५॥

इतीरयित्वैव तिरोदधे सा नृपो जजागार स मानसिंहः ।
अथो विनिस्सार्य नदाम्भसस्तां पुरीं प्रति स्वाञ्च निवर्तते स्म ॥८६॥

पुरीमुपेत्यात्मजजन्मनैव प्रपालितां भूपतिरुन्नतेच्छः ।
अन्तःपुरे कारितवान्मनोज्ञे सुमन्दिरं शिल्पिभिरुद्धबोधैः ॥८७॥

स मन्दिरे तत्र लसत्पताके विचित्रचित्राञ्चितकुड्यशोभे ।
तां स्थापयामास यथागमोक्तं द्विजैरनन्यप्रतिमप्रबोधैः ॥८८॥

राजन्यवेषाभरणैरनर्घैरलङ्कृताङ्गीं रविकोटिभासम् ।
संस्थापितां तामनुनागरी या चमत्कृतिः साऽभवदन्यकैव ॥८९॥

अम्बामयी किन्नगरी बभूव सुदुस्सहौजःप्रसरा समन्तात् ।
द्विषद्भिरित्थं समतर्कि चित्ते तदाप्रभृत्येव यदेयमास्थात् ॥९०॥

स उत्तरस्यां दिशि देशपालान् जिगाय युद्धे करमादितैभ्यः ।
जघान कांश्चित्प्रतिकूलवृत्तीनवर्द्धयच्चाऽप्रतिकूलवृत्तीन् ॥९१॥

या वाहिनी स्वोत्तरणेन सद्यो म्लेच्छत्वमापादयते हि हिन्दून् ।
तां वाहिनीमप्यवतीर्य राजा म्लेच्छाधिपानुच्चबलान्विजिग्ये ॥९२॥

कदाचिदाशां शमनस्य सोऽयं नराधिपाञ्जेतुमनास्तरस्वी ।
सह स्वपौत्रेण बलोर्जितेन जगाम सैन्यं सबलं प्रगृह्य ॥९३॥

स तापतीं नाम नदीं ततार नौकाभिरानायिनिवेदिताभिः ।
गुहेन गङ्गामुपनीतयेव नावा सबन्धू रघुवंशकेतुः ॥९४॥

पुरं स वर्द्धानमजय्यभर्तृ सैन्येन संवेष्टयति स्म सद्यः ।
संवेष्टितं तच्छुशुभे समन्ताद्वपुः परीवेषयुगुष्णरश्मेः ॥९५॥

अजय्यमप्यस्य पतिं पुरस्य रणे पराजित्य बलेन भूयः ।
पदं न्यधात्स्वस्य पुरे तदीये किं तद्भवेद्यद्बलिनामशक्यम् ॥९६॥

बालापुरं जेतुमनाः स्वपौत्रं प्रस्थापयामास स मानसिंहः ।
रणे स तत्रैव महेन्द्रलोकातिथित्वमासाद्य सुरत्वमाप ॥९७॥

तच्छोकसोद्वेगमनाः कियद्भिर्दिनैर्महेन्द्रातिथितामवाप ।
चिता त्वजीवं दहति प्रकामं चिन्ता सजीवं ह्यनयोर्विशेषः ॥९८॥

तमन्वगुः काश्चिदपि प्रजेशं प्रियानिसर्गप्रियतानिवासम् ।
पतिव्रतानामयमेव धर्मः प्रिये गते यत्क्रियतेऽनुयानम् ॥९९॥

पौत्रात्मजः स कृतवाञ्जयसिंहनामा
पश्चाद्भवाः प्रणयतः प्रपितामहीयाः ।
सर्वाः क्रिया विधिविदामुपदेशकारी
वीराग्रणीः प्रथितकीर्त्तिततिर्जगत्सु ॥१००॥

आसीद्यस्य पराजितामरगुरुः श्रीलक्ष्मणाख्यः पिता
माता यस्य सती सतीव्रतपरा यस्याग्रजौ भ्रातरौ ।
स्तः स्वन्ताघिपदाद्यजन्तजयतिप्राग्वर्तिरामाभिधो
रामस्यास्य कृतौ कवेरिह गतः सर्गो नवः सप्तमः ॥१०१॥

इति श्रीपर्वणीकरोपाह्वश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भसम्भव-
श्रीसीतारामकविविरचिते जयवंश-
महाकाव्ये सप्तमः सर्गः ॥७॥

अष्टमः सर्गः

अथ प्रकृतयः सर्वा जयसिंहं महाबलम् ।
गाङ्गैस्तोयैरुपानीतैरभ्यषिञ्चन्यथाविधि ॥१॥

प्रागेव रम्यवपुषो भवन्ति नृपसूनवः ।
तत्राभिषेकमासाद्य किं पुनर्मणयो यथा ॥२॥

रेजे काम इवाङ्गेऽसौ शौर्ये भीम इवाबभौ ।
विद्यायां गुरुवद्धर्मे युधिष्ठिर इवाऽद्युतत् ॥३॥

मनो गङ्गापय इव प्रतापो रविणा समम् ।
यशः पूर्णेन्दुना तुल्यं बभ्राज धरणीपतेः ॥४॥

जानुप्रणयिनौ बाहू चक्षुषी श्रुतियायिनी ।
करौ करगृहीतारौ सरोजवनतो जितात् ॥५॥

अब्धेरिवास्य गाम्भीर्यं बुद्धस्येव क्षमान्तरे ।
सर्वसहत्वमभवद्भूमेरिव महीपतेः ॥६॥

सम्पदीन्द्र इव भ्रेजे शासने धर्मराडिव ।
पितेव पालने रेजे जयसिंहो नराधिपः ॥७॥

तैक्ष्ण्यं तैक्ष्ण्यस्य समये मार्दवं मार्दवस्य च ।
मध्ये मध्यमवृत्तिञ्च बिभरामास सूर्यवत् ॥८॥

सितपक्षेन्दुवद्वृद्धिं लेभे कृष्णेन्दुवत्क्षयम् ।
न प्रापद्द्विषतामेतदन्यथैव निरन्तरम् ॥६॥

विक्रमक्रान्तभुवनो बलिनिग्रहकारकः ।
महेन्द्रानुजतां बिभ्रत्त्रिविक्रम इवारुचत् ॥१०॥

गृहाणीव वनान्यासन्वनानीव गृहाणि च ।
प्रतापतपने यस्य भासयत्यखिला दिशः ॥११॥

मन्त्रोऽस्य वव्रृते देशस्तमसेवावृतोऽभितः ।
फलितः सन्भृशं रेजे सदृशं दिवसेन सः ॥१२॥

रात्रिन्दिवविभागेन कुर्वन् पौरुषमात्मनः ।
कृतषड्वैरिविजयो मनुवद्ददृशे नृपः ॥१३॥

उपायाः सेव्यमानास्तु न विचक्रुः परस्परम् ।
सम्भाव्यमानाः प्रभुणा भृत्या इव सुवृत्तयः ॥१४॥

दम्भं दम्भिषु शुद्धेषु शुद्धवृत्तिं चकार सः ।
अनभ्युदयमापेदे रविवन्न कदाप्यसौ ॥१५॥

मित्राणि मित्रवत्तस्य राज्ञोऽरय इवारयः ।
जनतावशमायान्ति न्यायवृत्तिवशस्य तु ॥१६॥

राजानो दानकर्त्तारो वर्षासु जलदा इव ।
सर्वेऽपि सर्वदैवासन् तस्मिन्दातरि शासति ॥१७॥

न जज्ञे कस्यचिद्द्रोहः कस्मिंश्चिदपि भूपतौ ।
अनन्यशासितामुर्वीं पातीन्दोः सममम्बुजे ॥ १८ ॥
रजस्वला वध्व इव न कदाचिद्दिशोऽभवन् ।
रजस्वला धर्मविदा यदा भूस्तेन पालिता ॥१६॥
अक्ष्णोऽरिजनकामिन्या यथापप्तन्भुवस्तले ।
तस्मिन्शासति तु व्योम्नो नापतन्नतिवृष्टयः ॥२०॥
स्वसुहृद्वनितानेत्रे नैर्मल्यमभवद्यथा ।
न तथा भूमिलोकेऽभूद्यजत्यस्मिन्सुरान्भृशम् ॥२१॥
प्रतापाग्नावजुहवुः शलभाः शलभा इव ।
अतनुं तनुमात्मीयां जयसिंहे नराधिपे ॥२२॥
प्रतापज्वलनाद्भीता दीप्यमाना दिवाभितः ।
मूषका न बहिर्जग्मुर्मूषीविरहकातराः ॥२३॥
नोपद्रवं शुकाश्चक्रुः केदारेषु समृद्धिषु ।
उपद्रवपदार्थस्य लोपादिव तदाहितात् ॥२४॥
परचक्रभयं नासील्लोकेष्ववति भूपतौ ।
अबिभेत्प्रत्युत यतः परचक्रं जनाद्भृशम् ॥२५॥
पापेष्वालस्यमालोकि न धर्मेषु कदाचन ।
जनस्य सर्वस्य पुरे तपत्युर्वीन्द्रभास्करे ॥२६॥
स्तेयादिका चौर्यवृत्तिः सापत्रपमनस्तया ।
ययौ कुत्रापि महतां नोचिता पुरतः स्थितिः ॥२७॥

कालेऽप्युपस्थिते लोकं जहार पुरजं यमः ।
भीतः सन्निव किं वाच्यमकाले तु नृपेऽवति ॥२८॥

परिवेत्ता न कोऽप्यासीद्भुवने भवने पुरे ।
अदृष्टमप्यन्यथात्वं नेतुं दक्षे नराधिपे ॥२९॥

कृतलक्षणता केषां नोदियायोदिते नृपे ।
भानुमत्युदिते भासामुदयो ह्यार्थिको यतः ॥३०॥

राज्ञोऽमात्याश्च निर्धार्या जज्ञिरे न बुभुक्षिताः ।
भस्मकोपहता नित्यमप्रमेयभुजो यथा ॥३१॥

अलङ्कर्मीणतां बिभ्रत्को न वर्णेष्वजायत ।
अलङ्कर्मीणभूपाले चारचक्षुषि राजनि ॥३२॥

नार्हंयवः केऽप्यभवन्ननर्हे च पदे जनाः ।
सर्वे शुभंयवोऽभूवन्विना रिपुगणं रणे ॥३३॥

रुदतोऽपि निजान्दारान्विहाय सपदि द्विषः ।
कीर्त्तिभिः सार्द्धमगमन्दिगन्तान्दश दंशिनः ॥३४॥

दन्तावलाः परिणताः कुशला रणकर्मणि ।
दिग्दन्तिन इव भ्रेजुर्वीरस्य धरणीपतेः ॥३५॥

सर्वेऽप्युच्चैःश्रव इति ख्यातिमश्वा ययुर्भुवि ।
तदैकोच्चैःश्रवस्संज्ञा भिन्नास्पदतया बभौ ॥३६॥

रथिनोऽपि भुवः पृष्ठे सम्बाधमिव बभ्रमुः ।
वैमानिका इवाकाशे चकासाञ्चक्रुरुच्चकैः ॥३७॥

पत्तयो जन्यकुशला मानिता बहुभिर्धनैः ।
कार्यान्तेषु कृतज्ञत्वं महदस्य न्यवेदयन् ॥३८॥

परिणिन्ये स विधिवद्राजकन्याः समञ्जसाः।
शरत्पूर्णेन्दुवदनाः सरोजनयनश्रियः॥३९॥

कोकिलामधुरालापाः सुदतीः पल्लवाधराः।
रम्भादण्डोरुयुगलास्तमिस्रकबरीः परम् ॥४०॥

नितम्बगुर्वीः स्वौन्नत्यजितकुम्भस्तनद्वयाः।
यासामपाङ्गप्रणयी सदैवास्त मनोभवः ॥४१॥

ताभी रराज नितरां ताराभिरिव चन्द्रमाः।
तेन ता रेजुरनिशं तारा इव सुधांशुना ॥४२॥

विषयानुपभुञ्जानस्ताभिर्भृशमजायत ।
कृतार्थस्तेन सह ता रममाणाः परस्परम् ॥४३॥

ताभिः सम्भुज्य भूमीन्द्रोऽवमेनेऽप्सरसां गणम् ।
समासाद्य पतिं तं ता महेन्द्रादीन्वमेनिरे ॥४४॥

इन्द्रादिकान् समुत्सृज्य रागस्तस्मिन्नवर्द्धत ।
देवाङ्गनानामनिशं रूपधेयमनोहरे॥४५॥

विजिगीषा दिशां जज्ञे नृपतेरर्कतेजसः ।
तमांसि प्रोषिते ह्यर्के मलिनीकुर्वते जगत् ॥४६॥

ततः प्रत्यचलत्प्राचीं प्राचीनविजिगीषया ।
समीचीनरथारूढश्चतुरङ्गबलो बली ॥४७॥

रजोभिरावृते व्योम्नि भूता भूता समन्ततः ।
भानुमानन्तरा सायमस्तमाप समन्ततः ॥४८॥
रथध्वनिघनध्वानसम्भ्रमाकुलचेतसः ।
वनेषूपवनेष्वद्रौ ननृतुर्बर्हिणो मुदा ॥४९॥
प्राच्यां ये ये च विषया बलवत्स्वामिका अपि ।
तदीशान्युद्धविधिना सन्नतानकरोन्नृपः ॥५०॥
कांश्चित्सम्भावनादेव कांश्चिद्भीतिप्रदर्शनात् ।
वशीचकार भूपालान्सहसा स धनुर्धरः ॥५१॥
विजिगीषुर्दाक्षिणात्यानवाचीं ककुभं ययौ ।
जयसिंहो महीपालः कर्कस्थो भास्करो यथा ॥५२॥
वशीचकार नृपतींस्तस्यां दिशि पुरे पुरे ।
सन्नतानोजसा स्वेन प्रणिपेतुः पदोश्च ते ॥५३॥
तस्यां दिश्यपि तत्तेजो ववृधे प्रत्युताऽन्वहम् ।
न चिह्लाय कदाप्यर्कबिम्बस्येवोष्णरश्मयः ॥५४॥
ततः प्राप बली कञ्चिन्नाम्ना सेवितशम्भुकम् ।
राजानं सेवनाच्छम्भोर्दुर्जयो योऽपरैः परम् ॥५५॥
युद्धं महत्प्रववृते तेन सेवितशम्भुना ।
समं वसुमतीन्द्रस्य वृत्रेणेव शचीपतेः ॥५६॥
शिरस्येको भुजे चैको वक्षस्येको महीपतेः ।
निचखान शरानित्थं शम्भुः शम्भुपराक्रमः ॥५७॥

विधिभारवहे शीर्षेण भुजे भूभारभारिणि।
वधूकुचभरोद्वाहे वक्षसि क्ष्मापतेः कुतः ॥५८॥
शरमात्रनिखातेन व्यथाव्यथितचेतसः।
पुष्करेऽभिहते पुष्पैरुन्मत्तस्येव दन्तिनः ॥५९॥

युग्मम्

राजापि द्विषतः कण्ठे शरमारोपयत्क्षणात्।
कण्ठेऽस्य कतिविद्याः स्युरिति बोधाय किञ्चन ॥६०॥
द्विषच्छङ्करगणं राज्ञि प्रजिघाय यमुत्तमम्।
स राजक्षिप्तबाणौघैः संयुज्य पतितः सह ॥६१॥
शक्तिमप्यक्षिपद्राज्ञि शम्भुर्भूमिभयङ्करः।
आश्रितः सज्जनः काले कार्ये किन्नोपयुज्यते ॥६२॥
तामापतन्तीं वेगेन दृष्ट्वा सम्भ्रममाप सः।
अवष्टभ्य मनोधैर्यादचिरं शक्तिमक्षिपत् ॥६३॥
पथि सा पातयित्वा तां सत्वरं शम्भुमस्तके।
न्यपतत्सोऽपि सम्भ्रान्तो धरित्रीं शरणं ययौ ॥६४॥
आलम्बमाने धरणीं तस्मिञ्छम्भौ महाबले।
हाहाकारो महानासीन्नासीरपरिवर्त्तिनाम् ॥६५॥
क्षणेनोत्थाय परुषं जल्पन्वचनमुच्चकैः।
सद्यः सज्यं धनुः कृत्वा ववर्षेषूरिवाम्बुदः ॥६६॥
प्रावृट्काले समुत्पन्ने शरवर्षैरनन्तरैः।
रवावाच्छादिते तत्र घोरः स समयोऽभवत् ॥६७॥

उत्तत्रास विहङ्गानां गणोऽगणनकैः शरैः ।
मध्ये विद्धं पयोदानां चक्रं पाथांसि चाकिरत् ॥६८॥

एवमापत्समुद्रान्तर्ममज्जुर्जन्तवोऽखिलाः ।
जयसिंहं महीपालं त्राहि त्राहीति चाब्रुवन् ॥६९॥

स तेषां त्रासमालोक्य शम्भुमद्भुतविक्रमम् ।
वितर्क्य तर्कयामास दैवीमाया न मानवः ॥७०॥

अथ सस्मार नृपतिर्विपन्मग्नोऽपि धैर्यवान् ।
निजेष्टदेवत मिष्टसम्पादनकृतिव्रताम् ॥७१॥

सोपतस्थे पुरोऽमुष्य तां विलोक्य ननाम सः ।
तुष्टाव च पदै रम्यैरथ संग्राममूर्द्धनि ॥७२॥

चतुर्भुजां त्रिनेत्रां तां भक्तानुग्रहकारिणीम् ।
नमामि त्वामहं तीर्णं कुरु मामापदर्णवात् ॥७३॥

त्वयि यो रम्यभावेन वृत्तिमातनुते नरः ।
श्रेयः स एव लभते वक्तुं नैवेति शक्यते ॥७४॥

अरम्यभावं स्मरतामपि नश्यति कल्मषम् ।
ज्ञात्वाऽज्ञात्वाऽथवा स्पृष्टो दहत्येव हि हव्यवाट् ॥७५॥

इति स्तुता भगवती तमुवाच नराधिपम् ।
प्रसन्नचित्ता हर्षाय कस्य न स्यान्निजस्तुतिः ॥७६॥

मा शोचीरिह राजेन्द्र मानसिंहकुलोद्भव ।
मानसिंहकुलोद्भूतिर्न हि साधारणी यतः ॥७७॥

भविष्यति जयो जन्ये सन्नतिं लप्स्यते रिपुः ।
प्रसादं याहि चेत्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥७८॥

अथ भूयोऽपि युयुधे शम्भुना साकमीश्वरः ।
जायमाने तयोर्युद्धे भानुरस्तमितोऽजनि ॥७९॥

श्वो नौ पुनः सुतुमुलो भविष्यति रणो महान् ।
इत्युक्त्वा तावुभौ वीरौ विरेमतुरतो रणात् ॥८०॥

निशीथे प्रेषितो देव्या गणः कोऽपि तमामयौ ।
उवाच च वचो वाग्मी किङ्करोऽस्मीति ते नृप ॥८१॥

शम्भो मे दीयतां दण्डः प्रणतेन पदोस्त्वया ।
अन्यथोष्णीषमिव ते हरिष्यामि शिरोऽचिरम् ॥८२॥

इति लेखं पत्रमध्ये लिखित्वाऽदित तस्य सः ।
शिरोवेष्टनमादाय पत्रं संस्थाप्य पाहि माम् ॥८३॥

इति राज्ञो वचः श्रुत्वा तथैव विदधे च सः ।
पुनर्भूपतिमायातस्तमापृच्छ्य गतः पदम् ॥८४॥

प्रबुद्ध्योषसि विस्मेरः शिरोऽनुष्णीषमात्मनः ।
पश्यन् पत्रं ततो लब्धं वाचयित्वाऽन्वशङ्कत ॥८५॥

अथो गलदहङ्कारो न्यस्तशस्त्रोऽतिसम्भ्रमः ।
उपेत्य तं नरपतिं पादयोः प्रणनाम सः ॥८६॥

प्रणिपातपरे तस्मिन् कृत्वाऽनुग्रहमुच्चकैः
निवृत्तो वरुणस्याशामाशंसितजयोद्धुरः ॥८७॥

तत्रत्यानपि भूपालानुत्खाय प्रतिरोप्य च ।
तेभ्यो यथावदादाय करं प्रास्थित चोत्तराम् ।।८८।।

हूणकाम्बोजकश्मीरकामरूपादिकान्बहून् ।
विषयान्सन्नतान् कृत्वा न्यवर्तत निजां पुरीम् ।।८९।।

दिग्विजेतारमायान्तं राजानं पुरजा जनाः ।
आशीर्भिरेधयामासुश्चिरं त्वं जयतादिति ।।९०।।

प्रविश्य पुरमात्मीयामात्मीयान्मन्त्रिणो जनान् ।
बन्धूंश्च सुहृदः कान्ताः पप्रच्छ कुशलं नृपः ।।९१।।

चिरं भुक्त्वा राज्यं भुवि नरपतिर्निर्गतरिपौ
यशांसि ख्यातानि प्रतिदिशमपाराणि कृतवान् ।
धुरं धुर्ये भूमेरधिभुवनभारं क्षमतमे
सुते हित्वा पौरन्दरमलभतातिथ्यमतिथिः ।।९२।।

आसीद्यस्य पराजितामरगुरुः श्रीलक्ष्मणाख्यः पिता
माता यस्य सती सतीव्रतपरा यस्याग्रजौ भ्रातरौ ।
स्तःस्वन्ताधिपदाद्यजन्तजयतिप्राग्वर्तिरामाभिधौ
रामस्यास्य कृतौ कवेरिह गतः सर्गोऽष्टमोऽयं नवः ।।९३।।

इति श्रीपर्वणीकरोपाह्वश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भ-
सम्भव श्रीसीतारामकविविरचिते-
जयवंश महाकाव्येऽष्टमः सर्गः ।।

-:❀❀:-

नवमः सर्गः

पैतृकं पदमवाप्य समृद्धं रामसिंह इति विश्रुतनामा ।
राजते स्म रजनीकरकीर्त्तिर्भानुमानिव समभ्युदयाद्रिम् ॥१॥

शर्मणे निखिलदेशजया यः शिश्रिये जनतया ह्युपदाभिः ।
निर्जराधिपवरो वरवीर्यः स्वः पदे सकलदेवतयेव ॥२॥

सन्नते सकृपताऽकृपताऽरौ तस्य नित्यमभवन्निहतारेः ।
स्वां पुरं समकृतानरिमेव द्यामिव द्युपतिरद्भुतकर्मा ॥३॥

को न यस्य गुरुरेव विपश्चित्किं न शास्त्रमपि संस्तुतमासीत् ।
का न यं त्रिभुवनस्य च कान्ता वाञ्छति स्म कुसुमेषुसरूपम् ॥४॥

नाश्रयोऽजनि स कस्य गुणस्य क्ष्मापतिः क्षमतमोऽवनिभारे ।
सक्षमो विहितमन्तुषु जज्ञे पादनीरजयुगे पतितेषु ॥५॥

नास्तकीमतिमपास्य समस्ता नास्तिका अपि जना जनपालात् ।
बिभ्यतोऽजनिषताऽस्तिकभावं गौरवेण दधतो मतिमन्तः ॥६॥

धर्ममेव पि रं जनतासीज्जानती तु परिपालयितारम् ।
मन्यते स्म मृतवत्यपि सैनं तारणान्नरकतो निजपुत्रम् ॥७॥

शासति प्रियतमे नरनाथे भूमिमन्वहमजस्रमपाराम् ।
सा सतीव न जगाम सुशीला पारदार्यमविदारितधर्मा ॥८॥

काममेव जनता वशयित्वा संस्थिता न तु सतां नृपभीता ।
अत्यजन्मदविशेषमजय्यः सर्वलोकजयजं कुसुमेषुः ॥९॥

रोष एव न रुरोप कुतोऽन्ये युक्तरोषविषयेषु सपत्नाः ।
युक्तमप्यकृपताप्यनरोषं न व्यलोकि यदमुष्यनिदानम् ॥१०॥
लुभ्यतापि न जनेन बभूवे क्वापि वस्तुनि परं सुलभेऽपि ।
स्वेच्छयाप्तमसुलभ्यमहायि क्षान्तिनिष्ठमनसा न कदापि ॥११॥
मानसानि मुमुहुर्न जनानां रामसिंहनृपभानुमतीह ।
सूदिते दिनमुखानिव नित्यं नाशितावतमसान्यमलानि ॥१२॥
दम्भितानुदितता बहुधासीत्प्राणिषु प्रथमतो यदि नासीत् ।
मान्द्यमाप हतपादजचारा भा विधोरिव दिनेऽकरचारा ॥१३॥
चारुताऽजनि जनेषु समर्घा निस्स्वता तु तदचारुतयाऽऽपि ।
आपदोऽपि विपदो महतीश्चेल्लेभिरेऽधिभुवनं कथमेताः ॥१४॥
सुष्ठु कर्म कृतकार्मणमासीद् भूमिजेषु सकलेषु जनेषु ।
साधुकर्मवशता जनताया नान्यथेति मम निश्चय एव ॥१५॥
दारभर्तृषु परस्परमुच्चैः प्रेमकार्मणमिव प्रतिजज्ञे ।
तातपुत्रमितरेतरमासीद्वत्सलत्वगुरुभक्तित्रदुच्चैः ॥१६॥
ब्रह्मकर्मनिरता विरताद्या ब्राह्मणा निगमपारमुपेताः ।
शास्त्रतत्त्वकृततत्व विचारा रामसिंहनगरे स्म वसन्ति ॥१७॥
नीतयो न वनिता इव नासन् सम्पदामनिशमुन्नति कर्त्र्यः ।
आपदामुपहतिं विदधत्यः शर्मकर्मरसिका रसिकानाम् ॥१८॥
आत्मशर्मणि न हर्षविशेषो यत्र राज्ञि च जनस्य बभूव ।
नापरस्य विभवा विभवेषु प्रोदितौ न किल हर्षविषादौ ॥१९॥

सर्वथा परहितेषु रतानां नारतिः समजनिष्ट जनानाम् ।
स्वं हितं हि समुपेक्ष्य परेषां साधयन्ति परमं प्रियमार्याः ॥२०॥

रोगितैव रुरुजे न कदाचित्तद्वशो भवति हि स्म जनस्तु ।
भोगिता न परमौरगवर्गे किन्तु भूमिजनगापि रराज ॥२१॥

रूपधेयमवलोक्य जनानां कस्य नामरगताऽजनि शङ्का ।
निर्निमेषनयनत्वममीषां नावलोक्य तु निवृत्तिमसावैत् ॥२२॥

श्रीश्चलापि जनतागुणबद्धा मूर्तिमत्यवसदेव पुरान्तः ।
लम्भितो हि किल बन्धनमीशो नो बलिर्विचलितुं प्रभुरस्ति ॥२३॥

यो जनोऽत्र पुरि सौख्यमयासीत्तस्य चित्तमचलन्न हि नाके ।
शर्मणो ह्यनवधेरुपलम्भे भाविशर्मणि कथं जनलिप्सा ॥२४॥

यौवनोद्भवविशेषमनोज्ञो रामसिंहनृपतिर्नृपकन्याः ।
रूपदर्पजितदर्पककान्ताः स्वानुकूलचरिताः परिणिन्ये ॥२५॥

तेन ताः कृतितयाश्रितवृत्तास्ताभिरेष कृतकृत्यतया च ।
इन्दुनेव विमलेन रजन्यो रात्रिभिः पुर इवेन्दुरुदीतः ॥२६॥

वल्लभस्य मनसो विषयो यत्तद्वधूजनमनःप्रसृतीनाम् ।
साहचर्यनियमः समलोकि न्यायधूमदहनोभयतुल्यः ॥२७॥

भूषणान्यपि नरेन्द्रवधूनामङ्गमाप्य सफलं निजजन्म ।
चक्रिरे सकलपावनकर्त्री साध्व्युपक्रममपीच्छति गङ्गा ॥२८॥

राजहंस इति भूपतिवर्यो नायमस्ति मनुजो ध्रुवमेव ।
स्यात्कथञ्चन हि यस्य वधूनां मानसे विमलवारिणि वासः ॥२९॥

अम्बुदोऽयमिति निश्चितमेतद्दर्पकाग्निमुदितं स्ववधूनाम् ।
शान्ततामुपनिनाय यतोऽयं यो रसेन सहसा बहुलेन ॥३०॥

माधवर्तुमधिगम्य विहाराश्चक्रिरे निजवधूभिरनेन ।
शाखिवृन्दपरिवर्द्धितशोभापल्वलाम्बुशिशिरोपवनान्ते ॥३१॥

चूतनूतनदलान्वयशोभां माधवेतरऋतुः किमु कुर्यात् ।
नायिकाधरसमत्वकरी या साधुरेव हि महापदलम्भी ॥३२॥

कोकिलः किल कलं कलभाषी भाषते स्म यदसौ रमणीभ्यः ।
स्वाधिकं कलमिवालपतीभ्यः किं ददौ निजपरीक्षणमेव ॥३३॥

तत्र तेन सह ता रममाणाश्चक्रिरेऽवमतिमिन्द्रगृहिण्याः ।
नन्दने समनुभूतसुखेऽपि स्वर्गलोकपतिना सह पत्या ॥३४॥

तत्र वारवनिताक्रियमाणं हारिलास्यमकृतादरवैरः ।
वीरवैरिवनितावरदक्षो भूपतिः समवलोक्य जहर्ष ॥३५॥

वैणिकैरधिसभं क्रियमाणालापकर्मणि मधौ वनजैणाः ।
सक्तिमापुरधिकां खलु सभ्या हर्षजाड्यमगमन्न हि चित्रम् ॥३६॥

इत्थमात्मसदृशं विहरन्त्यो भूभुजा समनयन्बहुकालम् ।
तासु कापि समधत्त नरेन्द्राद्गर्भमुन्नततरान्तरवृत्तात् ॥३७॥

गर्भभारशिथिलाङ्गविशेषा पाण्डुवर्णवदनापि रराज ।
राजपत्न्यतितरां विकृतिर्वा भूषयत्यतिमनोहरवस्तु ॥३८॥

संस्कृतीरकृत पुंसवनाद्या वित्तशाठ्यमतिवर्त्य महीन्द्रः ।
वित्तसत्त्वमुपलभ्य महान्तः कुर्वते न हि शठत्वमुदाराः ॥३९॥

गर्भवेश्मनि भिषग्वरयुक्ते ज्योतिषागमविदुद्गतसङ्गे ।
मङ्गलं समयमाप्य निविष्टा राजपत्न्यथ सुतं समसूत ॥४०॥
आनकाः सुतजनुर्मुदितस्य क्ष्मापतेरधिगृहं प्रणिनेदुः ।
किञ्च वारवनिता नवहावा यौवनोन्मदमदाः समनृत्यन् ।४१॥
पुत्रजन्ममुदितो नरनाथः शर्मणेऽदित वसूनि बहूनि ।
ब्राह्मणाय गुणगौरवभाजे युक्तमेव तदुदारजनानाम् ॥४२॥
जातकर्मसमलङ्कृतियायी राजसूनुरतिकान्तिमनोज्ञः ।
जायते स्म सकलो जनतापस्तापमाप मुदितं जगदासीत् ॥४३॥
जज्वलुर्हुतभुजो ह्यवरत्तं निर्मलानि ककुभां वलयानि ।
शीतमन्दसुरभित्वमुपेता वायवो ववुरतीव तदानीम् ॥४४॥
अम्भसां कलशयोन्युदयेन प्रोदभूदपि विना नृपसूनोः ।
निर्मलत्वमुदयाददितितेजाः किन्त्वशक्यमयि नो विदधाति ॥४५॥
नामधेयमकृत स्वकसूनोः कृष्णसिंह इति भूमिमहेन्द्रः ।
कृष्णतां वहति विग्रहकान्तौ सिंहताञ्च यदयं निजवीर्ये ॥४६॥
शैशवेऽप्यधिजगे गुरुतो यः शस्त्रशास्त्रविषयेष्वधिदृष्टिः ।
विक्रमेण कृतवान् रणवीरः शत्रुवृन्दमजितो जितमेव ॥४७॥
कन्यका बहुमनोहररूपाः शीलधर्ममतिशालितचित्ताः ।
यौवनोदयमनोहरगात्रो राजसूनुरबला उदुवाह ॥४८॥
ताभिरङ्कुततमाभिरशङ्कं रामसिंहतनयो नयमार्गे ।
सञ्चरन्विहरति स्म वनान्ते पुष्पभारनतभूरुहवृन्दे ॥४९॥

तासु काचिदजनिष्ट मनोज्ञं सूनुमर्कसदृशौजसमस्मात् ।
विक्रमोद्धतमवेद्य पिता तं विष्णुसिंह इति नाम चकार ॥५०॥

उद्धतान्नतिमतो विदधे यः शैशवेऽपि मृगराजनिनादः ।
सम्परायभुवि सिंहनिनादं यत्र कुर्वति विचक्रुरिभेन्द्राः ॥५१॥

यस्य शास्त्रमखिलं दृशि दृष्टं यस्य चेष्टितमशेषमदर्शि ।
मार्दवोपहितमेव रिपूणां प्रातिकूल्यमपवर्त्य पुरस्तात् ॥५२॥

यादृशी रतिरभूत्पितरि स्वे क्वापि तादृगभवन्न तु यस्य ।
तातभक्तिरुचितैव सुतानां विस्मयोऽत्र न हि सन्मतिभाजाम् ।५३

रामसिंहनृपतिः सुतसौतिप्राप्तभाग्यविभवो बलशाली ।
दक्षिणां दिशमथो किल जेतुं सूनुना सह निजेन चचाल ॥५४॥

दक्षिणाधिपतिनातिबलेन वाहिनीपरिवृतेन समन्तात् ।
रामसिंहनृपतेरथ युद्धं सम्प्रवृत्तमतिभीममभानम् ॥५५॥

दानवेन बलिना परमेकः प्रोदपादि युवतौ खलु बाणः ।
भूभुजा तु बलिना रणमह्यां प्रोदपादिषत नामितबाणाः ॥५६॥

भूपचापजनितः शरसङ्घः कार्मुकेति पितृनाम ननाम ।
नो चकार खलु यौगिकमेतज्जन्यताश्रयवतामुचितं हि ॥५७॥

रैपवीं शरहतिं स्वशरौघैर्लीलयाच्छिनदसौ नरनाथः ।
द्वेषणोऽपि सहसा निजबाणैस्तच्छरानभिनदद्भुतमासीत् ॥५८॥

शक्तिमायुधमरी बलवन्तौ तीक्ष्णधारमलमाक्षिपतां द्वौ ।
तेन ताडितभुजान्तरमध्यौ तद्व्यथां गणयतः स्म न वीरौ ॥५९॥

पारिघीं समधिगम्य सपीडां रामसिंहनृपतिः सममूर्च्छत् ।
मूर्च्छिते सति नृपे रिपुसेनामूर्च्छितान्तरमुदुद्भवति स्म ॥६०॥

तं रथस्थमपनीय रणान्ताद्रामसिंहतनयः कुपितात्मा ।
वैरिणाथ युयुधे रणदक्षः शस्त्रशास्त्रकुशलो रवितेजाः ॥६१॥

वैरिवक्षसि शिलाघनभावे बाणपञ्चकमसौ निचखान ।
द्वारपञ्चकमिवारिसुलक्ष्म्याः तद्विधाय सपदि व्यविशद्गाम ।६२।

रोषवेगवशगेन रथात्स्वात्सत्वरं समवरुह्य परेण ।
स्वासिना नृपसुतस्य गलान्ताच्चिच्छिदे समुकुटो बत मूर्द्धा ।।६३।।

कृत्तमस्तकतया स कबन्धस्तस्य कण्ठमवगृह्य ममर्द ।
सङ्ख्यभूमिमपहाय विमाने संस्थितो त्रिदिवलोकमितः स्म॥६४।

मूर्च्छितोऽथ नृपतिश्चिरकालाच्चेतनां समधिगम्य सुतस्य ।
विक्रमञ्च निधनञ्च रणान्ते सन्निशम्य मुमुदे न शुशोच ॥६५॥

क्षत्रियो रणमुखे व्यसुरासीदित्यदो भवति हर्षनिदानम् ।
शोकहेतुरिदमस्ति किमस्मात् शोच्यते न हि कदापि सुधीभिः ॥६६

तत्र दक्षिणदिशि स्वकमङ्घ्रिं सन्निधाय स चिरं समुषित्वा ।
स्वां पुरीं निववृते सुतसूनोर्बाहुना समन्वितामवनीन्द्रः ॥६७॥

तं निशम्य समुपागतमीशं मन्त्रिणोऽभिययुरर्हणहस्ताः ।
हस्तिवाजिरथपत्तिकसेनास्तूर्यनिस्स्वनितमङ्गलघोषाः ॥६८॥

स्वामिनं समुपगम्य शिरोभिः पूजनञ्च विधिवद्विनिवेद्य ।
शर्म तेऽस्ति परिपृच्छय पुरस्तादास्थिता नृपमिमे समुदोऽन्तः ॥६९

मन्त्रिभिस्सह पुरोऽरमुपेतं गोपुरं पुरभवो वनितौघः।
द्रष्टुमात्मसदनोपरि रूढः क्ष्मापतिं क्षमतमं धुरि धुर्यम् ॥७०॥

हर्षयन्नभिविलोचनपातैस्तं प्रसादरसितैः सितकीर्तिः।
स्वं गृहं प्रविशति स्म नरेन्द्रः पूजितः सुतसुतेन नतेन ॥७१॥

राज्यं विधाय सुचिरं नयमार्गगामी
भूमौ यशांसि च वितत्य स रामसिंहः।
वार्द्धक्यलिङ्गपरिभूषितगात्रयष्टिः
स्वर्गाधिपार्चनमवाप दुरापमन्यैः ॥७२॥

आसीद्यस्य पराजितामरगुरुः श्रीलक्ष्मणाख्यः पिता
माता यस्य सती सतीव्रतपरा यस्याग्रजौ भ्रातरौ।
स्तः स्वन्ताधिपदाद्यजन्तजयति प्राग्वर्तिरामाभिधौ
रामस्यास्य कृतौ कवेरिह गतः सर्गो नवोऽङ्कैः समः ॥७३॥

इति श्रीपर्वणीकरोपनामश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भः
सम्भव श्रीसीतारामकविविरचिते जयवंश-
महाकाव्ये नवमः सर्गः ॥

—:❀ ❀:—

दशमः सर्गः

अथाधिगत्य प्रयतः समृद्धं पदं स पैतामहसिद्धबोधः ।
श्रीविष्णुसिंहो हतवैरिकुम्भी शशास लोकानमितप्रभावः ॥१॥
वनानि चक्रे द्विषतां पुराणि प्ररूढबर्हिर्भरभूमिकानि ।
शिवामुखोल्कानलहेतिदग्धतृणानि हिंस्रोपचितानि भूपः ॥२॥
प्रतापदीपज्वलनो जगत्यां प्रसृत्वरो यस्य नराधिपस्य ।
स्ववीर्यदर्पोद्धतचित्तवृत्तींश्चकार कांस्कान्स्ववशंवदान्न ॥३॥
स्वकीर्तिमुक्ताफलनिर्मिताभिर्मालाभिराजानुविलम्बिनीभिः ।
दिगङ्गना यः सकलः समस्ताः समस्तकालुष्यमलञ्चकार ॥४॥
विद्यासु सर्वासु सुदुर्ग्रहासु कृतश्रमः पण्डितसङ्गमेन ।
अवाप स ज्ञानमनाप्तमन्यैः कृतप्रयत्नैरपि बुद्धिमद्भिः ॥५॥
अयष्ट निष्टङ्कितदुष्टलोकः स्वर्गौकसो नित्यमुतेन्द्रमुख्यान् ।
महीमहेन्द्रः खलु विष्णुसिंहो यज्ञैरनन्यप्रतिमस्समृद्धैः ॥६॥
द्विजातयो येन नराधिपेन समर्चिताः सत्कृतिभिर्यथावत् ।
तथाशिषस्सम्परिलभ्य तेभ्यः शर्माण्यनेकान्युपलेभिरे हि ॥७॥
हितोपदेशादहितापकारी जनस्य सोऽयं जनको बभूव ।
न कोऽपि कस्याप्यपकारकारी परोपकारव्रतधर्मशाली ॥८॥
अलीकसम्भाषणतत्परेण जनेन केनापि कदापि नोषे ।
पुरेऽविते नीतिविशारदेन श्रीविष्णुसिंहेन नराधिपेन ॥९॥

धर्माय कार्याणि विकारयोगा जनस्य नासन् पुरि वैभवेऽपि ।
न तेपिरे केऽपि खलोत्थबाधैः खला इवोर्वीपतिशासनेन ॥१०॥

पारिप्लवं चित्तमवध्यमेव यद्योगिनाप्येष गुणः प्रवादः ।
वियोगिनो यत्र च योगिनो वा बबन्धुरेतच्चलमप्यतीव ॥११॥

विपश्चितां वेश्मसु केलिवेलात्रुट्यत्स्खलन्मौक्तिकजातभारः ।
सहोत्करेणोषसि मार्जनीभिर्बहिः कृतोऽभूत्परिचारिकाभिः ॥१२॥

चिन्ता तु चित्ते पदमाप नैव कस्यापि शासत्यवनीशवर्ये ।
सुखानुभूत्या दिवसानि रात्र्यः क्षणार्द्धतुल्यान्यतिवाहितानि ॥

परन्तपो भूतलभारदक्षो व्याधो जनव्याधिमृगेषु स्वेषु ।
कुर्वन्धनुः सज्यमजस्रमुर्व्यामपूर्व एवायमराजतोच्चैः ॥१४॥

दिवाकरभ्रान्तिमवापुरह्नि विलोकितारोऽस्य नृपस्य लोकाः ।
निशासु दोषाकरबुद्धिमापुर्यद्द्वेधसासौ विदधे द्विरूपः ॥१५॥

विकर्तनौजाः प्रसभं हतारिर्विवर्द्धिता वैरिगणोऽगणोनः ।
नृणामनेनावनिनायकेन न कोऽपि सादृश्यमवाप्तुमीष्टे ॥१६॥

वसूनि सूते स्म वसुन्धराऽपि रमण्यसूतात्मजमुग्धचित्ताम् ।
फलानि शाखा सुषुवे नवानि नासीदसूता खलु कापि वामा ॥

वामापि वाम्यं निजभर्तृकामे भेजे न कुत्रापि न कुत्सिताङ्गी ।
न कुत्सनं धर्मविधौ प्रशंसां नाशर्महेतौ हितदत्त दृष्टिः ॥१८॥

सन्तोषमन्तःकरणं द्विजानां पुरोद्भवानामधृतातितृष्णम् ।
सन्तोषतोऽन्यो द्विजजातिमाशु विनाशयत्येव हि निश्चयोऽयम् ॥

न क्षत्रजातं समपौष्टतुष्टि तुष्टाव तुष्ट्युद्भवहेतुमुच्चैः ।
अतुष्टिमालम्ब्य विपुष्टिमीष्टे न नष्टिमासादयते कदापि ॥२०॥

समांसमीनाः प्रतिवेश्म गावः पयःसमृद्धिं दधिरे जनेषु ।
दधीनि तक्राणि घृतानि तेभ्यो देवर्षिकार्याण्यभवंश्च पित्र्यम् ॥

आतिथ्यमातिथ्यकरा गृहिभ्यो यथास्वतोषं प्रतिघस्रमापुः ।
यत्रातिथेयाः सकला यदूपुर्जना हरेर्भावनयैषु नित्यम् ॥२२॥

सत्ये रता धर्मविदो विदोषास्तथापि दोषाकरतुल्यभासः ।
पुर्यम्बिकायां सरमाःसरामाः जना वसन्ति स्म समानभावाः ॥

अग्न्याहितैर्हव्यभुजां त्रयाणां हव्यैर्हुतैरन्वहमात्मभावात् ।
द्विजैरनन्यप्रतिमैः प्रतुष्टिर्बभूव वेदार्थविचारदक्षैः ॥२४॥

गृहाणि वेदध्वनिपावितानि पूतानि धूमैश्च विभावसूनाम ।
पतिव्रतापादपयोजरेणुधन्यानि धान्योपभृतानि रेजुः ॥२५॥

धर्मेण शासन्नगरीं नरेन्द्रस्तामन्यदेशान्तरगीतकीर्त्तिः ।
व्युवाह कन्या रमणीयमूर्तीरनेकदेशाधिपजा विजेता ॥२६॥

राज्ञीभिराभिर्जयवंशकेतुर्विलासशीलाभिरनुद्धताभिः ।
भोगान्स भुञ्जन्विविधान्नरेन्द्रः प्रसादयामास तृतीयमर्थम् ॥

गौडी सगर्भा नरनाथपत्नी विपाण्डुराभाननभासमाना ।
तिरश्चकारेन्दुमखण्डमाशु मलोदयाद्धीनमहीनकीर्त्तिः ॥२८॥

खेदेन गर्भोद्वहनोद्भवेन कृशत्वमासादितवन्ति रेजुः ।
अङ्गानि सर्वाणि नरेन्द्रपत्न्यास्सरोजकिञ्जल्कितकर्णिकावत् ॥

अलङ्कृतीर्दुस्सहभारधर्त्रीर्विहाय संस्थां खलु कुर्वती सा ।
निसर्गशोभाश्रयिभिर्निजाङ्गैरवाप शोभामुपमाविहीनाम् ॥३०॥

स्तनद्वयं पीवरतावलम्बि नरेन्द्रपत्न्या मुखनीलकान्ति ।
पयोभिरापूरितमन्तरे नु घटद्वयं नीलमणीवरुद्धम् ॥३१॥

दिने दिनेऽवर्द्धत गर्भवृद्ध्या महोदरं निर्वलि चोच्चनाभि ।
समध्यकूपं तलकोमलं वा तदुच्छ्रितं वर्तुलकूलमाभात् ॥३२॥

सीमन्तसंस्कारमसीमकीर्तिश्चकार तस्या विभवानुकूलम् ।
सीमन्तिनी सा शुशुभे विशेषमन्वर्थनाम्नी नरनाथपत्नी ॥३३॥

अथाधिपः पुंसवनाभिधानं चकार संस्कारमवारितार्थी ।
संस्कारवत्या समवापि शोभा चतुर्गुणा गौणकृतेन्दुमुख्या ॥३४॥

भिषग्वरैर्बालचिकित्सितेऽपि दक्षैरनेकैरनुकूलवाग्भिः ।
अधिश्रिते गर्भगृहे बिभाय प्रवेशतोऽत्यन्तबलो गदोऽपि ॥३५॥

मन्त्रागमाभिज्ञवरैरगारं मन्त्रप्रयोगैरनुकूलयोगैः ।
निरस्तबालग्रहभूतबाधं बभूव निस्साध्वसमद्भुताभम् ॥३६॥

ज्योतिर्नयप्राप्तयशःप्रकाशैर्जलाशयक्षिप्तघटीसुयन्त्रैः ।
सन्नद्धदृग्भिर्गणकैरजस्रमाशिश्रिये गर्भगृहं विचित्रम् ॥३७॥

गर्भक्रियाचारधृतालिकारा धृतोत्तमालङ्कृतिवाससश्च ।
स्त्रियोऽतिवृद्धास्तदरिष्टगेहमलङ्कृतञ्चक्रुरतिप्रवीणाः ॥३८॥

सतूलगर्भास्तरणास्तृताङ्गा स्थितोपधाप्रावरणादिका च ।
अधःकृताङ्गारहसन्तिकौघा रराज शय्या तदरिष्टगेहे ॥३९॥
युग्मम्

उपस्थिते गर्भविमुक्तिकाले शराम्बुराश्यद्रिसुधांशुवर्षे ।
सहोऽभिधे मासि तिथौ च शैले ग्रहोन्नतायां तदनन्ततायाम् ॥
निरम्बुदे व्योमनि पांशुहीने समीरणे वाति रवौ प्रकाशे ।
अनाविलत्वे सहजाधिके तु पयस्सु सूनुं समसूत राज्ञी ॥४१॥

तस्मिन्क्षणे दैवतमुक्तमासीत्प्रसूनवर्षं नभसः क्षमायाम् ।
आविर्भवत्युल्बणगीतकीर्तौ मनुष्यवेशे भगवत्यनन्ते ॥४२॥

भूतानि भूतान्यखिलानि तस्मिन्समुन्नतायायिगुणानि काले ।
तथाविधानां प्रभवो जनानां समुद्भवायेति किमत्र चित्रम् ॥४३॥

धरा सरोमाजनि रेणुसङ्घव्याजेन सम्भाव्य सहर्षचित्ता ।
पदं स्वराप्ते प्रकृतेऽपि पत्यौ सनाथता मे न हि नङ्क्ष्यतीति ॥४४॥

अरिष्टगान्येष तमांसि जह्रे शय्यागतोऽनेकविभाकराभः ।
खलोत्थमुच्चैश्च सतां जनानामरिष्टमिष्टानि ततान बालः ॥४५॥

बालेन तेनाप्रतिमप्रभेण प्रसूः प्रभामुन्नतमामयासीत् ।
विनिर्मला द्यौरिव नूतनेन कल्ये सवित्रा तिमिरापहन्त्रा ॥४६॥

त्रासं समासेदुररातिवर्गतमांसि सर्वाणि च बालभानौ ।
प्राप्तोदये सत्यपरेव रेजे वसुन्धरा सापि घनायिता द्यौः ॥४७॥

प्रसेदुरन्तःकरणानि गाढं सतां खलानान्तु तथा विषेदुः ।
सतामसाविन्दुरिव प्रतीतस्तथेतरेषां वडवाग्नितुल्यः ॥४८॥

असीमपुण्यं नृपतेर्वदामः श्रीविष्णुसिंहस्य किमेतदस्य ।
आविर्बभूवेह मनुष्यमूर्तिर्हरिस्स्वयं यस्य यतः कृपालुः ॥४६॥

पुरोधसा वेदविदांवरेण शिशुर्यथावत्कृतजातकर्मा ।
निसर्गतो नीतिविनीतिकर्मा रराज राज्ञस्तपसां फलं सः ॥५०॥

द्विषद्गजालीजयजातकीर्तिः शिशुर्भविष्यत्यनघो लघीयान् ।
सिंहेन तुल्यो जयसिंहनाम चकार तातोऽस्य ततोऽर्थवेदी ॥५१॥

सम्पूज्य विप्रान्बहुशोऽधिविद्यान्सुतस्य जन्मन्यतुलप्रभावः ।
श्रीविष्णुसिंहो मुदितैरमीभिर्दत्ताशिषः स्वीकृतवाननेकाः ॥५२॥

दोलाधिरूढो विशदे मुहूर्त्ते शिशुः प्रतापी तपनाधिकौजाः ।
पित्रोरनन्तां मुदमाततान जगद्धितानीकृतकीर्त्तिकेलिः ॥५३॥

शुभे मुहूर्त्ते सितपायसादिभोज्यं स चामीकरभाजनस्थम् ।
अश्नन्पुपोषातितरां जनन्यास्सौभाग्यमत्यन्तबली निजायाः ॥५४

चूडाविधिप्राप्तमनोहराभः समं वयस्यैः कृतबालकेलिः ।
सोऽयं कुमारो धृतमारलीलो न कस्य हर्षाय बभूव दृष्टः ॥५५॥

अथापरं सूनुमसूत साध्वी श्रीविष्णुसिंहाज्जगतीमघोनः ।
गुणैस्समस्तैर्नृपसूनुयोग्यैस्तमग्रजं योऽनुचकार बालः ॥५६॥

तन्नाम तातो विजयादिसिंहं चकार शास्त्रार्थविचारदक्षः ।
जयेन सिंहत्वममुष्य यस्मादलक्षि पूर्वादधिकं स्वसूनोः ॥५७॥

तावाश्विनेयाविव भासमानौ न भेदबुद्धिं स्म जनस्य धत्तः ।
तथापि विक्रान्तिविशेष एव सम्पादयामास विभिन्नबुद्धिम् ॥५८॥

उत्सङ्गगौ तौ तरलस्वभावौ पितुः परं रेजतुरुच्चवीर्यौ ।
सुवर्णवेद्योरिव कम्पमानौ महीरुहावङ्कुरितौ समीरात् ॥५९॥

तत्केलिकर्मेक्षणजन्यशर्मव्यतीतकालो बुबुधे न राजा ।
सुखे वियन्वै बहुलोऽपि कालो न शक्यते ज्ञातुमनङ्गतुल्यम् ॥६०॥

युग्मम्

यः पर्वणीग्रामविलब्धजन्मा गुणाग्रणीर्माधवभट्टशर्मा ।
तथा महाराष्ट्रकुलप्रसूतिः काशीनिवासाप्तगुणस्तपस्वी ॥६१॥
अगाधबोधो बुधसंसदन्तर्जयोद्धुरो धर्मधनः क्षमावान् ।
दानावदानैस्स गृहीतकीर्तिं श्रीविष्णुवर्माणमवाप भूपम् ॥६२॥
यथावदभ्यर्च्य बुधेश्वरन्तं नरेश्वरो वाचमुवाच रम्याम् ।
नतेन मूर्ध्ना चरणाब्जयुग्मस्पृशा विनीतोऽपि विनीतिवित्सु ॥६३॥
किं शर्म ते वेदविदां वरेण्य प्रष्टव्यं मया क्षेमकरस्य नित्यम् ।
अन्यत्र पुंसि प्रतिपश्यति स्वमक्षेमदूरीकरणाक्षमेण ॥६४॥
तथापि पुंसे गृहमागताय प्रश्नो विधेयः कुशलस्य रीतिः ।
सतामियं तामनुरोधिनो मेऽनुयोगवाणी भवति प्रवृत्ता ॥६५॥
देशः स को दुर्भगभाग्य एव त्वत्पादपाथोजरजोवियुक्तः ।
जीवत्योहो!यः कमलाकरो वा रविं विना यो लभते दशां काम् ॥
अनेन देशेन तथाविधं किं तप्तं तपः पूर्वभवेन वेद्मि ।
यतो दिने सत्यपि ते मुखेन्दोः प्रकाशमासाद्य कृतित्वमेति ॥६७॥
प्रयोजनं नोपलभे ततोऽन्यद्यद्विश्वपूतीकरणं पदैः स्वैः ।
वीतस्पृहाणां भवतां जगत्सु सञ्चारितायाः कुशसूचिबुद्धे ॥६८॥

जगद्दिदृक्षा न हि ते तथापि जगद्दिदृक्षैव धरामरेश।
प्रसाध्यते दर्शनलालसानि जगन्ति सन्ति प्रतिभावतां वः॥६९॥

पुरार्जितानि प्रसभं तपांसि मत्पूर्वजैर्यानि मया च शश्वत्।
तेषामसावस्ति हि पाककालो यद्दर्शनं वः कलुषात्मनां नः॥७०॥

सामीप्यभाजस्तव मे मुदन्तर्वृत्तिर्न मान्त्येव यतोऽतिपीना।
बहिस्सरत्यम्बुधिवीचिरिन्दुसमीपगेव प्रतिमुच्य वेलाम्॥७१॥

धन्या वयं वः स्थितिरत्र यस्मादधन्यमेव प्रतिभाति विश्वम्।
पुराभवोपार्जितपूर्णपुण्यविधानसन्तानगतारतम्यात्॥७२॥

इत्येव वाचं प्रणिगद्य तूष्णीं बभूव भूमीमघवा स वाग्मी।
विवेकिनो यद्विदुषां पुरस्तादयुक्तमत्यन्तवचः प्रगल्भम्॥७३॥

वचांसि जग्राह मनोहराणि मनोज्ञसम्भाषणकोविदः सः।
सभासदां मोदमलं वितन्वन्विद्वद्वरो माधवभट्टशर्मा॥७४॥

नरेन्द्रवर्यामलचित्तवृत्ते लोकोत्तरोऽयं विनयस्त्वदीयः।
केनाऽपि नाचारि विचारदक्षो दक्षोऽसि भूभारभरेऽप्यवाह्यो॥७५॥

सा दक्षिणाशामनुदक्षिणाशा व्यहायि पूर्वैर्महितैर्मदीयैः।
अधिष्ठिताद्यावधि भूमिचन्द्र काशी विकाशीकृतशम्भुमूर्त्तिः॥

यामाश्रयन्यो भवति प्रकामं भुङ्क्ते स भोगान्सति जीवने तु।
मृतस्तु यायाद्गिरिशालयं ना नानाविधैर्भूतगणैरुपेतम्॥७७॥

त्रिस्रोतसा या परिपावितैव या कल्मषाणि प्रसभं विहन्ति।
माहेश्वरीं याधिवसत्यजस्रं जटां प्रवाहैः प्रवहत्यखण्डम्॥७८॥

ये शास्त्रिणो वैदिकभावमेते नयन्ति ये वैदिकताश्रयास्ते ।
न शास्त्रितामश्नुवते द्वयेऽपि यामाश्रयन्त्वद्भुतमुर्वरेन्द्र ॥७६॥

विद्यावतामाकर एव काशी खनिर्मणीनामिव तावकी भूः ।
विश्वेश्वरेणाध्युषिता स्वयं या सदैव तस्याः किमु वर्णनीयम् ॥८०॥

आकर्पिता भो नरनाथनाथ ! वयं यशोरश्मिभिरुल्बणैस्ते ।
त्वामभ्युपेताः खलु चुम्बकाख्यैर्विदूरदेशस्थितिभाञ्ज्ययांसि ॥८१॥

प्रशंसया त्वत्कृतयाऽनयाऽलं शक्तिं मदीयामविबुद्ध्य तत्त्वात् ।
गतानुगत्या जगतः प्रवृत्तिः सर्वस्य याथार्थ्यमनादृतस्य ॥८२॥

इत्यालपन्तं द्विजवर्य्यमीषत्स्मितो बभाषे वचनं नरेन्द्रः ।
स्मितस्य रुग्भिर्विशदाभिरुच्चैस्सभां सितीभावमुपानयन् सः ॥८३॥

गुणास्तु वेद्याः स्वयमेव तत्र वचःप्रयोगोऽनुचितो विशेषात् ।
कस्तूरिकामोदविमोदमानाः किं वाऽनुयोज्याः प्रति तां पुमांसः ॥८४॥

यद्वातिगूढोऽस्त्यपि को विशेषः सोऽयं प्रकाश्यो मयि मूढचित्ते ।
तमोभिरन्धे जगति प्रकामं रवावुदीते विषयप्रकाशः ॥८५॥

अथाह सोऽयं द्विजजातवर्य्यः स्वशक्तिमत्यद्भुतकारिणीं ताम् ।
यो नाम यामेति मनुष्यसंख्यामत्येति कीर्त्तिं लभते च सोऽयम् ॥८६॥

अचेतनेऽपि प्रसभं विदध्याच्चैतन्यमध्यापनमात्रशक्त्या ।
न त्वैश्वरीं शक्तिमपेक्ष्य यो ना सोऽहं नरेन्द्रास्मि परीक्षणीयम् ॥८७॥

सविस्मयः सन्निजगाद वाक्यं नृपो द्विजन्मानमुपात्तनीतिः ।
प्रफुल्लपाथोजसमाननेत्रः शरत्समुल्लासिसुधांशुवक्त्रः ॥८८॥

गौणी तवेष्टं द्विजलक्षणेति शब्दे प्रतिज्ञाविषयीकृते तु ।
अत्यन्तसामर्थ्यमियं व्यनक्ति कर्तुर्यतः पुण्यवतां वरस्य ॥८९॥

मत्प्रीतिपात्रं वनिताञ्च काञ्चित्सचेतनामाचर चित्तहीनाम् ।
अतः प्रतिज्ञा सफलैव सा ते भविष्यति स्माह ततो द्विजन्मा ॥९०॥

नरेन्द्र नैतद्घटते कदाऽपि सा मामके सद्मनि जर्जरे तु ।
कथं प्रयास्यत्यहमल्पकार्यमकार्यमाधातुमिहोपयायाम् ॥९१॥

उवाच राजा द्विजवर्य्य ! नेह तर्को विधेयो भवता सुबुद्धे ।
उपेत्य गेहं तव सैव नित्यमध्येष्यते सावरणस्थितैव ॥९२॥

इत्युच्यमाने वचने नृपेण द्विजातिरादत्त वचोऽनुकूलम् ।
निजाऽनुकूले वचसि प्रयुक्ते कस्यादरस्स्यान्नहि नात्र चित्रम् ॥९३॥

शुभे मुहूर्त्ते गणकैः प्रदिष्टे नृपप्रियां माधवभट्टनामा ।
अध्यापयामास समं सशास्त्रं कलानिधिः काञ्च कलां प्रयुज्य ॥९४॥

अध्याप्यमाना गुरुणाऽनुघस्रं प्रागल्भ्यमापन्निगमेऽप्यतीव ।
सेयं गुरोः शक्तिमतां वरस्य शक्तिः कथं वर्णनगोचरीस्यात् ॥९५॥

कदाचिदेतां निशि सन्निधिस्थां पप्रच्छ रामां रमणो गरीयान् ।
गुरोः श्रमः केवलमेष यद्वा साफल्यमाप्नोति स मां वदेति ॥९६॥

प्रियानुयुक्तेति नराधिपेन मनोज्ञवाणी निगमार्थबोधा ।
प्रत्युत्तरं सादित सोऽदितास्याः सदुत्तरं चेति विवाद आसीत् ॥९७॥

एवं विवादे प्रिययोः प्रवृत्ते प्रिया वचोयुक्तिभिरुल्वणाभिः ।
स प्रत्यबन्धि प्रणयेन बद्धो धरातुराषाट् खलु विष्णुसिंहः ॥९८॥

निरुत्तरः सोऽपि नरेन्द्रवर्य्यः प्रसह्य सद्यस्तदुपर्यतीव ।
रेमे निशान्तावधि सन्निशान्ते तया रमण्या रमणीयमूर्त्या ॥९९॥

प्रातः समुत्थाय विधाय नित्यकृत्यं महीन्द्रः खलु विष्णुसिंहः ।
सभामधिष्ठाय धरामरेन्द्रमाकारयामास चरेण गेहात् ॥१००॥

चरोऽपि तं द्वारमवाप्य राज्ञे निवेद्य राज्ञाऽनुमतोन्तरेनम् ।
प्रवेश्य तस्मै प्रणिपत्य तस्मात्स्थानाद्बहिः कार्यकृतां वरोऽभूत् ॥१०१॥

राजा समुत्थाय ननाम मूर्ध्ना न तेन कुत्रापि नतेन नैव ।
तस्मै विपश्चित्परिषन्निविष्टो वचो बभाषेऽथ मनोज्ञमेनम् ॥१०२॥

द्विजातिवर्य्य क्षमतां गुणानां संख्यां विधातुं भवदाश्रितानाम् ।
कस्यापि न स्यात्पृथिवीरजांसि संख्यातुमीशोऽपि यदापि यस्स्यात् ॥

प्रतिश्रुता या भवता स्वशक्तिः प्रतीतिपन्थानमवाप साद्य ।
ततोऽधिका सम्प्रति लक्ष्यते सा किं वर्णनीयं भवतो गुणानाम् ॥१०४॥

अतः परं सम्प्रति वृद्धबुद्धी इमौ कुमारौ मम शिक्षणीयौ ।
त्वया यथाकाममधीतिकाले सन्ताड्य सन्ताड्य धरामरेश ॥१०५॥

इत्थं निगद्याशु नृपो द्विजस्य द्वौ तौ कुमारौ सहसा निनाय ।
अङ्के पितृत्वं विनिषिध्य तु स्वमारोप्य तत्रैव पितृत्वमुच्चैः ॥१०६॥

द्विजो जगादाननृतं वचो हि सत्याभिभाषी मरणेऽपि भूपम् ।
विनिस्स्पृहाणामनृताभियोगे कुतो भवेत्क्वापि च पक्षपातः ॥१०७॥

आबालमावृद्धमधीतिकाल आ रङ्कमाभूपमनेन नूनम् ।
जनेन मूर्द्धन्यभिताड्यते हि करेण गाढेन नरेन्द्रवर्य्य ॥१०८॥

जनाननाद्वा स्वसुताननाद्वा मदीयमागः श्रुतिगोचरीस्यात् ।
तवेति पूर्वं प्रविविच्यसेयमाज्ञा विधेया मयि ते वराके ॥१०६॥

इतीरितां वाचमृतान्निशम्य द्विजातिवर्येण गतस्पृहेण ।
नरेन्द्रवर्यो वदनस्य मुद्रां मुमोच सोत्कण्ठमना यशस्वी ॥११०॥
द्विजेन्द्रवर्य्येदमवादि सत्यं तथापि नैतन्मम वैमनस्यम् ।
स्वत्वेऽनिवृत्तोऽपि न पक्षपातस्तस्मिन्निवृत्तेऽपि कुतो भवेत्सः ॥१११॥
इत्यादिवाक्यैर्मधुरैर्नृपेण प्रोत्साहितः सोऽथ धरामरेशः ।
ओमित्यकार्षीद्धृतकूटचित्तस्तावादिदेशेति नृपः कुमारौ ॥११२॥
अहो कुमारौ शृणुतं वचो मे निषेवणीयो गुरुरेक एव ।
परं युवाभ्यां शिशुताश्रयाभ्यां मत्तोऽधिकोऽसाविति साधु मत्वा ॥
पित्राज्ञया यावतिबुद्धिमन्तौ समारभेतां पठनं कुमारौ ।
ततो गुरोः प्रीतिमतो मनीषावतो नतौ तावुपदानिवेदौ ॥११४॥
अधीतिकालेऽभिहतिं शिरस्यां वितन्यमानां गुरुणा हिताय ।
लब्ध्वोपलेभे रुषमन्तरुच्चैस्तयोर्द्वयोर्ज्येष्ठतरस्तरस्वी ॥११५॥

युग्मम्

सत्क्षत्रजाता वयमन्यदीयं मूर्ध्नि प्रहारन्तु कथं सहेम ।
परप्रहारे समुपस्थितेऽपि सोढा ह्यमुं क्षत्रकुलाधमः स्यात् ॥११६॥

रोषाकुलश्चेतसि भीतिवाही पित्रे निवेदात्खलु पूर्वजन्मा ।
सोऽयं कुमारोऽथ मिथो जनन्यै निवेदयामास सवेपथुस्सन् ॥११७॥
निवेदिता सा जननी कुमारमुद्घोषयामास च ताडयन्ती ।
पित्रोर्गुरोस्ताडनमर्हमेव त्वं मूढधीर्दग्धमनाः शिशुत्वात् ॥११८॥

मात्रेत्थमुद्घोषणभीषितोऽसौ तदग्रतः प्रत्यशृणोत्कुमारः ।
इतः परं स प्रहरिष्यते चेद्धीना मया भूरमुनाथवा स्यात् ॥११६॥

तस्य प्रतिज्ञां विनिशम्य माता भीता तमाश्वास्य विकम्पमाना ।
कुलेऽङ्किता ब्रह्मणि नाशममंस्त कुलक्षयोऽन्यत्र विचिन्तचित्ता ॥१२०॥

उपागतं भूमिपतिं निशायां निवेदयामास कुमारचेष्टाम् ।
स स्तम्भवन्निश्चलतामवाप्य चिन्ताकुलान्तःकरणो बभूव ॥१२१॥

नृपः प्रभाते परिषन्निविष्टः सुतौ द्विजातिञ्च समाह्वयत्सः ।
उपेत्य तौ तेनतुरानतिं वा राज्ञे ददावाशिषमेष विप्रः ॥१२२॥

ज्येष्ठः पुरा भूमिपुरन्दरेण पृष्टो भवान्माधवभट्टनाम्नः ।
अध्येष्यते वा न कुतः किमित्थमुवाच वाक्यं वचनप्रगल्भः १२३॥

नैवोचितं क्षत्रकुलोद्भवानां प्रतिक्षणञ्च प्रहृतिक्षमत्वम् ।
अतः प्रहारव्यसनादमुष्माद्गुरोर्मया नो पठनीयमस्ति ॥१२४॥

कुमारवाक्यं स निशम्य राजा स्मितेषदालक्ष्यरदालिरङ्ग ।
धरामरेश प्रहरस्यमुं त्वमित्याह वाग्मी द्विजभक्तवर्यः॥१२५॥

वचो निशम्यास्य तमाह विप्रः प्रागेव यूयं विनिवेदिता मे ।
अतो विधेयं स्वरुचिर्यथा स्यादथाह राजा लघुमात्मसूनुम् ॥१२६॥

त्वयाप्यमुष्माद्गुरुतो विधेयं कुमारचर्याध्ययनं न वेति ।
पृष्टोऽवदत्सोऽपि मया तु नित्यमस्माद्विधेयं परतो न राजन्॥१२७॥

गुरुः प्रहारव्यसनीति चोक्तः प्रगल्भवाक्यं नृपतिं लघीयान् ।
जगाद कुर्याद्गुरुमेकमेव क्षत्रस्य धर्मोऽयमिहोन्नतस्य ॥१२८॥

अयं सुशिष्यस्त्वपरः कुशिष्यः सुशिष्यशिक्षां त्वमथो विधेहि।
इति द्विजं प्रोच्य सुतं समर्प्य तस्मादुदस्थान्नृपतिः सभायाः ॥१२६॥
अध्यापितस्तेन शिशुर्लघीयान्वैदुष्यमासादितवानतीव ।
विपश्चिताऽन्येन महान्कुमारस्तथा न वैदुष्यमवाप मानी ॥१३०॥
हिण्डोनराज्यं लघवे सुताय ज्येष्ठाय राज्यं स्वकमात्मजाय ।
वितीर्य लोके स वितत्य कीर्तिं श्रीविष्णुसिंहः स्वरवाप पुण्यैः ॥१३१॥
हिण्डोनमालम्ब्य लघुः कुमारश्चकार राज्यं विजयादिसिंहः ।
समर्चयन् पादपयोजयुग्मं गुरोः सदा माधवभट्टनाम्नः ॥१३२॥
गुरोस्सुतास्तस्य बभूवुरुच्चैस्त्रयो विनीता विदुषां वरेण्याः ।
श्यामाभिधानो जयरामनामा राजादिरामेत्यभिधानवाही ॥१३३॥
आद्यः समस्तागमपारगामी ज्योतिर्विदासीदपरो महीयान्।
विद्वांस्तृतीयोऽप्यभवद्धनाढ्यास्त्रयोऽपि भूपालकृपाप्तकामाः ॥१३४॥
बिल्हीति हैण्डोनमुदस्तबाधं ग्रामं समृद्धं गुरवे नरेन्द्रः ।
निवेदयामास स दक्षिणार्थे सङ्कल्प्य सङ्कल्पविधिप्रवीणः ॥१३५॥
तं ग्राममासाद्य कुटुम्बवाही धरामरो माधवभट्टशर्मा।
सुखेन नीत्वा बहुलान्यहानि स पाञ्चभूत विससर्ज देहम् ॥१३६॥
श्यामाभिधानस्तनयो नयज्ञः पितृक्रियां स्वानुगुणां गुणज्ञः।
चकार सापिण्ड्यविधानकान्तां पुत्रस्य धर्मोऽयमिदं न चित्रम् ॥१३७॥
सुतेन तुल्यो विजयादिसिंहः शोकोपदिग्धान्तरदुःखवाही ।
ज्येष्ठं सुतं तस्य पदेऽभ्यषिञ्चद् गुरोः सुतस्तत्सदृशो हि मान्यः ॥

तस्यानुजो ज्यौतिषकाधिकारेऽभिषेकमासादितवान्नरेन्द्रात् ।
ज्योतिर्नये यस्य च दृश्यते चेत्पाको न कस्यापि स गोचरस्स्यात् ॥१३९॥

वैदुष्यमध्याधिकृतिं तृतीयो जगाम राज्ञो विजयादिसिंहात् ।
वैदुष्यमत्यन्तमनोज्ञमस्य विलोकमानाद्विनयान्वितस्य ॥१४०॥

श्रियोऽर्जकः कश्चन नीतिनेता क्षत्रोऽभवत्स्वानुजवत्सलोऽपि ।
पुरे पुराभून्मथुराभिधाने कलिन्दकन्यापयसातिपूते ॥१४१॥

स कोट्यधीशो द्विजवर्यपूजाकृतव्ययः पूजितबन्धुवर्गः ।
न हीदृशास्सन्ति परं धनाढ्या जाता न तेऽग्रेऽपि न भाविनोऽपि ॥१४२॥

सोऽयं कदाचिद्विषमज्वरेण प्रपीडितस्तत्र च सन्निपाते ।
पपात वैद्यैरतुलप्रबोधैर्विन्यस्तशस्त्रैरखिलैरुदस्तः ॥१४३॥

ज्योतिर्विदैरप्ययमङ्ग तज्ज्ञैरुदासितो जातकताजकज्ञैः ।
पत्रीं जनेरब्दभवाञ्च तस्य विलोक्य धुन्वद्भिरधः करं स्वम् ॥१४४॥

तस्यानुजो ज्येष्ठसुबन्धुभक्तः केनापि नुन्नो जनिवर्षपत्र्यौ ।
आदाय भट्टं जयरामसंज्ञं जगाम धीरो गणितागमज्ञम् ॥१४५॥

ननाम तस्मै पदयोर्विनीतः स क्षत्रियो जोषमथास्त विज्ञः ।
द्विजो जगादैनमिहागमस्ते कथं स पृष्टो द्विजमाबभाण ॥१४६॥

मदग्रजोऽसाध्यतया भिषग्भिर्विनिश्चितो ज्यौतिषपारगैश्च ।
त्वं जीवदानं मुनिवर्य देहि तस्मै वयं त्वां प्रणतं विदध्मः ॥१४७॥

आवेदितस्तेन स पत्रिके ते विलोक्य चोवाच मृतेरुपायः ।
कस्स्याद्यदीत्थं न हि कोऽपि मृत्युं लभेत कुत्रापि कदापि नूनम् ॥

अस्त्यप्युपायः स तु वो न शक्यः कृते तु तस्मिन्भयमेति मृत्युः ।
इत्युक्तवन्तं स जगाद तर्हि वाच्यो मयाऽयं द्विजकार्य एव ॥१४६॥
भ्रात्रर्थमात्मासुविनिर्गमो मे सुखावहो नास्त्यसुखावहोऽसौ ।
धनादिकं तर्हि कुतो निगाद्यं निश्शङ्कमेव प्रणमामि तुभ्यम् ॥१५०॥

युग्मम्

स्वभ्रातृजीवेच्छुरसि प्रसह्य सर्वस्वदानं भवता विधेयम् ।
स्वयं सधौत्रः परगेहवासी परान्नभोजी सह रोगिणैव ॥१५१॥
सचेतनं रोगिणमुद्धवन्तं वृत्तान्तमेनं न निवेदयंस्त्वम् ।
स्वभ्रातृसौख्यं बहलं यशस्वानवाप्स्यसि क्षत्रियनिश्चयेन ॥१५२॥
इत्यालपन्तं प्रणिपत्य सोऽयं गत्वा गृहं तद्वचने मनोज्ञे ।
स विश्वसन्स्वप्रतिवेशिलोकैर्निवारितोऽप्याहितवांस्तदुक्तम् ॥१५३॥
कृते तदुक्ते स जिजीव सद्यो जलं ययाचे च सचेतनोऽभूत् ।
पृष्टः कनीतोऽहमिति स्वबन्धुः प्रोवाच गेहं रुजि पर्यवर्ति ॥१५४॥
विश्वासितोऽह्वानि कियन्त्यतीत्य गेहं स्वकं मां नय सम्प्रतीति ।
उवाच सोऽप्येनमवोचदित्थं वचः पुरः स्फूर्जथुतुल्यमेषः ॥१५५॥
गेहं धनं सर्वमधायि बन्धो! द्विजेषु ते जीवनहेतवे मे ।
कस्याज्ञयेदं जयरामभट्टगिरेति पृच्छोत्तरहृष्टचित्तौ ॥१५६॥
बभूवतुर्द्वावथ नीतमात्मगेहं द्विजं चोपदिकाभिरुच्चैः ।
समर्च्य यूयं मम जीवदाःस्थ त्वज्जीवदानेऽप्यनृणा न हि स्मः ॥१५७॥
स इत्थमुक्तोऽवददित्थमेनं जीवप्रदाता तु तवानुजोऽयम् ।
यो दुर्घटं कर्म चकार सर्वानभीष्टमप्येष जनस्तु वक्ता ॥१५८॥

परस्पराभाषणहृष्टचित्तौ स्वकं स्वकं स्थानमवापतुर्द्वौ ।
इत्यादिकान्यस्य बहून्यभूवन्वृत्तानि तेषां कथनं त्वशक्यम् ॥१५६॥
श्यामस्य पुत्रः शिवरामशर्मा बभूव शब्दागमपारयायी ।
साहित्यजीवो निगमान्तरेऽपि प्रवेशदक्षो विनयोपहारी ॥१६०॥
मध्यानुजः पुत्रमुखेन्दुशोभानिस्स्वोऽभवत्पौत्रसुखेन निस्स्वः ।
अन्त्यानुजोऽजायत सूनुरस्य जज्ञे मनस्वी रघुनाथभट्टः ॥१६१॥
बभूवतुर्द्वौ शिवरामसूनू सर्वागमेषु प्रतिभानुभावौ ।
आद्यो महादेव इति प्रतीतस्तथापरो लक्ष्मणनामधेयः ॥१६२॥
शिष्यैस्तदीयैर्भुवनं समस्तं व्याप्तं हरेरात्मभिरादिपुंसः ।
यथा ततस्तत्स्तुतिकर्मदक्षः कस्स्यान्नराणां निगमावगानाम् ॥१६३॥
अनन्तकृष्णौ हरिरामसंज्ञाविमे सुता ज्येष्ठसुतादभूवन् ।
शास्त्रागमा नीतिविशारदाश्च तथा तथा कौटिल्यवाक्यदक्षाः १६४॥
कनीयसो लक्ष्मणनामधेयात्त्रिवारमेवोढवधूत्रयाच्च ।
वध्वां निजायां परमन्तिमायां त्रयस्सुता जन्म ययुः सुते च ॥१६५॥
आद्यः सखाराम इति प्रसिद्धो जयादिरामस्त्वपरः प्रतीतः ।
सीतादिरामस्त्वपरोऽथ सर्वे सर्वागमानाञ्च विचारदक्षाः ॥१६६॥
शिष्यप्रशिष्यैरुपगीतकीर्त्तिर्विद्वत्सभावाप्तगुणप्रकाशः ।
ज्येष्ठोऽतिसौजन्ययुतः प्रभावी नरेन्द्रचूडामणिघृष्टपादः ॥१६७॥
निजाह्निकानुष्ठितिशुद्धचित्तो विद्वद्वरो नीतिविदां वरेण्यः ।
जितेन्द्रियो लब्धयशःप्रचारो धर्माधिकारं नृपतेरवाप्तः ॥१६८॥

मन्त्रागमाभिज्ञवरोऽथ मध्योऽनुष्ठानसंसाधितराजकार्यः ।
अनेकशो राजकृपानिधानो ज्येष्ठे पितृत्वां खलु मन्यमानः ॥१६९॥

उभाविमौ भूमिविभूषणे तौ सहस्रमायुः परमं लभेताम् ।
तयोर्गृहे नित्यमखण्डमास्तां लक्ष्मीर्नरेन्द्राश्रयिणोरजस्रम् ॥१७०॥

आस्ते तृतीयः कवितासु काव्यो ज्योतिर्नयान्तर्गतमर्मवेदी ।
शब्दागमज्ञातसुसाधुशब्दः शास्त्रान्तरावाप्तवचोनिवेशः ॥१७१॥

चकार काव्यं नृपवीरवृत्तं तथापरं राघववृत्तनाम ।
सारं प्रकाशस्य च कारिकाणां व्याख्यानमन्यानपि यः प्रभावी॥१७२॥

समाज्ञया यो जयसिंहनाम्नो महीपतेरस्य मनोज्ञपद्यम् ।
काव्यं विधत्ते जयवंशनाम सोऽयं चिरं जीवतु पुत्रपौत्रैः ॥१७३॥

अथामात्यास्सर्वे रविपरिमितिप्राप्तवयसं
गुणग्रामग्रामं विगणितबलीयोरिपुगणम् ।
पुरेऽम्बाधिष्ठानेऽध्युषितसुजने वाद्यनिनदं
समन्त्रं भूदेवैरमिषिषिचुरग्र्यं नृपसुतम् ॥१७४॥

गङ्गानीताभिरद्भिः शुचिकृतवपुषा व्याप्य पित्र्यं पदं स्वं,
रेजे भेजे नृपाणां प्रणतिमतिवरो राज्यभारोद्वहेषु ।
प्रातः प्रत्यग्रभासां निधिरहिमकरः प्राप्य पूर्वाद्रिशृङ्गं
भाति प्राप्नोति विप्रप्रणतिततिमुषः कालसन्ध्याविधाने ॥१७५॥

आसीद्यस्य पराजितामरगुरुः श्रीलक्ष्मणाख्यः पिता
माता यस्य सती सतीव्रतपरा यस्याग्रजौ भ्रातरौ ।

स्तः स्वन्ताधिपदाद्यजन्तजयतिप्राग्वर्तिरामाभिधौ
रामस्यास्य कृतौ कवेरिह गतः सर्गो नवो दिक्समः ॥१७६॥

इति श्रीपर्वणीकरोपनामश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भ-
सम्भव श्रीसीतारामकविविरचिते जयवंश-
महाकाव्ये दशमः सर्गः ॥१०॥

एकादशः सर्गः

पैतृकं पदमवाप्य सुन्दरं विष्णुसिंहतनयो नयाभिवित् ।
ज्येष्ठतामनुभवन् प्रतापवान् भासते स्म नितरां विपत्तरीः ॥१॥

तातातोऽपि ततमाततान यः स्वं यशोऽधिकतमं जगत्त्रये ।
पार्वणेन्दुरपि येन तुल्यतां प्राप्तुमन्वशकदङ्कवान्न हि ॥२॥

यत्प्रतापतपनस्य भानुमानग्रतो ग्रसिततिग्मदीधितिः ।
दक्षिणां ककुभमाश्रितो यथा मान्द्यमाप शुचिमास्यपि ध्रुवम् ॥३॥

क्रान्तवांस्त्रिभुवनं पदक्रमैर्वामनो बलिजिगीषया पुरा ।
वामनीकृतरिपुर्बभूव यो विक्रमैरथ च तानपाक्रमीत् ॥४॥

शूरतां समधिगम्य योऽधिकां शौरितां श्रितवतो यदोरपि ।
स्वं वरत्वमनयत्कुलं निजं पावयन्निह वदातकर्मभिः ॥५॥

दानपात्रमगमन्नृपान्तिकात्पूर्णकाममुदितान्तरं हि यत् ।
सा च शक्तिरुभयीति निश्चयाद्दातृतां श्रितवती च पात्रताम् ॥६॥

नाथतामधिगतोऽपि नाथतां नासहज्जनगतां नराधिपः ।
दानकर्मजलपूरवीचिभिस्तां निरास सहसा यतः स्वयम् ॥७॥

चण्डरश्मिरपि तादृशौजसा तापयन्नपि सहस्रशो रिपून् ।
निर्मलाः स सरितामपोऽम्बुधेर्वर्द्धयन्नजनि दानजीवनैः ॥८॥
हव्यवाडपि स हव्यवाट्तया योगमाप जयसिंहभूपतेः ।
धर्मपुत्रलयलीनमात्तवान्याज्ञिकत्वमयमीश्वरो भुवः ॥९॥
नीवृदन्तरगतं महत्तरं दानरज्जुभिरकर्षि भूभुजा ।
पात्रमात्रममुना पुरे निजे तेन पात्रखनिरस्य पूरभूत् ॥१०॥
दानमुल्किरति भूपदन्तिनि प्रोत्कटप्रबलदन्तशालिनि ।
अन्यदातृजगतीरुहत्यजो भेजुरेनमलमर्थिनोऽलयः ॥११॥
नीतिमार्गममलं महीभुजां सूरयो घनजसूरतेजसम् ।
भूपतिं प्रणिपतन्नरेश्वरं पादनीरजयुगे ह्युपादिशन् ॥१२॥
यद्यपि द्युतिमदङ्गमुत्तमं शारदेन्दुसममन्यदङ्कम् ।
सर्वतो वलितमुच्चबुद्धिना शास्त्रसङ्ग्रहमतिर्विधीयताम् ॥१३॥
व्यापकत्वमखिलस्य नीवृतो जायते हि विदुषां विवेकिनाम् ।
क्षुभ्यता न सकलं महत्यपि व्यापयत्युपहतामलाशया ॥१४॥
धर्मदुर्मतिविहानिबोधनामुक्तयः श्रवणहेतुका यतः ।
तेन ना निजहितेच्छया सदा यत्नतः परिश्रृणोतु वेदितुः ॥१५॥
यच्छ्रुतं न जनयेद्विरागतां धर्मितां मनसि शान्ततां तथा ।
तत्तु नूनमवकेशि सम्मतं काकभाषितसमानमाननम् ॥१६॥
आगमेषु सकलेषु संस्तवः खण्डितो रतमपि क्रयेण च ।
क्रीतमन्यवशमात्मभोजनं त्रीणि पूरुषविडम्बनान्यलम् ॥१७॥

पादपद्दलपदानि वक्रतो निस्सृतानि विदुषां मनोहरात् ।
आहरेन्निजहितानि तच्छ्रुतेः प्राकृतोऽपि विदुषा समो भवेत् ॥१८॥

सागरोऽपि परिपूर्णवार्निधिर्नास्त्यपेक्षपरवारिमेलनः ।
मेलनेन विधिना सरिज्जलैर्वर्द्धते न परिहीयते यतः ॥ १९ ॥

तेन धन्वविषयस्तु धन्यतां गम्यतां वहति पान्थसन्ततेः ।
गम्यतां यदधिगम्य वर्तनं तस्य किं परमितोऽवशिष्यते ॥ २० ॥

वाहिनीतटमहीरुहास्तथा कान्तभा युवतयो निरङ्कुशाः ।
भूभुजश्च सदमात्यवर्जिता नश्वरास्सपदि सम्मता इमे ॥ २१॥

सेव्य एव पुरुषो महाञ्जनैर्यत्नतो नृप महिष्ठवृक्षवत् ।
दैवतो यदपि नो फलाप्तयश्छायया तु न हि निस्स्वता भवेत् ॥२२॥

गौरवी नरपते च पैतृकी बान्धवी च नृपमानरूपिणी ।
या तया सुलभया तु नास्यते छाययाऽव्धिविधयेति निश्चितम् ॥२३॥

युग्मम्

क्वापि किञ्चिदतिशायि कर्म यत्तत्तु ना न विदधीत बुद्धिमान् ।
दानतो ह्यतितरां सबन्धनं वामनाद्बलिरवाप लीलया ॥ २४ ॥

नष्टिमाप सहसा सुयोधनो मानतोऽतिशयिनो नयोज्झितः ।
कच्छलम्पटतया दशाननोऽनल्पया जनकजातिरूपतः ॥ २५ ॥

दोष एव स गुणाधिकस्तु यः सारिकाशुकपतत्त्रिणां ध्वनिः ।
प्रत्युतानयति बन्धनान्यमून्मौनमेव सकलार्थसाधनम् ॥ २६ ॥

दोषिताऽपि गुण एव कुत्रचिन्मौनिवद्बकजनो न वक्ति यत् ।
तत्र तं गुणमवाप्नुमो वयं कोऽपि तं नयति यन्न बन्धनम् ॥ २७ ॥

यः क्षमौषधमवाप्य वैद्यतां स्वां जने प्रकटयत्यलन्तराम् ।
तस्य दुर्जनरुजा करोति किं शान्तिमेत्य तृणगोऽनलक्षयम् ॥२८॥

धर्ममूलमिदमेव सङ्गतं यः क्षमापतिरसाधुशासकः ।
येऽनिशं विहितकर्मतत्परास्ते द्विजास्तपसि यन्ति मूलताम् ॥२९॥

यत्र सत्कृतिरहर्निशं भवेत्पण्डितस्य स च धर्मितानिधिः ।
धर्मिताश्रयिणि नीवृति प्रिये प्रीतिरुद्भवति कस्य नुर्न हि ॥ ३० ॥

धार्मिकेऽवनिपतौ सति प्रजा धार्मिकी भवति तत्र पापिनि ।
पापिनी खलु समे नृपे समा भूमिपो नृप यथा तथा प्रजा ॥३१॥

बुद्धिरागमविबोधकारणं बुद्धिकारणमिहागमो न हि ।
आन्ध्यभाजिविषयप्रकाशनं किं ज्वलन्नपि करोति दीपकः ॥३२॥

पाठकः पठनकारकश्च यो ये च शास्त्रकृतचिन्तनाः परम् ।
सर्व एव किल मूर्खताश्रयाः किं क्रियावति बुधत्वमास्थितम् ॥३३॥

कौशलं परजनोपदेशने केवलं बहुनरस्य दृश्यते ।
आत्मधर्ममनुरुध्य वृत्तिकृद्यः स दुर्लभतरः सहस्रेषु ॥३४॥

ज्ञानमक्रियमशोभि सम्मतं भान्ति नाज्ञविहिताः क्रिया नृप ।
स्वामिहीनमथ सैन्यमुच्चकैरन्तरा निजपतिं स्त्रियो हताः ॥३५॥

अज्ञतानवहितत्वमात्मनो ज्ञाननाशनमनास्तिकी मतिः ।
नाशहेतुचयतोऽमुतो जनैः शङ्कितव्यमयमेव निश्चयः ॥३६॥

वैदिकी सरणिरन्यथागमी सान्यथावगमपण्डितोऽन्यथा ।
शान्ततत्पदमथान्यथा मतं क्लेश एष जनताश्रयोऽन्यथा ॥३७॥

अग्न्युपासनमभावि निष्फलं दानमप्यधृत भावमीदृशम् ।
निष्फलैव तमथान्तरा क्रिया सिद्धिरप्यनुदितैव तं विना ।
तेन हेतुरयमेव सर्वतः ॥ ३८ ॥ (सपादश्लोकः)

अग्निहोत्रगतदेवचिन्तका ब्राह्मणा हृदि तु तं विपश्चितः ।
स्वल्पबुद्धिभिरवेद्यतेऽर्चितः सर्वतो विदिततत्त्वदर्शनैः ॥३९॥

दारुगो न हि दृषद्गतो मृदां नो विकृत्युपगतस्तथेश्वरः ।
किन्तु भावमधिकृत्य वर्तते तेन कारणतयायमास्थितः ॥४०॥

नो तपोऽन्यदिह या क्षमा ततो नो सुखं भवति तोषतः परम् ।
तृष्णया तु न समा रुजेतरा धर्मता खलु दयामधिश्रिता ॥४१॥

क्रोध एष यमुनाग्रजो यमस्तृट्तु वैतरणिका नदी मता ।
कामधेनुरधिविद्यरोपिता तोष एष बहु नन्दनं वनम् ॥४२॥

शक्तिवाट्सु नृप कोऽपि भारतां नो बिभर्ति न च दूरमुद्युजाम् ।
स्वीय एव विषयो विपश्चितां को रिपुर्भवति च प्रियंवदे ॥४३॥

व्याप्तिरेव गुणरूपयोर्मता सैव शीलकुलयोरपि स्मृता ।
सम्मतेयमिह सिद्धिविद्ययोः सैव भोगधनयोर्भवेदपि ॥४४॥

निर्गुणस्य विहतैव रूपिता तां यतः सगुणतैव भूषयेत् ।
वृत्तदौष्ट्यमुपहन्ति सत्कुलं वृत्तसौष्ठवमलङ्करोति तत् ॥४५॥

विद्यया विहितसिद्धिनिष्ठया लीयते सपदि चान्यथाऽन्यथा ।
भोगवर्जिततमस्य सस्वता निस्वतैव परिभोगिनोऽन्यथा ॥४६॥

भूमिगानि च पयांस्यलेपतो भर्तृमात्रपरचेतसः स्त्रियः ।
शर्मकृन्नरपतिः सदा नृणां ब्राह्मणास्तु परितोषधारिणः ॥४७॥

पावयन्ति सकलाङ्गनानिमे म्लानतामधिगतान्निरन्तरम् ।
तेन पावनतयोपलक्षितान् पावनाय क इमानभिव्रजेत् ॥४८॥

तुष्टितो नशनमेति भूपतिर्दार्ढ्यमेति नितरां द्विजो जनः ।
लज्जया तु गणिका विनश्वरी नश्वरी कुलवधूरलज्जया ॥४९॥

पाककर्मणि नियोजयेत्प्रसूं वेश्मकार्यमधिकृत्य चात्मजान् ।
धर्मकार्यनिवहेषु वा वधूं नित्यमेषु दृशमेव धारयेत् ॥५०॥

प्राज्ञता यदपि शूरताथवा पण्डितत्वमथवा तथापि चेत् ।
प्रातिकूल्यमुपयाति दैवतं किं करोति परवानयं जनः ॥५१॥

विद्यया सह मृतिर्गरीयसी कुत्सितेषु विनिवेशतो नृषु ।
दम्भतः समधिगम्य तां खलः शात्रवीं भजति सम्पदं यतः ॥५२॥

भागिनेय इति वस्तु यत्स्थितं तत्तु दुर्ग्रहतयोपलक्षितम् ।
औपकारशतकेन दानतो विस्तृतान्प्रणयतोऽतिलालनात् ॥५३॥

ज्ञातशीलकुलविद्यके नरे ज्ञानिना स्वहितमिच्छुना सदा ।
भूपविश्वसितमेव धीयतामन्यथा न कथमप्यसंशयम् ॥५४॥

श्रोतुभिर्नृपतिभिश्च भिक्षुकैर्भूपवारवनिताजनैस्सह ।
सौहृदं भवदनर्थकारकं वैरिताऽपि समतैव युज्यते ॥५५॥

सौहृदं खलु जनैस्समं समं सम्मतं जलधिमध्यवर्षया ।
भोजनोपरिजभोजनासमं सीददर्थसमये तु बह्वपि ॥५६॥

यः प्रतापयति दुर्मतिः परान्नागसोऽपि स न सौख्यमश्नुते ।
यौवनोदयिवधूकुचद्वयं चित्तवित्तहृदथो पतत्यदः ॥५७॥

साध्वसाधुवचनद्विजिह्वतां क्रूरतामनिशभीमतां दधत् ।
केवलापकृतिकर्मतत्परं सन्निभं द्वयमिदं खलस्त्वहिः ॥५८॥

राजिकापरिमितानि दुर्जनो दूषणानि तु परस्य पश्यति ।
आत्मनस्तु गिरिशृङ्गसम्मितं दूषणं न हि कथञ्चिदीक्षते ॥५९॥

दुर्जनस्य फणितुल्यतोचिता नास्ति सर्पदशनव्यथा यतः ।
मन्त्रपूर्वकमुपायमापिता शान्तिमेति परजानुपायिनी ॥६०॥

विद्ययैहिकसुखं समश्नुते पारलौकिकसुखञ्च पूरुषः ।
तेन तामतिगरीयसीं कुधीर्नार्जयेदपि सुधीस्तु तां विशेत् ॥६१॥

सिंहतामधिगते नराधिपे व्याघ्ररूपिणि च मन्त्रिणि प्रजा ।
गृध्ररूपिणि तथाच भृत्यके नाशमेति सहसैव विप्लुता ॥६२॥

सुष्ठुपद्यधनसङ्ग्रहेच्छुता यस्य नास्ति स कथं न मूढधीः ।
यः प्रसङ्गमययज्ञदक्षिणां व्यस्मरन्मनसि याज्ञिकोऽपि सन् ॥६३॥

शूरता च कृतविद्यता च या रूपिता च वनिताङ्गवर्तिनी ।
कुत्र कुत्र लभते न साऽऽदरं पूज्यते हि गुणिता तु सर्वतः ॥६४॥

तुल्यतां न भजतः कदाप्यमू द्वौ नृपोऽथ च विपश्चितांवरः ।
पूज्यते स्वविषये हि भूपतिः सर्वतोऽर्चनमुपैति पण्डितः ॥६५॥

किं सुतैर्बहुभिरप्यमार्गगैरेक एव तनयो वरस्स तु ।
यः कुलं स्वकमनुज्ज्वलं पुरा निर्मलं प्रविदधीत बुद्धिमान् ॥६६॥

एककेन तनयेन सुष्ठुना स्वापमेति ससुखं हि सिंहिका।
गर्दभी दशभिरप्यथात्मजैर्भारवाहिभिरलंभरोद्वहा ॥६७॥

विद्यया विरह एव युज्यते सौख्यमात्रमभिवाञ्छतः परम्।
हातुमिच्छति च यः सुखं जनो विद्यया स तु न हीयते खलु ॥६८॥

मेरुमुच्चशिखरं न जानते नातिनीचतरमौरगं जगत्।
नाम्भसां निधिमपारपारकं मन्वते व्यवसितोद्यता जनाः ॥६९॥

मांसलेन रुचिहीनदेहिना मूर्खताश्रयिभिरक्षरोज्झितैः।
पौरुषैः पशुभिरेव मेदिनी भारभुग्नकबरीकचव्रजा ॥७०॥

एकवर्ण. पि यो वितीर्णवान् तद्गुरुत्वमवमत्य यः स्थितः।
वक्रपुच्छजनुषा शतं स तु प्राप्य च श्वपचयोनिमाप्नुयात् ॥७१॥

हीनता धनकृता न जायते किन्तु सा गुणकृतेति निश्चयः।
चापलेन परिहेयमादिमं दार्ढ्यभाजनतयेतरोऽस्वकः ॥७२॥

प्राप्यमर्थमुपयाति मानवो दैवतेन च निवार्यते न तत्।
तत्र नो शुगपि विस्मयोऽप्युभौ योग्यतां समधिगच्छतोऽमुतः ॥७३॥

कानने युधि परेऽम्बुनिर्झरे जातवेदसि समृद्धतेजसि।
सुप्तिमादविषमस्थिते जनं पूर्वपुण्यनिचयोऽभिरक्षति ॥७४॥

दुःखदस्सुखददोऽपरोऽस्ति मे केवलं कुमतिरेव सासकौ।
कर्म पूर्वकृतमेव भुज्यते साध्वसाधु जयसिंहभूपते ॥७५॥

इत्यवेत्य नयमार्गमुल्बणं नीतिवेदिभिरतीव पाटवैः।
भद्रहेतुमुपदिष्टमीश्वरः स्वीचकार सहसैव बुद्धिमान् ॥७६॥

मन्त्रिणः समनुकूलवृत्तयो भूपतेस्तदनुकूलवृत्तिकृत् ।
भूपतिर्यदनुकूलवृत्तिषु दमेशमन्त्रिषु भवन्ति सम्पदः ॥७७॥

इत्थं नीतिपथे चरन्ननुदिनं भूपालसिंहो मुदा
साधारण्यमवाप सर्वधरणीपालेषु धर्मात्मसु ।
राकारात्रिमवाप्य भेषु निखिलेषूद्यन् रजन्याः पति-
र्लोकानां मनसि प्रमोदनयनानन्दाविवोत्पादयन् ॥७८॥

श्रुत्वा यस्य गुणं गुणीकृतजगल्लोकस्य विद्वान्स को
मूर्द्धा यस्य न कम्पते स्म सहसा सज्येन चापेन च ।
मुक्तं बाणमवाप्य यस्य न शिरःकम्पं गतं सोऽप्यभू-
न्नैवोर्वीरमणं प्रशंसितुमधीकारोचितः को भवेत् ॥७९॥

के के न भ्रमरा भजन्ति कमलं मध्वाशया दूरत-
स्तिष्ठन्तोऽपि समेत्य किन्नु मुखरीभावं वहन्तो लघु ।
तस्मात्तोऽथ हसान्मधूनि मधुरीभावं वहन्ति द्रुतं
लब्ध्वैव प्रतियान्ति तत्कृतिवरीभावं वदन्तो भुवि ॥८०॥

आसीद्यस्य पराजितामरगुरुः श्रीलक्ष्मणाख्यः पिता
माता यस्य सती सतीव्रतपरा यस्याग्रजौ भ्रातरौ ।
स्तस्स्वन्ताधिपदाद्यजन्तजयतिप्राग्वर्तिरामाभिधौ
रामस्यास्य कृतौ कवेरिह गतः सर्गोऽयमेकादशः ॥८१॥

इति श्रीपर्वणीकरोपनामक श्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भ-
सम्भव श्रीसीतारामकविविरचिते जयवंश-
महाकाव्ये एकादशः सर्गः ॥

द्वादशः सर्गः

अथाधिपः प्राप्तगुणप्रकर्षः शशास लोकाञ्जयसिंहवर्मा ।
नित्यं श्रिया पूजितपादपद्मः समस्तभूपालनतो विनीतः ॥१॥

सम्राट्कुलाम्भोनिधिशीतरश्मिर्नाम्ना जगन्नाथ इति प्रतीतः ।
द्विजातिरागात्ककुभो यमस्य यशोभिराकृष्ट इवास्य राज्ञः ॥२॥

तदागमं द्वारपतो निशम्य सद्यो गृहीतापचितिर्नरेन्द्रः ।
प्रत्युज्जगामास्य विनीतियोगात्प्रतीयतेऽहो परमाणुरल्पः ॥३॥

तं प्राप्य राजा द्विजवर्य्यमार्चद् यथाविधि प्रोद्धतविक्रमोऽयम् ।
उवाच चैनं वचनं स वाग्मी वपुःपरिज्ञातगुणप्रकर्षम् ॥४॥

किमर्थमत्यल्पमतिर्जनोऽयं कृतार्थितो नेति तु वाच्यमस्ति ।
भवादृशामध्यवनि भ्रमस्तु भुवः कृतार्थीकरणाय मन्ये ॥५॥

का वा स्तुतिस्तावकसद्गुणानां का वा गुणानां भवतोऽस्ति संख्या ।
अतोऽत्र मौनं वरमेव मन्ये तथाऽपि ते ते मुखरीकरा मे ॥६॥

भवन्मुखेन्दूदयलब्धवृद्धावानन्दपाथोनिधिनीरपूरे ।
सम्मज्जितो मे परमाणुरन्तर्निलीय नाद्याप्युपलम्भमेति ॥७॥

विलोकनादेव भवन्मुखेन्दोर्मुदं च चक्षुःकुमुदं मदीयम् ।
प्राप्नोति चाध्यन्धतमांसि सद्यः प्रयान्ति नाशं द्विजवर्यवर्य ॥८॥

तमांसि बाह्यानि हरन्ति भानोः कराः परं पूर्वदिशं प्रयातुः ।
त्वद्रश्मयो दीप्ररुचो रुचीभिर्हरन्ति तान्यन्तरवृत्तिभाञ्जि ॥९॥

गर्गादयो यस्य न पारमीयुस्तस्यापि पारं गणितागमस्य ।
आसाद्य कालत्रयवृत्तबोधादृषित्वमस्मिन्समये त्वयार्जि ॥१०॥

इत्युक्तिमुर्वीरमणस्य तस्य निशम्य संहृष्टमना मनस्वी ।
समाददे वाचमवाञ्चि चक्रे या गीष्पतेरप्यमला वचांसि ॥११॥

नरेन्द्र ! तथ्यं भवता न्यगादि परन्तु तत्त्वार्थमिमं निबोध ।
भवद्यशःपूतपटैर्दिशोऽमू रङ्गं स्वमावृत्य जयन्ति सर्वाः ॥१२॥

अहो मदाशा तव कीर्तिवासः सितं वसाना भवतोत्सुकेयम् ।
मत्सार्थमालम्ब्य भवन्तमागान्मनोरथान्साधय भूपतेऽस्याः ॥१३॥

मनोरथान्साधयितुं जनानां तवावतारो नृप भूमिलोके ।
अतो न वक्तव्यमिदं मयेति प्रपूरयाशां मम वृद्धतृष्णाम् ॥१४॥

किं प्रावृषेण्यो जलदोऽम्बुपूरैर्न चातकीयां हरतेऽतितृष्णाम् ।
भवांस्त्वनेहो नियमं विनैव हरत्यनल्पां तृषमर्थिलग्नाम् ॥१५॥

सन्तानभूमीरुहलब्धजन्मा ख्यातोऽस्ति यो दानयशःप्रवादः ।
प्रवाहितः सोऽपि भवत्कराम्बुविनिर्झरैः सर्वजगत्प्रवृत्तैः ॥१६॥

या कामधेनुर्जगति प्रतीता प्रपूरयित्री जनकामनायाः ।
तामप्यकार्षीद्यदकामधेनुं भवांस्ततस्ते किमु वर्णनीयम् ॥१७॥

प्रोच्येति विप्रः स्थितवान्स जोषं तत्त्वार्थमेतन्निगमान्तयायी ।
सन्तः प्रकृत्यामितभाषिणो हि तथ्याग्रहग्रस्तहृदो भवन्ति ॥१८॥

प्रोवाच भूपालसभानिविष्टो भूपालसिंहो जयसिंहवर्मा ।
द्विजातिमाराद्विनयोपयुक्तं वचो वचोजालपटुर्गरीयः ॥१९॥

त्वद्योग्यतां वीक्ष्य चलीकृतोऽहं सावित्रमन्त्रं भवतो ग्रहीतुम् ।
ब्रह्मत्वसम्पादनकर्मदक्षं वाञ्छामि वाञ्छां मम पूरयैनाम् ॥२०॥

सम्प्रार्थितो भूपतिना विनीत्या द्विजातिवर्यस्तरलीकृतोऽस्य ।
गुणैरसाधारणता मनोज्ञैरङ्गीचकाराशु वचो नृपस्य ॥२१॥

कदाप्यवन्त्यां पुरि भूमिपालो गत्वा सहानेन महाद्विजेन ।
शिप्रानदीरोधसि पूतगात्रः सरिज्जलस्नानविधेर्बभूव ॥२२॥

ततो द्विजातेर्वदनेन्दुतोऽच्छाद्विनिःसृतं तद्रविमन्त्रतेजः ।
प्रविश्य राज्ञि श्रवणेन सद्यस्तेजोऽधिकं भूमिपतेश्चकार ॥२३॥

दीनारलक्षं बहुशो नरेशो वासांसि पश्चाभरणानि भूमिम् ।
निवेद्य तस्मै गुरुवे तदानीं कार्पण्यमात्मन्यतुलं स मेने ॥२४॥

आरोह्य दन्तिन्यतिसुन्दराभे गुरुं तपश्चोपहितं नरेशः ।
सचामरं पादचरः स्वयन्तु वेश्मानयन्नूतनमुच्चशालम् ॥२५॥

अवन्तिकातो गुरुणा सहैव नराधिपः स्वां पुरमुच्चहर्म्याम् ।
सेनासमेतः सरथी समर्थो न्यवर्ततालं दलने रिपूणाम् ॥२६॥

पुरं प्रविश्य प्रियवादशीलो विद्वज्जनासङ्गमनीतकालः ।
व्युवाह कन्याः कमनीयरूपा मनोहराङ्गो जगतीपतीनाम् ॥२७॥

तं प्राप्य ता रेजुरतीव राज्ञस्ताः प्राप्य सोऽयं नितरां रराज ।
ताराः सुधांशुं समवाप्य भान्ति यथा यथेन्दुः प्रतिलभ्य ताराः ॥२८॥

ताभिर्विलासानमरेशयोग्यान्नराधिपोऽभुक्त स वीर्यशाली ।
कियच्चिरं कालमपि व्यतीतं मेनेऽल्पमल्पेतरमिद्धबोधः ॥२९॥

ताभिः सहानेन निषेव्यमाणो नृपेण नित्यं जयसिंहनाम्ना ।
कृतित्वमासादितवाननङ्गः सन्तुष्टचित्तः खलु शम्बरारिः ॥३०॥

अथावनीन्द्रः शतमन्युतेजा विनिर्ममे तत्पुरमुच्चकीर्त्तिः ।
मनोहराभं जयपूर्ववृत्ति भूतं न पूर्वं न च भावि यादृक् ॥३१॥

गृहाणि यत्र स्फटिकोपलानां स्वच्छानि संस्पृष्टविधूनि रेजुः ।
नगाधिराजस्य महान्ति कान्तिकान्तानि सानूनि यथाविशेषात् ॥३२॥

त्रैलोक्यमासीत्प्रतिसद्म यस्मिन्नधःस्थलं भोगिजनावरुद्धम् ।
मध्यस्थलं मानववृत्तिशालि तथोपरिष्टाद्विबुधाधिरम्यम् ॥३३॥

रामा भ्रमन्त्यो नवयौवनीयां शोभां दधानाः प्रतिसद्म यत्र ।
विलोकमानस्य जनस्य चित्ते व्यधुः सुरीभ्रान्तिमनभ्रचाराः ॥३४॥

रामाधरस्थामृतपानतुष्टाः पेयेऽमृतेऽपि त्रिदशैर्युवानः ।
न्यक्कारबुद्ध्या विनिवर्त्य चित्तं नेच्छन्ति नाकोपगमं स्म यत्र ॥३५॥

गावः सवत्साः सितभा घटोध्न्यः पयोभिरानन्दितसर्वलोकाः ।
गृहे गृहे यत्र वसन्ति नित्यं प्राभातिकं मङ्गलमादधत्यः ॥३६॥

नासत्यताङ्को न बभार यत्र ससत्वमन्तःकरणं दधानः ।
असून्विहातुं परकार्यवृद्धौ वव्छत्यजस्रं सहसा स्म को ना ॥३७॥

परस्त्रियं मातृसमानभावं मेने समस्ता जनता यदीया ।
तत्तुल्यतां कुत्र च को लभेत कुतो निदानादिति निश्चयो मे ॥३८॥

उपस्थितेष्वर्थिषु यत्र को ना ग्रासार्द्धमप्यर्पयति स्म नैभ्यः ।
ग्रासात्समस्तां विनियोज्यमानात्किं वर्ण्यतां यज्जनवृत्तिरुच्चैः ॥३९॥

गृहेषु यत्र प्रतिभान्ति भित्तावालेख्यरूपाः स्म पुरे युवानः ।
मुखैरिवान्योन्यमुदा वदन्तो रामाभिरामाः परमार्थरूपाः ॥४०॥

गृहे गृहे यत्र विभज्य रूपमनेकधा स्वं वसति स्म लक्ष्मीः ।
समस्तभूतेषु पतित्वबुद्ध्या सशङ्खचक्रेषु सरोजवत्सु ॥४१॥

सुधासिता यत्र गृहा विरेजुर्विधुस्पृशः सच्छिवयोगभाजः ।
कैलासकूटा इव नूतनाभाः श्रीदैरनेकैः समधिष्ठिताश्च ॥४२॥

अट्टालिकाभ्यो विधुकान्तयोगमनोहराभ्यो निशि यत्र चान्द्रैः ।
करैः प्रणाली मुखतः प्रवाहः पतञ्झरीगाङ्ग इवातिरेजे ॥४३॥

शुकाः शुकीभिः प्रतिवेश्म यत्र सुपञ्जरस्था व्यहरन्नजस्रम् ।
यशांसि भूयो गृहभर्तृशिक्षावशात्पठन्तो नृपतेरमुष्य ॥४४॥

सारोऽयमुर्वीरमणेषु भूपः कलारवागानमिति व्यधुर्याः ।
ताः सारिका रूढमपि स्वनाम वितेनुरन्वर्थतयातिरम्यम् ॥४५॥

आलेख्यमध्ये परिलिख्य मूर्तिं नरेन्द्रचूडामणिनायकस्य ।
वध्वो मुहुर्यत्र खलु प्रसेदुः स्मरभ्रमारुष्टनिजेशचित्ताः ॥४६॥

देवालया यत्र नगण्यसंख्या विरेजुरत्यन्तमनोज्ञरूपाः ।
सौराज्यरम्ये तु पदे हि कस्य प्रवृत्तिरास्थातुमहो न हार्दी ॥४७॥

गोपीपती राजगुणैरनेकैराकर्षितः सन्भजते स्म नित्यम् ।
यत्पत्तनं सज्जनतोपरिष्टादनुग्रहेच्छुर्निजदर्शनेन ॥ ४८ ॥

विश्वेश्वरो विश्वगुणप्रकाशी करिष्णुराजानुविलम्बिबाहोः ।
नृपस्य यस्मिन्वसति स्म लैङ्गीं विधाय मूर्त्तिं सदयोऽभिभक्तम् ॥४९॥

म्लेच्छान्विहन्तुं वसति स्म कल्की यत्र प्रियं भूमिपतेश्चिकीर्षुः।
कल्कानि लोकस्य विहन्तुकामो नरेन्द्रगेहाभिमुखालयस्थः ॥५०॥

अन्येऽपि देवा बहवोऽध्युवात्सुः स्यात्कस्य तेषां गणने तु शक्तिः।
अतो न भूतं न च भावि यादृक् पुरं महेन्द्रान्तरमानहारि ॥५१॥

सीतापतिर्यत्र दशाननारिर्दशाननानध्युषितान्निहन्तुम् ।
उवास भूपालमनोज्ञशोभगृहप्रतीहारकृताभिमुख्यः ॥५२॥

तद्राजसद्मामलनीलरत्नमयं क्वचित्पीतमणीमयञ्च ।
सुपद्मरागैर्मणिभिः क्वचित्तु विनिर्मितं हेममयञ्च रेजे ॥५३॥

अभ्रंलिहं स्फाटिककेलिवेश्म नृपस्य राजद्रुवर्णशालम् ।
उच्चैः पताकारसनाभिरारादास्वादयामास सुधां सुधांशोः ॥५४॥

वातायनेभ्यो नृपकेलिसद्म प्रविश्य सौगन्ध्यभृतं सदैव ।
हृत्वैव सौगन्ध्यकलां समीरो विख्यातिमापत्खलु गान्धवाहीम् ॥५५॥

वातायनस्था नरनाथवध्वः स्पृशन्त्यधोभागगतां मुदा स्म ।
पयोदजाले प्रकटीभवन्तीं तडिल्लतां हाटकराशिबुद्ध्या ॥५६॥

पूर्वाद्गवाक्षादपरं गवाक्षं यियासवो राजवधूजनाश्चेत् ।
तदा पयोदानधिरुह्य यान्तो विनिर्निमेषा बभुरामरीवत् ॥५७॥

तत्राद्भुतानेकमहीरुहाणां शोभाविशेषादतिचित्रकारी ।
जयेति पूर्वान्तनिवासनामवनं विहारस्य घनं रराज ॥५८॥

रसालवृक्षाः फलनम्रकम्राः छायानिरुद्धातपजन्यदुःखाः ।
यत्रावहन्तो मुदमीश्वरीयां शोभां दधुः पल्लवराशिभाजः ॥५९॥

सुगन्धिताशाः कुसुमैर्मनोज्ञैश्छायाघनाभा बकुला विरेजुः ।
यत्सूनमालाभिरपूजि नित्यं नृपेण विष्णुः खलु भक्तिभाजा ॥६०॥

अशोकमुत्पादयितुं जनानामशोकवृक्षाः फलिताः सुपुष्पाः ।
अध्यूषुरुच्चैर्यदुदीतगन्धाः सुगन्धितारामभुवः समन्तात् ॥६१॥

दाडिम्य उच्चैर्जगतीरुहा यद्विभूषयामासुरतीव दीर्घाः ।
विपक्वतोदीर्णफलान्तवृत्तिबीजग्रहा मोदितचित्तकीराः ॥६२॥

चाम्पेयभूमीरुहपङ्क्तिसूनैरामोदिनी मोदयती रराज ।
यद्भूमिरुद्भूतनरेशकेलिविलासरम्या सुखवायुशीताः ॥६३॥

जातीप्रसूनैः प्रियगन्धरम्यैर्यद्रम्यभावं लभते स्म नित्यम् ।
कस्यान्तरे घ्राततमैरमीभिर्नोत्पादयामास मुदो नितान्तम् ॥६४॥

यत्रावसन्षड्युगपत्प्रफुल्लप्रसूनजाला ऋतवः समृद्धाः ।
धिष्ण्वंशमेनं नरलोकनाथं निषेवितुं पुष्पफलादिभिर्नु ॥६५॥

अतीव यत्रामलमन्दिरे स्वे विराजमानोऽतिमनोज्ञमूर्त्तिः ।
गोविन्ददेवः सदयोऽभिलाषं प्रपूरयन्भूमिपतेरुवास ॥६६॥

रामो रमालिङ्गनहृष्टचित्तः सन्मन्दिरे यत्र निवासकारी ।
यात्रासु राज्ञोऽभिमुखं प्रयायी गजाधिरूढो जयमातनोति ॥६७॥

विकासगन्धाढ्यसरोजराजिविराजितः प्रोच्छलवीचिरुच्चैः ।
द्विजातिभिः संस्कृतनित्यकर्मा तडाग एको विरराज यत्र ॥६८॥

लघ्वी पुरी ब्रह्मपुरीति नाम्ना ब्रह्मर्षिभिर्नित्यमधिष्ठितासीत् ।
ब्रह्मर्षयो ये निगमार्थमर्मबोधक्षमा ये मुनिवृत्तिभाजः ॥६९॥

केचिन्महाराष्ट्रकजातिजातास्ते वज्रटङ्कप्रमुखा महान्तः ।
विपश्चितो भीमपुरोपनामशेषोपनामान उपात्तसत्त्वाः ॥७०॥

द्रोणोपनामा श्रुतिपारयायी सहस्तरुद्राह्ववरोऽतिपूज्यः ।
भस्माङ्गरागो मुनिवृत्तिकारी मृकण्डसूनुः श्रुतिमन्त्रसिद्धः ॥७१॥

इमेऽध्युवात्सुश्चयनीत्युपाह्वः श्रौती महीयान्कमलाकराख्यः ।
अन्येऽप्यनेके गुणशालिवर्या यामद्भुतां ब्रह्मपुरीं समृद्धाम् ॥७२॥

यस्यां विरेजुः खलु पर्णशाला विशालमाना नयनाभिरामाः ।
त्रेतोच्चरद्धूमशिखापवित्राः पतिव्रतापादरजोऽभिपूताः ॥७३॥

देवोऽपि नूनं तरलीकृतस्सन् नाप्यैर्गुणैर्गोकुलनाथनामा ।
व्रजोद्भवाद्गोकुलतोऽभ्युपेत्य नित्यं समध्यास्त च यां पुरीं सः ॥७४॥

स राजमार्गः पुरमध्यगामी रेजे शिलाभिः खचितोऽतिरम्यः ।
हट्टालयो यत्र समृद्धिमत्यो वणिग्जनैरिन्द्रविभूतिहासाः ॥७५॥

हट्टे क्वचिन्मौक्तिकराशिरास्त हरिन्मणीनां निचयः क्वचच्च ।
आरक्तरत्नोच्चयशोभिताऽभूद्दीनारराशिः क्व च रौप्यराशिः ॥७६॥

धान्यानि गोधूममसूरशालिमुद्गाढकीचाणकधान्यराजाः ।
समर्घतामेव च यत्र भेजुर्महार्घतां तानि कदापि नैव ॥७७॥

कुत्राऽपि हट्टेषु पयोविकाराः कुत्राऽपि पक्वान्नचया विरेजुः ।
पङ्कोपयुक्ता लवणोपयुक्ता दध्नोपयुक्ता बहुशः पदार्थाः ॥७८॥

कुत्राऽपि हट्टे मरिचैलिकाश्च लवङ्गपुष्पाणि च पिप्पली च ।
शुण्ठी च सर्वं परितो विरेजुर्विक्रीयमाणा वणिजा जनेन ॥७९॥

सुगन्धितद्रव्यमनल्पमूल्यं कुत्रापि हट्टे स्थितमारराज ।
तदुत्थगन्धेन सुगन्धिरासीत्स राजमार्गो निखिलो मलोनः ॥८०॥

काश्मीरहट्टे विमले निविष्टः काश्मीरराशिः किल गौरवर्णः ।
विन्ध्येन जित्वा निजसम्पदाभात्सौमेरवः कूटमिहाहितःकिम् ॥८१॥

कुत्राऽपि हट्टे मृगनाभिराशी रराज जीमूतसमानकान्तिः ।
मुखेन्दुना भूमिपतेः स्ववैरी बद्ध्वा हितः किं तमसां निकायः ॥८२॥

पथि प्रयान्त्यः किल पौरवध्वः सिञ्जत्तुलाकोटिचलत्पयोजम् ।
कटाक्षबाणाहतलोकचित्तं केषां न हर्षाय मुहूर्त्तमासन् ॥८३॥

वाराङ्गना लास्यविधिप्रयुक्ता स्वधर्मपत्नी वनभोगपत्नी ।
कामो विशेषो यदि पत्न्य एव बह्व्यो विवाह्या इति लोकरीतिः ॥८४॥

स्वधर्ममुल्लङ्घ्य न कोऽपि वृत्तो जनः पुरं शासति भूमिपाले ।
कलावनेहस्यपि दुष्टवृत्तौ धर्मश्चतुष्पादिव लक्ष्यते स्म ॥८५॥

कारासु नासीदधिवासकारी तद्वासयोग्यं विदधे न कर्म ।
न विष्णुसिंहात्मसुतेऽवनीन्द्रे सति प्रवृत्ता दुरदृष्टवार्ता ॥८६॥

पुरस्य यस्यामललोकवृत्तेर्द्वाराणि चत्वारि चतुर्दिशासु ।
अतस्तदासीन्नवसृष्टलोकं हैरण्यगर्भं वपुरुद्धिशेषम् ॥८७॥

श्यालो विशालः खलु हैमनोऽभूदनेकरत्नैः खचितोऽन्तरेषु ।
सहस्रनेत्रः किमु पौरशोभाविलोकनोत्कः समुपेत्य वृत्तः ॥८८

विलोचनैरूर्ध्वगतैर्द्युशोभामधोगतैः पौररुचिं महेन्द्रः ।
प्राकाररूपः किमु वीक्षते स्म द्वयोर्विशेषार्थपरीक्षणाय ॥८९॥

स्वपौरतत्पौरविशेषितार्थं बुभुत्सुनेन्द्रेण परीक्षणाय ।
प्राकारदम्भात्समुपस्थितोऽयं सम्प्रेषितो मेरुरिवाबभासे ॥६०॥

नृसिंहदुर्गं नृपतेररीणामगोचरीभूततमं महीयः ।
आम्बं तथा दुर्गमधृष्यमासीत्सौदर्शनं दुर्गमगोदरेषु ॥६१॥

एतैः स दुर्गैर्नृपतिस्त्वजय्यो बलावनद्धैररिभिः सहस्रैः ।
निष्कण्टकत्वेन चकार राज्यं पैतामहं श्रीजयसिंहवर्मा ॥६२॥

यः शैलशृङ्गोपरि गालवस्य महाश्रमोऽराजत राजतीयः ।
क्वचित्तथा क्वापि सुवर्णकीर्णः क्वचित्तथा रत्नमयो महीयान् ॥६३॥

यस्मिन्नरण्यान्यलसन्महीजवृन्दैः समृद्धैरुपशोभमाना ।
सरोभिराखण्डलगर्वहन्त्री स्वसम्पदानन्दनजित्वरी या ॥६४॥

सन्मन्दिरे तत्र चतुर्भुजांशो रामस्त्रिभिः साकमनूद्भवैश्च ।
स सीतया भूपतिशर्म कुर्वन्नुवास नित्यं नृपपूज्यमानः ॥६५॥

घाटेति नाम्ना प्रथिते मनोज्ञे पदे सरोनिर्झरनीरवाहैः ।
आप्लाव्यमानो नृपरक्षणाय नित्यं विरेजे हनुमान्कपीन्द्रः ॥६६॥

यात्रा भवत्यप्यधुनाप्यखण्डमहो जनानां प्रतिभौमवारम् ।
गोधूमचूर्णाहितमोदकानां भुजिक्रियानन्दनलिप्सयैव ॥६७॥

यं काममुद्दिश्य करोति यात्रां यस्तस्य कामः स सुसिद्धिमेति ।
सद्यः कपीन्द्रस्य महाबलस्य प्रसादतो घाटपदोषितस्य ॥६८॥

आराममालाभिरनेकिकाभिर्विभूषितं घाटपदं महीयः ।
आस्थाय तत्कस्य मनोविनोदो न स्यादिदं को नु विहातुमिच्छेत् ॥

एतादृशं रम्यपुरं विधातुं शक्तो भवेत्को नरनाथमेनम् ।
विना विलासा हि विलासिनीनां प्रादुर्भवन्ति द्यु विलासिनीवत् ॥

अथो महाराष्ट्रकुलप्रसूतो बभूव मन्त्री व्रजनाथनामा ।
समस्तराज्यावनदक्षबाहुस्तम्भो यथासौधवहो महीयान् ॥१०१॥
तस्योपरिष्टादभवन्महीयान्प्रेमा महीन्द्रस्य गुणाकरस्य ।
यद्यद्वियोगः क्षणमप्यसह्यो बभूव राज्ञो विकलञ्च चित्तम् ॥१०२॥
कदापि पत्न्यां परलोकलोकसंख्यासु संख्ये यतया स्थितायाम् ।
आशौचभाक्सोऽयममात्यवर्यो नृपान्तिकं नोपजगाम गेहात् ॥१०३॥

कियच्चिरं भूमिपतिः प्रतीक्षां विधाय तस्यानयनाय शीघ्रम् ।
विक्लिन्नचेताः प्रजिघाय दूतं रविं विनाऽहो कमलाकरो वा ॥१०४॥

गतेन दूतेन निवेदिताज्ञस्तमाह मन्त्री व्रजनाथशर्मा ।
आशौचमध्ये पतिता वयन्तु वध्वास्ततो नागमनं मम स्यात् ॥१०५॥

दूतेन राजेति निवेदितोऽपि शृण्वन्नशृण्वन्निव सत्वरं तम् ।
इहानयध्वं निजगाद दूतानानीय तं तेऽन्तरवेशयंस्तम् ॥१०६॥

अन्तःप्रविष्टं पृथगासनस्थं तमाह भूपो मृदुवाक्पटीयान् ।
विना भवन्तं मम राज्यमेतद्भोज्येन तुल्यं लवणोज्झितेन ॥१०७॥

तस्मादपावित्र्यवहैरपीदं निजाननानुष्णकरोदयेन ।
मदीयचक्षुःकुमुदं भवद्भिर्विकासनीयं शपथो मदीयः ॥१०८॥

ओमित्यकार्षीद्वचनं नृपस्य सोऽयं तदालोकनमोदितस्य ।
प्राचीनसंस्कारवशेन जीवास्सौहार्ददौहार्दवशा भवन्ति ॥१०९॥

यदैव तौ द्वावनुकूलवृत्ती नृपस्स मन्त्री च परस्परेण।
संवर्द्धयामासतुरुच्चवुद्धी विभूतिमाद्याधिपतोऽपि राज्ये ॥११०॥

तथा परो मन्त्र्यभवत्सुबुद्धिः ख्यातोऽभिधानेन स राजमल्लः।
सोऽसाववष्टभ्य निजोरसेदं राज्यं स्वकीर्त्तीर्वितताान लोके ॥१११॥

मुख्यावमात्यौ नृपतेरभूताममू भरोद्वाहनशक्तिमन्तौ।
अन्येऽपि गौणा गुणवृत्तिभाजः प्रजानुकूलाः खलु धर्मबोधाः ॥

रत्नाकरो नाम निकाममन्त्रागमप्रवीणश्चरितार्थनामा।
मन्त्रस्वरूपाणि यतो निधाय रत्नानि रत्नाकरतामवाप्तः ॥११३॥

आकर्ण्य भूपालयशांसि नुन्नः कलिन्दजाया मथुरागतायाः।
तटादिहागात्समवाप जन्म यो देवभट्टादतुलप्रभावात् ॥११४॥

श्रुत्वा प्रतीहारमुखान्नरेन्द्रस्तदागमं ख्यातयशःप्रशस्तिः।
अभ्युज्जगामार्चनमस्य कर्तुमादाय पूजाबलिमर्हमस्य ॥११५॥

यथावदस्यार्चनमर्हतोऽयं विधाय तस्मै प्रणनाम नम्रः।
विनीतियुक्तं वचनं नरेन्द्रो नेतोत्पथानां तमथाबभाषे ॥११६॥

अहो मदीयानि तपांसि पूर्वजन्मार्जितानि द्विजपाकमीयुः।
भवन्मुखेन्दोरवलोकनेन कृतार्थतामेष जनो यदाप ॥११७॥

मन्त्रागमज्ञस्त्वमिमं नतं मां मन्त्रं तमादिश्य कृतार्थयैव।
यतो वयं सर्वजगज्जनान्तरर्हन्नसाधारणतामियाम ॥११८॥

इत्यर्थितो भूपतिना द्विजन्मा ससिद्धिमन्त्रं प्रददावमुष्मै।
यस्मिन्वितीर्णे सति सद्य एव नराधिपोऽभूदमितप्रतापः ॥११९॥

तस्मिन्क्षणे ग्रामशतं स कोटिसुवर्णमुद्रागजवाजिवृन्दम् ।
मनुष्ययानं स वरूथमुच्चै रथञ्च तस्मावुपदीचकार ॥१२०॥

सुवर्णचामीकरभङ्गिरम्ये वरूथिनि प्रोन्नतवाजिवाहे ।
आरोह्य तं मन्त्रगुरुं स्वयन्तु संवीजयंश्चामरधूननेन ॥१२१॥

स्वमुत्पताकं पुरमुच्चहर्म्यमारूढलोकं च दिदृक्षयास्य ।
वादित्रनादं स्तुतिकारिबन्दि प्रावेशयद् हृष्टमना नरेशः ॥१२२॥

अथैनमुर्वीरमणो गृहोत्तमे न्यवासयद्ब्रह्मपुरीनिवेशिते ।
स्वयं च गेहं रदशालिदन्तिनि क्षमेश आस्थाय विवेश सत्वरम् ॥१२३॥

गुरुयुगभजनाप्तसर्वकामः
क्षितिपतिरेष विशेषशेषकीर्त्तिः ।
प्रतिदिनगुरुसेवनेऽतिरक्तो
व्यजयत नाक इवामरावतीशः ॥१२४॥

तातो यस्य पराजितामरगुरुः श्रीलक्ष्मणाख्यः पिता
माता यस्य सती सतीव्रतपरा यस्याग्रजौ भ्रातरौ ।
स्तः स्वन्ताघिपदाद्यजन्तजयतिप्राग्वर्तिरामाभिधौ
रामस्यास्य कृतौ कवेरिह गतः सर्ग्गो नवो द्वादशः ॥१२५॥

इति श्रीपवणीकरोपनामश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भ-
संभवश्रीसीतारामकविविरचिते जयवंश-
महाकाव्ये द्वादशः सर्गः ॥१२॥

त्रयोदशः सर्गः

अथासौ भुजवीर्येण दिग्जयं प्रति नोदितः ।
दिग्वीरान्बलिनो जेतुं प्रतस्थे सबलो बली ॥१॥

गजाः शृङ्गारिता रागैरन्वयुस्तं नराधिपम् ।
किन्तु विन्ध्याचलप्रस्था युधि स्वाम्यनुगामिनः ॥२॥

अश्ववारकृतारोहाः सच्चामरविलासिनः ।
अश्वास्तमन्वयुर्वातविजित्वरजवोद्धताः ॥३॥

रथावरूथिनः केचित्केचिदप्यवरूथिनः ।
चलत्प्रधिजवोद्दीर्णभुवश्चेलुर्महोद्धताः ॥४॥

पत्तयो धृततूणीरधनुःशक्त्यसिभल्लकाः ।
युगान्तमिव कुर्वन्तः कम्पयन्तो धरां ययुः ॥५॥

जैत्रं स रथमारुह्य कवचावृतविग्रहः ।
शस्त्राण्यस्त्राणि चादाय भीमः शमनवद्ययौ ॥६॥

जनैर्मनोभरं पौरैर्नेक्षितोऽपि नराधिपः ।
राजमार्गं समुल्लङ्घ्य ससैन्योऽभूत्पुराद्बहिः ॥७॥

रजोभिरौर्वरैरश्वखुरोत्खातैश्च चक्रिभिः ।
चूर्णीकृतैर्महेभानां कर्णतालैः प्रसारितैः ॥८॥

नभोमण्डलमाच्छादि सर्वतो दिश आवृताः ।
हतौजा भानुमानासीत्सोपराग इवाप्रियः ॥९॥

पूर्वस्यां दिशि भूपालाञ्जेतुमुद्धतमार्गगान् ।
तामेव प्रथमं राजानुचचालाचलो रणे ॥१०॥

राजदुर्गं प्रपन्नं तं सच्चकार तदीश्वरः ।
उपदीकृत्य चात्मानं सहाभूत्तेन सन्नतः ॥११॥

रामदुर्गातिथीभावं प्रपन्ने तत्र भूपतौ ।
निवेद्यात्मानमस्मै स्वं तदीशोऽन्वचलत्प्रभुम् ॥१२॥

मोहदुर्गं सुदुर्जेयमरिभिर्बलशालिभिः ।
प्राप्य तत्पतिमादाय सत्कृतः सन्पुरोऽभ्यगात् ॥१३॥

अन्यानपि महावीरान्संगृह्णन्पथि सन्नतान् ।
भारतं पुरमत्त्युच्चैः सैन्यव्याप्तीचकार सः ॥१४॥

उभयोर्युद्धमभवत्प्राङ्न भूतं न भावि यत् ।
शस्त्रैरमोघतापन्नैरस्त्रैश्चापि तथाविधैः ॥१५॥

अरे ! दुर्मद वीर्याणि स्वानि दर्शय मां प्रति ।
शुनी प्रासूत चेत्त्वां तद्व्रजास्मात्पुरतो बहिः ॥१६॥

इत्थं वचनमाकर्ण्य जयसिंहस्य भूभुजः ।
अरिः क्रोधाभिताम्राक्षो विव्याधोरसि तं शरैः ॥१७॥

शरविद्धोऽप्यमर्षेण शक्तिं स प्राहिणोद्बली ।
स्वदेहान्निःसृतां मूर्त्तां शक्तिं नूनमरिन्दमः ॥१८॥

शक्त्योरोव्यधितस्तीव्रं भारताधीश्वरो रथे ।
मुमूर्च्छ सहसोत्थाय स प्रोत्कटमयुध्यत ॥१९॥

पुनस्तयोः महायुद्धे प्रवृत्ते रोमहर्षणे ।
पराजिग्ये तत्र रिपुर्जयसिंहेन भूभुजा ॥ २० ॥

पराजितो रिपुरपि प्रसभं भारताधिपः ।
पादयोः प्रणिपत्याशु स्वस्यागांस्यचक्षमापयत् ॥ २१ ॥

ततः करमुपादाय तञ्चारोप्य स्वके पदे ।
जयसिंहो महीपालः प्रतस्थे मथुरां पुरम् ॥ २२ ॥

यमुनाचलकल्लोलपावितां सुमनोहराम् ।
आकीर्णां धार्मिकैर्लोकैर्वीरैश्चाद्भुतकर्मभिः ॥२३॥ (युग्मम्)

सेनायां जयसिंहस्य व्याप्नुवत्यां निजां पुरम् ।
मथुराधीश्वरो वीरः सेनापतिमवोचत ॥२४॥

सेनां सन्नह्य सहसा शात्रवं सैन्यमुल्बणम् ।
परावर्त्याशु बद्ध्वैनं मदन्तिकमुपानय ॥२५॥

श्रुत्वेति वचनं राज्ञः सेनापतिरधान्निजे ।
शिरस्यथ च वीराणां शतमादाय सोऽभ्यगात् ॥२६॥

यमुनापुलिने रम्ये सैन्यन्योरुभयोर्महत् ।
द्वन्द्वयुद्धं प्रववृते द्युसदां रोमहर्षणम् ॥२७॥

रणभीमेन रिपुणा रामदुर्गाधिपो बली ।
तुमुलं रणमारेभे धनुष्मान्कवची रथी ॥२८॥

वर्षन्तीभिर्धनुर्मध्याद्बाणालिभिरसौ बली ।
नभोमण्डलमाच्छाद्य तार्णावृतमिवाकरोत् ॥२९॥

रणभीमो रणमुखे शराणां ज्वलदग्निभिः ।
ददाह सहसा ताणं तदावरणमौर्वरम् ॥३०॥

रामदुर्गेशनयने नासायां हृदि तस्य च ।
शरत्रिकं धनुर्मुक्तं निचखान रुषाकुलः ॥३१॥

सोऽपि जाली प्रकुपितः शक्त्या हृद्यभिताड्य तम् ।
मूर्च्छयामास निश्चेता जगाम स यमालयम् ॥३२॥

एकाक्षरपादः

लाललीलाललो लोलः सालिः सासससोसिसः ।
पापोपपापपो पापी वाववो विवन वव: ॥३३॥

ललालललोलोलो लीलालालोललोलल: ।
शं शाशाशाशिशुः शाशः शशः शशिशशोशशः ॥३४॥

विशेषकम्

भारमल्लो मल्ललीलो रणभीमे हते रणे ।
जगामाभिमुखं रामदुर्गेशस्य महाबलः ॥३५॥

समस्तैकाक्षरम्

सोसिसासः ससौ सास ससूसः सासिसः ससः ।
ससिसासा ससासंसा ससा ससससासिसः ॥३६॥

भारमल्लः कियत्कालं रामदुर्गेश्वरेण सः ।
युध्वा तमवधीत्सोऽपि तं चान्योन्यहतावुभौ ॥३७॥

राजदुर्गेश्वरः क्रुद्धो युयुधे मल्लमुष्टिना ।
व्रजयोध्रा ससैन्येन युद्धकर्मविशारदः ॥३८॥

परिघैर्मुद्गरैर्भल्लैः शरैर्दीर्णारिविग्रहैः ।
युयुधाते रणमुखे रथस्थौ धीरमानसौ ॥३९॥

राजदुर्गेश्वरो मल्लमुष्टिना प्रहितेन सः ।
मुद्गरेण हतो वीरो मुमूर्च्छ सहसा रथे ॥४०॥

सहसा पुनरुत्थाय युयुधे मल्लमुष्टिना ।
क्रूरप्रहारैः संविद्धोऽसुभिरासे स लीलया ॥४१॥

राजदुर्गेश्वरो वीरः शात्रवं सैन्यमुत्कटम् ।
चिच्छेद बहुलः पक्षः पूर्णेन्दुमिव लीलया ॥४२॥

क्षीणे स्वसैन्ये सकले भीतो व्रजपुरन्दरः ।
जयसिंहं महीपालं शरणार्थमगादहो ॥४३॥

शरणागतमारोप्य स्वे पदे तं नराधिपः ।
करं जग्राह स ततस्तद्वैभवसमं बलात् ॥४४॥

यामुने चलकल्लोलविलोकमनोहरे ।
विश्रान्तिपुलिने गत्वा सस्नौ सोऽथ यथाविधि ॥४५॥

तत्र तेभ्यो द्विजातिभ्यो दक्षिणां प्रददौ नृपः ।
येन दारिद्र्यदारिद्र्यं व्रजे समभवत्समे ॥४६॥

पितॄणां तर्पणं श्राद्धं तदुद्देशात्समर्पणम् ।
दक्षिणायाश्च कृतितां प्राप्य वृन्दावनेऽगमत् ॥४७॥

कलकूजच्चक्रवाककलहंसमनोहराम् ।
तत्रस्थां यमुनां दृष्ट्वा प्रसादं सोऽभ्यगाद्धृदि ॥४८॥

तत्र तत्र हृषीकेशप्रतिमाः स मनोहराः ।
दृष्ट्वा ताभ्यश्चोपदानां निवेदनमथाकरोत् ॥४९॥

कृष्णपादरजःस्पर्शपवित्रीकृतरेणुनि ।
वृन्दावने वनवरे संस्थातुं को न वाञ्छति ॥५०॥

ततः प्रत्यचलत्काशीं विश्वेशसमधिष्ठिताम् ।
मध्यप्राप्तान्वहून्देशान्कुर्वाणः सन्नतान् नृपः ॥५१॥

तत्र कशीश्वरो योद्धुं स्वां सेनां समनह्यत ।
रिपावुपस्थिते कः स्यात्कर्णनिक्षिप्ततैलकः ॥५२॥

तत्र युद्धं तयोरासीन्नासीरमुखवर्तिनाम् ।
सैनिकानां परिध्वस्तमर्यादानां रणोत्सवात् ॥५३॥

मोहदुर्गेश्वरः शत्रुभटेन मदशालिना ।
युध्वा तमनयच्छीघ्रं शालीनत्वं मदोत्कटः ॥५४॥

ततो दुर्मदनामान्यः काशीराजभटोद्भटः ।
मोहदुर्गेश्वरेणेशु सम्प्रजह्रेऽतिभीषणम् ॥५५॥

तत्सिंहनादवित्रस्ता जन्तवो वेपिताश्रयाः ।
अपसस्रुः सिंहघोषत्रस्ता इव गजा वने ॥५६॥

वीराधम परित्यज्यो गर्वो दुण्ढारजन्मना ।
भवता क्लैब्यमेतेषां यतो नैसर्गिकं ध्रुवम् ॥५७॥

किं धनुर्भिः किमसुभिः शक्तिभिः किं भवेद्रणे ।
आलम्बितक्लैब्यवृत्तेस्ततोऽपस्रियतां रणात् ॥५८॥

वयं विश्वेश्वरगणाः प्रमथप्रमुखाः परम् ।
कोऽस्माकमग्रतः स्थातुमुच्यतां वीरसूसुतः ॥५६॥

यूयं किं मर्त्तुकामास्स्थ मत्तः सङ्ग्राममूर्द्धनि ।
म्रियतामथवा कामं काश्यां मरणमुत्तमम् ॥६०॥

इत्यधिक्षेपवचनैरधिक्षिप्तो महाभटः ।
वचोभिः परुषैरध्यक्षिपत्तां मदशालिनम् ॥६१॥

भवत्स्वाम्यधिकौजस्विसम्मोहनकरा वयम् ।
भवादृशां कैमुतिकन्यायादासादितं हि तत् ॥६२॥

वचोधिक्षेपमात्रेण भीषयन्नसि नो बली ।
वचः क्रूरतरा ये ते क्लीवा एव विलोकिताः ॥६३॥

अतोऽलमाभिर्गीर्भिस्ते सम्प्रहारक्षमो यदि ।
युध्यस्व तर्हि नो चेत्तदस्मत्स्वामिपदे पत ॥६४॥

इत्यधिक्षिपतोर्वाक्यैः परस्परमवर्द्धत ।
शस्त्रैर्बहुविधैर्भीमो रणः कल्पान्तवत्तयोः ॥६५॥

गदयाऽगदया तीव्रवेगया शितया तया ।
मोहदुर्गेश्वरो वीरं जघानोरसि दुर्मदम् ॥६६॥

अनागतामपि स तां दुर्मदो गदया स्वया ।
भङ्क्त्वा पथ्येव मोहेशशिरोऽस्फोटयदुल्स्वनम् ॥६७॥

तत्स्फोटनव्यथां तीव्रां सोढ्वा मोहेश्वरो बली ।
शक्त्यायुधेन स नासां हन्त चिच्छेद दौर्मदीम् ॥६८॥

विग्रो व्रीडनतं कृत्वा मूर्द्धानं दुर्मदो रणात् ।
निवर्त्तयामास रथं तद्भ्राता सुमदोऽभ्यगात् ॥६९॥

भ्रातृवैरूप्यरुष्टेन कम्पमानाधरेण च ।
सुमदेन भटेनैत्य विदधे वृष्टिरैषवी ॥७०॥

आच्छाद्यमाने महती रोदसी रुद्धहेलिके ।
दोषामन्योऽभवद्घस्रः संकुचन्मुखनीरजः ॥७१॥

विच्छिद्यमानदेहेभ्यो जनानां रौधिरी नदी ।
प्रावहज्जनशीर्षाणि प्रतरन्ती हसन्त्यमुः ? ॥७२॥

मोहदुर्गेश्वरश्छिन्नरथश्चित्ते व्यचिन्तयत् ।
कोऽसौ योद्धा किं विधेयं माया माहेश्वरी किमु ॥७३॥

जगदम्बामथ स्मृत्वा विपदर्णवमज्जितः ।
मोहदुर्गेश्वरः स्थैर्यमालम्ब्य युयुधे रणे ॥७४॥

शरवर्षैर्धनुर्मुक्तैश्चिच्छेद च शरावलीम् ।
प्रकाशमानभे भानौ दिवसो दिवसोऽभवत् ॥७५॥

सुमदं हन्तुकामेन मोहदुर्गेश्वरेण तु ।
आलम्बेऽथ निस्त्रिंशो निस्त्रिंशसदृशौजसा ॥७६॥

तेनाऽच्छिनत्स सहसा सहसः सौमदं शिरः ।
धार्मराजं मद्यपूर्णं चषकं किन्नु तद्बभौ ॥७७॥

अन्येऽपि बलिनो योधाः काशिराजस्य संयति ।
मोहेशेन क्षयं नीताः शस्त्रास्त्रचतुरेण च ॥७८॥

काशिराजः स्वयंवीरो वीरहा रणमूर्द्धनि ।
चलत्प्रविजवाचूर्णीकृतलोकरथस्थितः ॥७९॥
चचाल क्षयकालान्ते सञ्चरन् धर्मराडिव ।
वित्रासयन्सचैतन्यान्रोषदष्टाधरो जनान् ॥८०॥ युग्मम् ॥
एत्येदमब्रवोद्वाक्यं सगर्वमवनीश्वरः ।
जयसिंहं महीपालं योद्धुकाममथात्मना ॥८१॥
ढुण्ढारीश्वरढुण्ढारीमनाथांकर्तु कामता ।
तावकीनोचिता मन्ये शरणं सा क्व यास्यति ॥८२॥
पतिव्रतां दीनदीनामनाथां स्ववधूं गृहे ।
परित्यज्यैव कः कुर्यात्परलोकदिदृक्षितम् ॥८३॥
उपस्थितं भोज्यमन्नं परित्यज्य मनोहरम् ।
आगामि परकीयान्नं दूरस्थं को नु वाञ्छति ॥८४॥
उपस्थिते भये भीमे भीत्रान्तःस्त्रवदम्बुषु ।
ढौण्ढारिकेषु वीरेषु कः श्रद्धां प्राप्नुयाद्वद ॥८५॥
सुजयः काशिराजोऽयमिति ते नोचिता मतिः ।
विश्वेश्वरपदाम्भोजयुगाराधनदुर्जयः ॥८६॥
अल्पीयस्या श्रिया तृष्णा तावकी न गता स्वया ।
धर्मदत्तां मया तुभ्यं श्रियं लब्ध्वा कृती भव ॥८७॥
ढुण्ढारवध्वा दारिद्रचदुर्दशां प्राप्तया तया ।
रोषान्निष्काशितो गेहाच्छरण्यं मां किमाप्तवान् ॥८८॥

मा भैषीः शरणं साधु ममाप्य जयसिंह भोः ।
शरणागतशर्माणि कर्त्तुं कस्य मतिर्न हि ॥८६॥
प्रागेव हि कुतो नोक्तं कदनं कारितं कुतः ।
स्वसैन्यस्यास्य दीनस्य विवेको ना भवादृशः ॥६०॥
एवं न्यक्कुर्वतितरां काशिराजे मदोद्धते ।
राजाप्यौद्धत्यमालम्ब्य निर्भयोऽदादथोत्तरम् ॥६१॥
अरे कुनाथ दुर्दृष्टां लुण्टाकजनदुःखिताम् ।
सुनाथां कर्त्तुकामोऽस्मि काशीमतिमनोहराम् ॥६२॥
धौत्रेति भवदुक्ते तु तार्तीयीकोऽधमोचितः ।
बहुव्रीहिरयं त्वर्थो व्यक्तीभावीति निश्चितम् ॥६३॥
सुजयस्त्विवति वाक्ये ते तेनेत्येकं पदं मतम् ।
हेत्वर्थकतया युक्तं मन्निष्ठं तु विशेषणम् ॥६४॥
श्रियः परिग्रहेऽनल्पाल्पविचारस्तु तिष्ठतु ।
क्षात्रधर्मानुगो धर्मात्क्षात्रं ग्राहयते भवान् ॥६५॥
तीर्थद्विजैर्महालुब्धैरपहारितवैभवः ।
मत्पादयुगलाम्भोजसंस्थां लक्ष्मीमभीप्ससि ॥६६॥
परकान्तां जिघृक्षुस्त्वं काश्यामपि न लज्जसे ।
काश्यामनुष्ठितं पापं वज्रलेपतया स्थितम् ॥६७॥
परे जीवति दुष्टात्मन्परकीयां वधूं कथम् ।
जिघृक्षसि दुराचारात्काश्यास्त्वं भ्रंदयसे लघु ॥६८॥

दुराचारिभृता काशी काशते न तदैव हि ।
विश्वेश्वरप्रसादेन प्रसादं यास्यति ध्रुवम् ॥९९॥

योद्धुं जानासि युध्यस्व बिभेषि पत पादयोः ।
पतन्तं पादयोस्त्वां नो नेष्ये न यमसद्मनि ॥१००॥

इत्यधिक्षेपवाक्यानि ब्रुवन्तावितरेतरम् ।
वर्द्धमानक्रुधावेशौ युयुधाते नराधिपौ ॥१॥

काशिराजोऽभिताम्राक्षः पञ्चबाणान्पविक्षमान् ।
निचखानोरसि दृढे जयसिंहस्य भूपतेः ॥२॥

प्रत्युतैते प्रतीघातं लब्ध्वा सव्रीडमानसाः ।
न्यस्तशस्त्रास्तले भूमेर्निपेतुर्व्यसवो यथा ॥३॥

चत्वारोऽथेषवस्तीव्राः प्रहिताश्चापतो निजात् ।
जयसिंहेन तद्वक्षो भित्त्वा भुव्यविशन्क्षणात् ॥४॥

काशिराजेन वीरेण परिमुक्ता महेषवः ।
शतं शिता नृपाङ्गेषु प्रविश्यापुरसृक्सुधाम् ॥५॥

अथ क्रुद्धेन भूपेन शरैस्तच्चापमुत्कटम् ।
भग्नं तन्मित्रमात्मीयं शुशोचेव स नाशितम् ॥६॥

भग्ने धनुषि भल्लानां प्रहारं कर्तुमुद्यते ।
काशिराजे महीपालः स्वभल्लैस्तानखण्डयत् ॥७॥

खण्डितेष्वपि भल्लेषु परिघौघमथाक्षिपत् ।
परिघैस्ताडितो मूर्ध्नि व्यथां प्राप्यापतद्रथे ॥८॥

हाहाकरो महानासीज्जयसिंहेऽपि मूर्च्छिते ।
अनुजीविजनानां न केवलं किं नभःसदाम् ॥९॥
तद्व्यथामतितीव्रां तां सोढ्वा धैर्यवतां वरः ।
उत्थाय धनुरुद्यम्य ववर्षेषूनमर्षणः ॥१०॥
इषुभिस्तैः काशिराजशस्त्राणि सकलान्यपि ।
सञ्चितानि वसूनीव निन्यिरे सपदि क्षयम् ॥११॥
क्षीणेषु तेषु सर्वेषु काशिराजो महोद्धतः ।
न्यस्तशस्त्र इवौदास्यं भेजे सङ्ग्राममूर्द्धनि ॥१२॥
विनायको नाम मन्त्री तमुदासीनमब्रवीत् ।
काशिराजं महाभागं धैर्यसम्पादकं वचः ॥१३॥
वीराग्रणौ त्वयि विभो उचितं नेदमस्ति यत् ।
रिपावुपस्थिते संख्यमूर्ध्न्यौदासीन्यमाश्रितम् ॥१४॥
वीरसूरिति विख्याता सती ते जननी भुवि ।
या तां सम्प्रति वीर त्वं वैपरीत्यं नु नेष्यसि ॥१५॥
अयं क्षत्रकुलोद्भूतधर्मो नु मनुसम्मतः ।
रणाद्रिपोर्भयं प्राप्य यदौदासीन्यमीदृशम् ॥१६॥
तस्माद्धैर्यं समालम्ब्य युध्यस्व रिपुणा सह ।
अस्त्रविद्याप्रवीणस्त्वमस्त्रैर्मोहनपूर्वकैः ॥१७॥
एवं प्रोत्साहित स्तेनकाशिराजो महाबलः ।
मोहनास्त्रं प्रयुयुजे क्रुद्धो जयपुरेश्वरे ॥१८॥

प्रयुक्ते मोहनास्त्रेऽहो निशीथीभावमाप्तवत् ।
सर्वेऽपि सुषुपुर्योधा न्यस्तायुधकराम्बुजाः ॥१९॥

तमांसि दिवसेऽप्यापुः साम्राज्यमतिदुर्ल्लभम् ।
करः करेण नादर्शि समीपेऽक्ष्णाऽपि नो करः ॥२०॥

द्व्यक्षरः

उलूकलोको ह्योकेलं लोककोललकोलकैः ।
कालको कलकोलंको कलकेलिकलः किलः ॥२१॥

निद्रयाकुलतामक्ष्णोः प्राप्नुवन्नपि भूमिपः ।
तस्तम्भ तां महाकष्टात्कालीस्मरणतत्परः ॥२२॥

द्व्यक्षरार्द्धः

जजाप जपजापोजो जपजापजपाजपः ।
नयो ननयनायोना नायो नायानयाननः ॥२३॥

रणाङ्गणे रणनिधौ रविः प्रादुरभूद्विभुः ।
औषसं समयं प्राप्य प्राच्यामभ्युदयं तथा ॥२४॥

तमिस्रेभो भयात्क्रन्दन्नुलूकरवकैतवात् ।
प्रादुर्भूते हरौ क्वापि पलायत स दीनवत् ॥२५॥

सोऽरिर्मोघीकृतं स्वास्त्रं विलोक्यामर्षविह्वलः ।
दान्दशूकममोघास्त्रं प्रजिघाय नृपं प्रति ॥२६॥

प्रवृत्ते दान्दशूकेऽस्त्रे दन्दशूका विषोल्बणाः ।
फूत्कारैर्भीषयन्तोऽरीन्कुर्वन्तो धूमिता दिशः ॥२७॥

दंशं दंशं स्वरदनैर्लेलिहानाः स्वसृक्किणीः ।
द्विजिह्वा रिपुसैन्यं तत्प्राणैर्वियुयुजुः क्रुधा ॥२८॥

दन्तावलकुथं नागो रज्जुवद् व्याप्य संस्थितः ।
यन्तॄणां श्रमशंकातो बन्धने किमु दिद्युते ॥२९॥

वल्गो वाननमश्वस्य व्याप्नुवन्फणिनां वरः ।
वल्गाबन्धनवैयर्थ्यमुदपादि विषोल्बणः ॥३०॥

एवं कदनमालक्ष्य स्वसैन्यस्य नराधिपः ।
जयसिंहः सिंह इव चुकोप कृतनिश्चयः ॥३१॥

वैनतेयास्त्रमसकावमोघं सार्पभञ्जकम् ।
मन्त्रं जप्त्वाऽ क्षिपच्छीघ्रमस्त्रविद्यासु कोविदः ॥३२॥

वैनतेयसहस्राणि सहसोदीयुरुद्धतम् ।
पक्षोत्थितसमीरेण युगान्तं भावयन्ति किम ॥३३॥

वाहिनी काद्रवीयी सा शोकविह्वलमानसा ।
एकैकं भ्राष्ट्रचणकतुल्यं तैर्जगिले क्षणात् ॥३४॥

केचिदन्तर्हिता नागाः करेषु भयविह्वलाः ।
नागास्तुरगकर्णेषु केचिद्व्रूरुहकोटरे ॥३५॥

विनष्टिमीदृशीं दृष्ट्वा नागास्त्रीयां मदोद्धतः ।
वायव्यास्त्रं प्रयुयुजे स्वरिपूड्डाणवाञ्छया ॥३६॥

वायव्यास्त्रान्महान्वायुः कल्पान्त इव दारुणः ।
प्रावर्तत तदैवाशु भीषयन्नखिलाञ्जवी ॥३७॥

तद्वेगात्स्यन्दनाः केचिदुड्डीयांबरवर्तिनः ।
विमानौघा इवामर्त्या मुहूर्तं परिरेजिरे ॥३८॥

क्षणात्पुनरधः पेतुः सारोहा वेगतो रथाः ।
कापट्येन समारूढविमाना इव पूरुषाः ॥३९॥

अश्वा निश्चेतनीभूय पतिताश्चोर्ध्वतो बभुः ।
उच्चैःश्रवःसमाः स्वाश्वा व्यसवो वेन्द्रपातिताः ॥४०॥

करिणो वायुवेगेन चलन्तोऽधिनभो बभुः ।
दिग्गजा इव भूचारिगजवीर्यदिदृक्षवः ॥४१॥

पदातयोऽप्यात्तशस्त्रा जीवन्तोऽपि समीरणैः ।
पुण्यं तेषां महद्दृष्ट्वा नीता इव दिवं बभुः ॥४२॥

वायव्यास्त्रेण विक्लिन्नं स्वसैन्यमवलोक्य सः ।
जयसिंहो महीपालः स्थिरधीः स्थितवान्रणे ॥४३॥

तन्निवर्तकमुद्गीतयशाः स धरणीश्वरः ।
काद्रवीयास्त्रमतुलं प्रजिघायारिनष्टये ॥४४॥

पुनरुच्चैः काद्रवीयाः श्वसन्तोऽधिरणं ययुः ।
क्षुधिता इव सम्भ्रान्ता जक्षुर्वायव्यमुद्धताः ॥४५॥

वाराणसीमहेन्द्रोऽथ कोपानलमदोद्धतः ।
अस्त्रमाग्नेयमस्त्रज्ञः प्रायुङ्क्त नृपतावरौ ॥४६॥

जज्वाल ज्वालरसनो धूमकेतुरनिन्धनः ।
विभावसुर्वसुमतीमतीव परिपिङ्गयन् ॥४७॥

चटच्चटद्ध्वनिध्वानिदिङ्मण्डलवितायिना ।
वह्निना वायुदीप्तेन निर्दहे सकलं जगत् ॥४८॥

लङ्केव सा मही रेजे राणी भुवनमण्डले ।
सुवर्णमयतां निन्ये हव्यवाट् प्रज्वलन् स याम् ॥४६॥

हस्तिनोऽश्वा रथाः सर्वे पत्तयोऽपि च वह्निना ।
दह्यमानाः शुशुभिरे सौवर्णा इव संयति ॥५०॥

वन्हिना दह्यमानेऽस्मिन्भुवने सबलेऽखिले ।
जयसिंहो महीपालो मौदिरास्त्रं ततोऽक्षिपत् ॥५१॥

तमिस्रसदृशैर्मेघैर्गर्जद्भिरतिदारुणम् ।
रोदसी व्याप्यमाने वा सकले सम्बभूवतुः ॥५२॥

चञ्चलाभिः पीतिमानं नीताः पौरन्दरं धनुः ।
दधतोऽम्भांसि ववृषुर्युगान्त इव नीरदाः ॥५३॥

गुल्फदघ्नानि तान्यासञ्जानुदघ्नानि जज्ञिरे ।
बभूवुरूरुमात्राणि कटिमात्राण्यथाऽभवन् ॥५४॥

कण्ठव्याप्तानि च ततो ममज्ज जनता जले ।
करिणस्तेरुरम्भस्सु महोच्चाश्च रथोहिताः ॥५५॥ युग्मम् ॥

जाज्वल्यमानोऽपि महाञ्जातवेदा रणाङ्गणे ।
आप्लाव्यमाने धाराभिः शशाम सहसाऽखिलः ॥५६॥

एवं शस्त्रास्त्रविद्यायां पाटवं काश्यधीशितुः ।
विफलीभावमगमत् शरणं तमगादथ ॥५७॥

सर्वतोभद्रम्

परापररपारापराजजाररजाजराः ।
पाजापराराषजापाररराररारर ॥५८॥

इत्थं प्रार्थयमानं तं काशिराजं महाबलम् ।
क्षमाप्य सह तेनैव काशीं पुरमवीविशत् ॥५९॥

स्नात्वा गङ्गाजले रम्ये कृत्वा श्राद्धादिकीं क्रियाम् ।
दृष्ट्वा वैश्वेश्वरीं मूर्त्तिं प्रतस्थे नृपतिः पुरात् ॥६०॥

गत्वा गयां गयाश्राद्धं चकार नृपपुङ्गवः ।
तत्र म्लेच्छवधं चक्रे चकार नृपपुङ्गवः ॥६१॥

द्विपदौ

अङ्गवङ्गकलिङ्गेशान्युधि जित्वा नराधिपः ।
कूलं पूर्वोदधेः प्रापद्यु धि जित्वा नराधिपः ॥६२॥

मुरजबन्धः

यमाशामगशां राजा रामाशापूरशारताम् ।
ताराशारजशाकर्मावारशामगशाकजः ॥६३॥

गूढचतुर्थपादः

प्रतापेरदतिद्मामंभोच्चे भूमिपतौ हविः ।
जयसिंहेनिकरज ················ ॥६४॥

कालभीमश्रितालङ्का कालं कलयताऽचका ।
का च वीरप्रसू राका काराग्रहगतालका ॥६५॥

अवन्तिकापुरं गत्वा तदीशो रणकोविदः ।
आयोधने महाघोरे पराजिग्ये नराधिपः ॥६६॥
शिप्रायां सरिति स्नात्वा चलत्कल्लोलरिङ्गणैः ।
खेलयन्त्यामिव सुतान्सोऽङ्के जातः कृती नृपः ॥६७॥
महाकालेश्वरं तत्र शेखरेन्दुकलाङ्कितम् ।
ददंश भक्तिमान्राजा स्वोपदां च न्यवेदयत् ॥६८॥
ततः प्रस्थित्य सेनाभिर्गुर्जराधीशमुत्कटम् ।
शस्त्रास्त्रै रणमाधाय सन्नतीकृतवान् कृती ॥६९॥
पुण्याख्ये पत्तने रम्ये साक्षादुषितमे नृपः ।
गत्वा तदीशतो वीरात्करमादाय सोऽगमत् ॥७०॥

गोमूत्रिकाबन्धः

कृती सतुरगो भूपो परनाशोऽगमत्पुरः ।
कृती च तुरगो रूपोपरनाशोऽगमत्सरः ॥७१॥

पद्मचक्रम्

कृत्वा कृतकृतः कृत्यकृती कृतिकृतीकृतः ।
कृमिकृत्त्या कृतः कृच्छ्रं कृशः कृशकृपाकृतः ॥७२॥

चक्रबन्धः

नरनाथो नरवरो नमद्रिपुनरो रणे ।
घृतापथो पथहरो जालिकः पुरतो रणे ॥७३॥
पश्चिमाशापयोराशिं जगाम धरणीपतिः ।
सेतुं दृष्ट्वा दाशरथेः सस्मार किल विक्रमम् ॥७४॥

रामेश्वरं शिवं शैवैरहर्निशमुपासितम् ।
सार्थक्यकारि संप्रेक्ष्य जन्म स्वं भूभुजामुना ॥७५॥

वारुणीं प्रस्थितः काष्ठां काष्ठोपेतमहोदयः ।
जयसिंहो महीपालः पालनाय कृतोद्यमः ॥७६॥

तत्र योधपुराधीशं प्राप्य तेनाकरोद्रणम् ।
शस्त्रैरस्त्रैर्महाघोरैर्घोराकारतया नृपः ॥७७॥

तत्र योधा महौजस्का राजदुर्गेश्वरादयः ।
मारवैर्योद्धृभिर्वक्रैरयुध्यन्त मदोत्कटैः ॥७८॥

असिभिः परिघैर्भल्लैर्मुद्गरैः शक्तिभिस्तथा ।
छिन्नानि वीरजनताशिरांसि भुवि रेजिरे ॥७९॥

द्वयो राज्ञोरुभे सैन्ये क्षयं प्रापतुरुच्चकैः ।
युध्यमाने व्योमचरमनश्चित्रकरं बहु ॥८०॥

तदानीमतिसंरब्धो वीरो योधपुराधिपः ।
रथमास्थाय जैत्रं स्वमभ्यगाद्रणचत्वरम् ॥८१॥

शक्तिबन्धः

प्रजहार रिपुर्बाणैर्जयसिंहं नराधिपम् ।
योधपत्तनभूपालः कुपितः कमलालयः ॥८२॥

छत्रबन्धः

जयसिंहोऽपि नृपतिररमाहतवानजः ।
शरैः पिधाय सततमाकाशं च धरां तथा ॥८३॥

अङ्कुशबन्धः

जयसिंहः शरान्सर्वानवर्द्धयत लीलया ।
रान्सर्वानवधाय क्ष्मापतिर्युधि स कोविदः ॥८४॥

ध्वजबन्धः

जयसिंहः सिंह इव क्रूरकर्माऽवनीपतिः ।
वध्यं शक्त्यावधीद्वीरो रोपवर्षणतत्परः ॥८५॥

चापबन्धः

तामथो योधनगरे न परे प्रियवादिनः ।
नदीस्वच्छा जनास्सर्वे ददृशुर्विस्मिता मताः ॥८६॥

शृङ्खलाबन्धः

क्षमानालालययमामारोरोजजकंकदः ।
दरोरोपपकःकस्ससममाददनं नयः ॥८७॥

राजराजोऽथ समरमसन्नरसरं ससः ।
जहर्ष बहुलं वन्हिनिभोऽवनिपुरन्दरः ॥८८॥

गजबन्धः

रममाणो मामरणो भरमो मोरभंभदम ।
कुकुदं भरतो मामा तोरः पारगगंरपाः ॥८९॥

कालापकम्

शक्त्तयाऽभिताडितोऽमूर्च्छद्योधपत्तनभूपतिः ।
हाहाकारोऽभवत्संख्ये महांस्तत्र भटोद्भवः ॥९०॥

क्षणादुत्थाय निर्बाधो युयुधे पुनरप्यसौ ।
अस्त्रयुद्धेन महता कोपशोणितलोचनः ॥६१॥

अथै युयुत्सुमुद्वीक्ष्य रिपुं योधपुराधिपम् ।
जयसिंहो महीपालो मोहनास्त्रं प्रयुक्तवान् ॥६२॥

संमोह्य तं सन्नतेन करदानेन सत्कृतः ।
अरिणा स महावीर्यः प्रतस्थे पुष्करं प्रति ॥६३॥

पुष्करं प्राप्य स महत्तीर्थं पुष्करमण्डितम् ।
तस्याप्सु स्नानमाधाय पूतयकार्षीत्स्वविग्रहम् ॥६४॥

तत्र श्राद्धं तर्पणञ्च पितॄणां विदधे नृपः ।
तत्र तेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्ति धनं ददौ ॥६५॥

तैर्वितीर्णः सुसन्तुष्टैराशिषो जगृहे नृपः ।
पुत्री भव निजं राज्यमखण्डं भुङ्क्ष्व जीव च ॥६६॥

अजमेरपदे रम्ये गत्वा तदधिपं रणे ।
जित्वा ततः करग्राही सच्चक्रे तेन भूपतिः ॥६७॥

ततः सत्कारमादाय जयसिंहो नराधिपः ।
कौबेरीं ककुभं सद्यः प्रतस्थे भानुमानिव ॥६८॥

हरिप्रस्थं प्रति प्राप्तस्तत्पतिं यवनेश्वरम् ।
प्रभ्रंशयाञ्चकार स्वात्पदादतिमनोहरात् ॥६९॥

तत्र स्वाज्ञामथारोप्य सत्कृतो यवनेन सः ।
ततः पुरस्ताद्चलद्रिपूणां विजिगीषया ॥२००॥

अश्वबन्धः

ज्वालामुखीं सोऽथ पथव्यतीतः प्राप भूपपाः ।
समो मोसो वररवः क्षमी मीक्षवदादवः ॥२११॥

तत्र ज्वालाकृतिं देवीं नमस्कुर्वन्ददर्श सः ।
उपदीकृतवान्शक्तिमनतिक्रम्य भूपतिः ॥२०२॥

लाहोराख्यं पुरं गत्वा सन्नतीकृतवान्नृपः ।
सम्भावनामात्रवशात्तदीशं शिवसन्निभम् ॥२०३॥

खड्गबन्धः

कालीनिलीनलीनारिः करिपूरितसैन्यकः ।
मण्डीपुरं महीपालो जगाम विजिगीषया ॥२०४॥

चर्मबन्धः

तदीशं विजितं राजा जानुलम्बिकरो बली ।
लीनशत्रुचयो वामामाननाकुशलीकृत ॥२०५॥

द्विपदः

एवमन्यान्स विषयान्कुबेरककुभाश्रितः ।
पराजिग्ये नरपतिः कुबेरककुभाश्रितः ॥२०६॥

अर्द्धावृत्तिर्यमकम्

इति सर्वा दिशो जित्वा निवृत्तः स पुरं प्रति ।
इति सर्वा दिशोजित्वानिवृत्तःसपुरंप्रति ॥२०७॥
विद्यावतामग्रसरः प्रतापी विद्यावतामग्रसरः प्रतापी ।
विद्यावतामग्रसरःप्रतापीविद्यावतामग्रसरःप्रतापी ॥२०८॥

प्रथितो विक्रमकृत्यैः जनतापूज्यो महीकाशः ।
धाराधरसममूर्त्तिर्हरिरिव शुशुभे पुरं विशन्नृपतिः ॥२०६॥

वाहालीहारिहासा रणगुणगणनाऽतीतकातन्नतत्रा
धाराकारापराहाजयनयरयवाडारमारप्ररम्या ।
रामाकामाधिमानं पुरमुरसि रमाधारिणं रिक्तरिक्तं
राजानं जातजातं कमलमलमरं जेतृनेतृप्रतृप्तम् । २१०॥

आसीद्यस्य पराजितामरगुरुः श्रीलक्ष्मणाख्यः पिता
माता यस्य सती सतीव्रतपरा यस्याग्रजौ भ्रातरौ ।
स्तःस्वन्ताधिपदाद्यजन्तजयतिप्राग्वर्तिरामाभिधौ
रामस्यास्य कृतौ कवेरिह गतः सर्गोऽग्निगोत्रासमः ॥२११॥

इति श्रीपर्वणीकरोपाह्व श्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भ-
सम्भव श्रीसीतारामकविविरचिते जयवंश-
महाकाव्ये त्रयोदशः सर्गः ॥

चतुर्दशः सर्गः

अथ तं विशन्तमधिपं स्वपुरं जनता विलोकितुमियाय समा।
नृपमार्गमुत्सुकतमा वितमा बहुभिर्दिनैर्व्यतिगतैर्नृपतौ ॥१॥

परिणाहिनि प्रविमलेऽपि तिलास्तलमाप्नुवन्नृपपथे न यथा।
प्रबभूव मेलक इलातलगो जनताभवो विभुकृते हि तथा ॥२॥

स वधूजनोऽथ सहसा नृपतेरवलोकनाय समुदैत्पुरजः।
रतिमात्मगर्वगुरुमानिमतिं स्वरुचा जिगाय किल यः सुमुखः ॥३॥

अथ काचिदुत्सुकमना नृपतौ क्रियमाणमेणनयना तरुणी।
अपहाय भोजनमरं प्रययौ स्वगवाक्षमिन्दुसुधया धवलम् ॥४॥

कृतयावकं स्वपदमुत्क्षिपती धृतयावकाधिकृतितः करतः।
तरुणी जगाम च गवाक्षमरं पदवीं तदङ्कितमां दधती ॥५॥

नयनाञ्जनीकरणमुज्झितवत्यलमाबभौ धृतशलाककरा।
वनिता च काचन गवाक्षमलंकृतवत्यनुष्णकरयोजनतः ॥६॥

अथ मज्जनं विदधती वनिता तदरं विहाय पदवीं प्रययौ।
स्रवदम्बुबिन्दुपरिधानधृतावनिचारिनीरदघटोपमता ॥७॥

गमसम्भ्रमत्रुटितहारगलत्सितमौक्तिकौघकरकोपचिताम्।
पदवीं चकार च चकोरविलोचनभासुराक्षियुगला रमणी ॥८॥

रमणी विहाय न विहेयमपि क्षणमात्मना प्रियतमा चरितम्।
कपटेन कौतुकवती नितरामगमद्गवाक्षममृतांशुमुखी ॥९॥

सुमुखी परा परमसुन्दरभं नृपतिं विलोकितुमलौकिकदृक् ।
अगमद्गवाक्षमपहाय लघु प्रियभाषणं प्रियतमेन सह ॥१०॥

इति काश्चिदापुरपरा वनिता वनिताभिराप सुषमां सरसः ।
जलरूढहाटकलतस्य परं स गवाक्षकौघ उपलब्धगुणः ॥११॥

पुरमार्गमाहितविभूषणकं ध्वजतोरणादिभिरलौकिकभैः ।
उपयान्तमीश्वरममुं स भुवोवनिताजनः समुदमीक्षितवान् ॥१२॥

द्विषतां शरान्सहितवान्यदि तत्सहसूनबाणशरमेकमपि ।
भृकुटीधनुःप्रसृतमित्थमिव स्मितयुङ्मुखं स ददृशे सुदृशा ॥१३॥

स्मितकान्तिभिः प्रसृमराभिरिमं सुदृशां सिताङ्गमवनीरमणम् ।
कृतलाजवृष्टिपरिगौरतया समशङ्कतेक्षणकरो हि जनः ॥१४॥

पुरजात्मजाविचकरः समुदः समुदं नराधिपमुदञ्चितभम् ।
भृतलाजकैर्विकसिताञ्जलिभिर्द्विषतां जयोद्धुरमनन्तगुणम् ॥१५॥

गजमाश्रितश्चमरवीजनतः शिखिबर्हवीजिततया च रुचम् ।
महतीं वहञ्जयपुराधिपति गृहमुच्चतोरणमसाववशित् ॥१६॥

अधिगेहमेष उपविष्ट इलावलये महेन्द्र इव मन्त्रिजनैः ।
सुखविष्टरे महति नीरजना विधिना शुभाप सदकारि नृपः ॥१७॥

परिपालकस्य विधिवत्स्वपुरो नृपतेः पतिव्रतपरा ऽथ वधूः ।
प्रदधेऽधिकुक्षि किल गर्भमलङ्कृतिरेव भर्तृपितृवंशगताः ॥१८॥

परिपाण्डुरेण वदनेन सती गणनीयभूषणवहाङ्गलता ।
लघुतारकां प्रकटपूर्णविधुं शरदुद्भवां रजनिमन्वकरोत् ॥१९॥

कलशोपमं स्तनयुगं सुदृशः पयसाभिपूरितनमं शुशुभे ।
अतिनीलचूचुकयुगं भ्रमता भ्रमरेण संश्रितमिवाम्बुजनौ ॥२०॥

मृदमाद केवलमियं मरसां सरसीरुहोपमविलोचना ।
सरसान्यपि प्रतिविहाय पराण्यवनीपुरन्दरवधूर्विमला ॥२१॥

कृतवान्स पुंसवनकप्रमुखान्नृपतिर्विधीन्स्वविभवानुगतान् ।
सुदृशः कुतो विदधते कृपणां मतिमीश्वराहितिजकार्यविधौ ॥२२॥

समसूत सूनुममले समये नृपवल्लभा दिनकरोपमभम् ।
यदरिष्टमान्धतमसं तदिदं विनिवारितं शिशुशरीररुचा ॥२३॥

अथ जातकर्मविधिशुद्धतनुं सुतमात्मनो नरपतिर्विबुधः ।
अलमीश्वरीप्रथमसिंह इति प्रततान नामधरमागमवित् ॥२४॥

शिशुरेव शास्त्रमखिलं बुबुधे श्रुतिमध्यगीष्ट स कृतोपनयः ।
प्रतिभाजुषां किमिव दुर्ग्रहतामुपयाति यद्यदतिदुर्ग्रहताम् ॥२५॥

सकलाः कला विदितवानधिकं नृपसूनुरुल्बणमतिः सहसा ।
अधरीचकार स कलौघनिधिं क्रमशः सुधांशुमसुधाकरभाः ॥२६॥

पितरि प्रतापिनि सुतोऽप्यधिको गुणगौरवेण विनयोपचयात् ।
पितुरून एव ददृशे सुधिपः स सुतस्य धर्म इह यद्विनयः ॥२७॥

क्रमतः कृताभिरथ संस्कृतिभिर्जनकेन भासुरवपुः सुतराम् ।
नृपकन्यका गुणवतीरुचिता व्यवहद्युवा युवमतिर्विधिवत् ॥२८॥

विललास ताभिरधिकं तनयो नृपतेर्विलेसुरमुना सह ताः ।
न हि युक्तपूरुषवधूजनता किमुपैति रात्रिहिमदीधितिभाम् ॥२९॥

क्रतुमुन्नतोऽथ हयमेधमसौ बहुदक्षिणं किल चिकीर्षुरभूत् ।
ककुभां जयार्जितरमो नृपतिः सदनुष्ठितिः प्रकृतिरेव सताम् ॥३०॥

क्रतुशालयातिविमलालयया विधिबोधिकारुकृतया व्यजनि ।
गुरुधूमनिर्गमनजालभृता धृतहव्यवाहपदवेदिकया ॥३१॥

विदुषां सभानिलयगर्भितया धरणीभृतां परिषदास्पदया ।
न हि तादृशा तु तपसस्तनयक्रतुशालयार्जनि पुरा किमतः ॥३२॥

अथ शामकर्णमवनीरमणो ययुमुच्चमानमसुलभ्यमपि ।
ययुचित्रदर्शनकृदश्ववधूजननप्रयासविधयार्जितवान् ॥३३॥

चयनोत्युप ह्वयमखण्डगुणं कमलाकरं श्रुतिजकर्मपटुम् ।
निजकर्मसु प्रतिनिधिं वृणुते यजमानतामनुभवान् स्म नृपः ॥३४॥

वृणुते स्म यज्ञकरमौर्युमसौर्युपदावसानगणिताध्वपदे ।
तदुपात्तकर्मकुशलं कुशली कुशलीकृताखिलजनो जगति ॥३५॥

चयनीत्युपाख्यहरिकृष्णमयं विधिना पदे वृणुत तत्सदृशम् ।
अथ रामचन्द्रकमयाचितमावृणुताधिहोतृपदमुच्चगुणम् ॥३६॥

जगदादिनाथमवृताथ नृपो गुरुमात्मनो महति गातृपदे ।
व्रजनाथदीक्षितमुखान्विबुधानवशिष्टषोडशपदेष्ववृत ॥३७॥

धृतमौनितो यतवचाः प्रयतो मृगशृङ्गवाहितकरोऽतिधृतिः ।
कुशविष्टरस्थितिकरो विनयी शुशुभे युधिष्ठिर इवातितराम् ॥३८॥

अथ यज्ञकर्मविधिवत्सुमहन्नृपतेररं प्रववृते महतः ।
ययरक्षणाय विधृताधिकृतिस्तनयो ऽभवद्बलवदग्रसरः ॥३९॥

हवनोत्थितप्रसृतधूमशिखावलिलीलया ललितमभ्रमभूत् ।
समयं विनाऽपि परितो नितरां घनजालशारितमिवोच्चरुचि ॥४०॥

अपशब्दितोनमजहुर्ज्वलने ह्युपदिश्य दैवतमथेन्दुमुखम् ।
हविरुच्चकैर्हवनऋग्भिरिमे ध्रुवमृत्विजो विधिविदो गुणिनः ॥४१॥

अथ साम सामविदिहोपशमी समगायदुत्स्वरमुपात्तकरः ।
गिरिभेदकस्वरपटुः प्रतिभःसविशेषतावरकृतश्रुतिवित् ॥४२॥

कृतदर्भकाञ्चियजमानवधूप्रविलोकितं हविरथो विमलम् ।
हुतवान्हविर्भुजि समन्त्रगणं गणऋत्विजामुचितकोहकृताम् ॥४३॥

अतिलोलहेतिरसनः सहसा बहुभिर्दिनैः क्षुधितकोऽप्युदरः ।
ज्वलनोऽग्रहीद्धविरलं पतितं द्विजपाणिपात्रमुखतो विवशः ॥४४॥

पशुमप्यधिज्वलनमिद्धरुचौ समचिक्षिपन्हवनकर्मकराः ।
अधिकप्रदीप्तरुचिरग्निरभूद्धवनीकृते मलपशौ विधिवत् ॥४५॥

इति यागकर्मणि समाप्तिमिते स हि दीक्षितोऽवभृथपूततनुः ।
क्रतुदक्षिणाः कृपणमानिमना वितरीतुमारभत दातृवरः ॥४६॥

गजतामदाद्विकटदन्तयुगोल्लसितोत्कटोत्कटकरां महतीम् ।
अतिचित्रितां कुथवतीं नृपतिर्जलदप्रभां द्विजवरेभ्य इहा ॥४७॥

अलमर्वतो गतिविधौ चमरोल्लसदुन्नतांसयुगलान्महतः ।
वृषवाजिजित्वररुचोऽधिरुचो विरुचीकृताखिलनृपोऽदित सः ॥४८॥

स वरूथकान्रथवरानददाज्ज्वलनामलीकृतसुवर्णकृतीः ।
दधतः सवेगगतिवाजिवराञ्चलकिङ्कणीकलरवाकलितान् ॥४९॥

नरवाहनानि नरवाहनजिन्नृपतिर्ददौ स बहुशोऽतियशाः ।
न शशाक तद्गणनकार्यविधौ विधिरप्यशेषजनसृष्टिकरः ॥५०॥

समुवर्णदक्षिणमिदं सकलं स वितीर्य नैव कृतिमान्यभवत् ।
प्रतिपत्तिधीरजनतान्तरगः स निसर्ग एव हि ददाति बहु ॥५१॥

अथ भूमिदानमकरोद्बहुलं बहुमस्य वृद्धिजनकं गृहिणाम् ।
धृतराजशासनकमुद्रिकयाङ्कितपत्रकं द्विजनुषु प्रणयी ॥५२॥

अधिलक्ष्य कोटिगणनामददात्क्रतुदक्षिणां निजमितम्पचताम ।
निगदंस्तथाऽपि वदति स्म तु सा किमु कर्णवर्मणि नृपे नृपता ॥५३॥

अथ पण्डितेष्वजनि संविदधन्निजशक्तितुल्यमुपदामुचिताम् ।
परदेशतो ह्युपगतेषु तथा निजदेशगेषु च नराधिपतिः ॥५४॥

कपिलाः पयोभृतिवहाः स च गा बहुशो ददौ द्विजनुषु प्रभची ? ।
बहुदक्षिणा रजतशृङ्गखुरीर्बहुमूल्यवस्त्रबहुलाभरणाः ॥५५॥

द्विजनुर्वतो गुणवतोऽगणनान्स यथा रुगभ्यवहृतिं नृपतिः ।
समकारयन्नथ भुजिक्रियया सुहितास्त आशिषमदुर्यजते ॥५६॥

विमुखो न कोऽपि नृपतेरगमत्क्रतुरूनतां विधिषु नैव गतः ।
अतिदानशौण्डकुलता धनिता विधिवेदिनोऽतिपटुता विधिषु ॥५७॥

श्रुतिमन्त्रपाठमथ वेदविदामशृणोत्तदक्षतचयान्विमलान् ।
शुभवृद्धये निजकुलस्य नृपः स समादित प्रणतमूर्ध्नि निजे ॥५८॥

यज्वा यज्वजनप्रियः प्रियतमामानापनोदे क्षमः
क्ष्माभारोद्वहनक्षमो मृदुमना न्यायोदधिः स्वोदधिः ।

वन्ध्यावन्दनलब्धशर्मविततिः श्रीविष्णुसिंहात्मजो
ज्येष्ठो ज्येष्ठतमो गुणैरगणनैरौपम्यमत्यक्रमीत् ॥५९॥
आसीद्यस्य पराजितामरगुरुः श्रीलक्ष्मणाख्यः पिता
माता यस्य सती सतीव्रतपरा यस्याग्रजौ भ्रातरौ ।
स्तःस्वन्ताधिपदाद्यजन्तजयतिप्राग्वर्तिरामाभिधौ
रामस्यास्य कृतौ कवेरिह गतः सर्गः श्रुतिक्ष्मासमः ॥६०॥

इति श्रीपर्वणीकरोपाह्वश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भ-
सम्भवश्रीसीतारामकविविरचिते जयवंश-
महाकाव्ये चतुर्दशः सर्गः ॥१४॥

पञ्चदशः सर्गः

अथ पण्डितसंसदन्तरे नृपतिः सन्स सदा सदानतः ।
बहुमानमनेहसं सुधीरतिचकाम महाभुजो बली ॥१॥

अथ परास्य वधूः सुतं सती समसूत प्रसवोचिते हिते ।
समये स निजौजसा शिशुः शुचिजन्मानमिनन्तिरोऽकरोत् ॥२॥

सुतनाम मनोहरं पिता विदधे माधवसिंह इत्यदः ।
न हि केवलमस्य नाम तच्चरितार्थं समभून्निधेःश्रियाम् ॥३॥

शिशुखेलनमद्भुतं नृपः स विलोक्य प्रससाद चेतसि ।
न हि कः शिशुलीलयाप्तया सुकृतैर्हृष्यति पूर्वसञ्चितैः ॥४॥

सकला गुरुतोऽपठच्छिशुः स च विद्याविनयोपबृंहितः ।
सफलीभवनं शिशावगात्प्रतिभाशालिनि गौरवः श्रमः ॥५॥

उपनीय नृपो नृपोत्तमः सुतमुच्चप्रतिभासमाश्रयम् ।
समपाठयदस्त्रमात्मना यत एषोऽनुपमो धनुर्धरः ॥६॥

परिणीय सुता महीभुजां कृतितामाप तमाप्य ता अपि ।
अनुरूपसमागमो न कं कुरुतेऽलङ्कृतिभिर्ह्यलङ्कृतम् ॥७॥

इति सूनुयुगेन योगिना द्विषतां दुःसहतामलन्तराम् ।
समवाप्य चकार पैतृकं गुरु राज्यं स चिराय भूपतिः ॥८॥

इति सूनुयुगेऽग्रजं सुतं गुणिनामग्रसरं न्यषिञ्चयत् ।
विरतिं विषयेषु लब्धवान्स जरालिङ्गितविग्रहो नृपः ॥९॥

हरिणा स्वपदं निनीषता नृपमाकारणहेतवे खलु ।
प्रहितेव जरापदेशतो वरदूतीह समागता मतिः ॥१०॥

शयनाश्रयणादिना स तां परिसत्कृत्य नराधिपश्चिरात् ।
अथ तत्सहितो हरिं स्मरन्हरिलोकं समगादविग्रहः ॥११॥

अथ शोकविमूर्च्छितौ सुतौ धरणीं मोहहतावुपेयतुः ।
वसनानि विभूषणानि च प्रतिभिन्नानि शरीरतोऽभवन् ॥१२॥

रजसापरिरूक्षविग्रहौ ग्रहणग्रस्तसुधाकराविव ।
करुणापदमेव तावुभावुदभूतां सकलस्य दुःखिनः ॥१३॥

व्यजनादिभिरुच्चकैस्तमो विनिवृत्तं पितृशोकजन्म तत् ।
परिदेवनमुक्तकण्ठकं विदधाते स्म पितुः समीपगौ ॥१४॥

शिशुताश्रयिणावबोधनौ पितरावप्रविहाय ते गतिः ।
उचिता किमु वर्ण्यतामहो कठिनी भावमितं मनस्तव ॥१५॥

विषभूमिरुहौ निषेचितावपहायैव गतिर्न गौरवी ।
अविषावनिजावमू शिशू बत हित्वैव कुतः प्रयातवान् ॥१६॥

प्रथमं न कदापि पारुषी तव वृत्तिः सुतयोरधिष्ठिता ।
अधुना प्रतिकूलदैवयोर्दुरदृष्टं विलसत्यनिष्कृतम् ॥१७॥

क्षुधितं तृषितं शरीरजावधुना प्रद्यति को नु कोपया ।
हृदयं विदृणाति मामकं मुखशोषो द्रविता तनुर्मुहुः ॥१८॥

बत हन्त हता हता वयं गतनाथाः किमनाथजीवनम् ।
अवरोधवधूमुखोत्थितः सहसा दीनतरो महारवः ॥१९॥

अकरोद्द्रवितान्तरान्गृहान्वनभूमीतलजन्मनोऽखिलान् ।
निपतत्सु मनःशुकान्सरोऽसरदुत्क्षिप्य तटानि किं बहु ॥२०॥

विरुदद्वनितामहारवप्रतिनादस्य मिषेण दुःखिनः ।
रुरुदुश्च गृहा गृहेश्वरे परलोकं गतवत्यलन्तराम् ॥२१॥

क्व गतो भवतः स विक्रमः क्व च सौजन्यमनीश्वरा वयम् ।
पतितो भुवि विग्रहोऽधुना न समीरोऽपि विकम्पयत्यमुम् ॥२२॥

बत कष्टमिदं गुणज्ञता कथमाश्रित्य च ? वत्स्यं मे वद ।
प्रणयं प्रविहाय हेलना परनैवार्हति योगमः स ते ॥२३॥

गुरुणा शमिताधयो गिरा सुधया सर्व इमे किलाऽभवन् ।
मरणं नहि विस्मयोऽङ्गिनां किमु वा जीवनमेव विस्मयः ॥२४॥

इति युक्तमिदं सुते पितुर्मरणं संसृतिमार्ग एव हि ।
प्रविहाय शुचं पितृक्रियाविधिमाधाय कुरुष्व पुत्रताम् ॥२५॥

इति वाक्यविदोऽनुदेशतः परिमुक्तान्तरशुक्सुतोऽग्रजः ।
विधिमारभतौर्ध्वदैहिकं पितुरग्न्याहितकस्य वैदिकम् ॥२६॥

अरणिं प्रतिमन्थ्य यत्नतः प्रतिपन्नेन सुतो हविर्भुजा ।
मृतवाहनवाहितं तथा कृतवेशाभरणं ससेनकम् ॥२७॥
पितरं पितृकाननाङ्गणं कुसुमागरुचन्दनैर्धनैः ।
रचिते मृतमण्डपेऽमले विधिवद्दाहविधिं समापयत् ॥२८॥ युग्मम्

अनुजग्मुरिमं पतिं नृपं वनिताः सत्त्वयुता हविर्भुजि ।
वनिताजनतोचितं भवेदिदमेवानुगमः पतिं गतम् ॥२९॥

अधिपल्वलनीरमाप्लवं स विधायाश्मनि दाहसम्भवाम् ।
विनिवारयितुं तृषं पितुर्व्यकिरद्धूपसुतस्तिलाञ्जलिम् ॥३०॥

स दशाहविधिं विधिज्ञतां स्वयमेवाश्रितवान्सुतोऽग्रजः ।
विधिवद्विदधे विधिज्ञतो वच आश्रित्य निदानभक्तिमान् ॥३१॥

पितुराहितवान्स रौद्रिकं विधिमर्कोपमकान्तिको ददौ ।
गजवाजिमनुष्यवाहनं रथमापूर्णसुवर्णदक्षिणम् ॥३२॥

अथ तत्परतो दिने सुतः स च सापिण्ड्यविधिं यथाविधि ।
विदधे पुरजानथाखिलान्द्विजपूर्वान्स जनानभोजयत् ॥३३॥

इति पैतृकतो विधेः सुतः परिमुक्ते खलु मन्त्रिवार्द्धकैः ।
सुकृतैरभिषेकवेदनैरभिषिक्तः स च पैतृके पदे ॥३४॥

पदमाप्य पितुः समृद्धिमच्छुभेऽत्यन्तमरातिधर्मराट् ।
उदयाचलमाश्रितो यथा परिगौराङ्कक ईश्वरो भुवः ॥३५॥

नयमार्गमधिश्रितो गुणी गुणवत्संसदि संस्थितः सदा ।
पितृतोऽप्यधिकं मही महीमशिषन्मानितसद्गुरुर्बली ॥३६॥

धरणी तमवाप्य सत्पतिं नहि सस्मार कदापि पूर्वजान् ।
नृपतीन्बलिनोऽपि यद्बलं बलवद्विस्मयकारि हीत्त्वितम् ॥३७॥

जयसिंहजयोन्मनस्कता प्रथमं याङ्कुरिता महीभुजाम् ।
अधुनेयमवर्द्धतातुलं विहिताश्लेषविधिर्न मुञ्चति ॥३८॥

अनुजे सुतवुद्धिकारिणाऽधिकमेतेन महीभुजा मही ।
बहुभूपतिवेष्टिताप्यसौ ननु राजन्वतिका किलाजनि ॥३९॥

निजमन्त्रिवरं नराधिपः स हि विद्याधरनामकं सदा ।
अनुकूलकरं धुरन्धरं धुरि सन्धाय सुखानि भुक्तवान् ॥४०॥

अथ नाम्त्यरणी परोऽभवद्धरगोविन्द इति प्रतीतिधृत् ।
नृपमन्त्रिवरो वरीयसा स्वबलेनावनिमादधार यः ॥४१॥

युग्मम्

नृपतिर्बलशालिनां वरः स च मल्लारिमरिं महोद्धतम् ।
प्रतिजेतुमनाः समन्त्रिकः सह सैन्येन कदाचिदीश्वरः ॥४२॥

गजवाजिवरूथिसंयुजोद्भटशस्त्रास्त्रभटालियोगिना ।
कवचावृतदेहवर्मणा प्रचचालोद्भटदन्तिसंस्थितः ॥४३॥

प्रचलत्यवनीपुरन्दरेऽजनि निस्स्वानगभीरनिस्स्वनः ।
भुवनत्रयमाद्यवेगतः सहसावेपत भीतिविह्वलम् ॥४४॥

प्रचलत्तुरगावलीखुरोच्चलदत्यन्तरजोघनावृतम् ।
गगनं जलदालिमण्डितं शुशुभे प्रस्थितिकारिणीश्वरे ॥४५॥
तदैश्वरं सैन्यमवेक्ष्य वीरान् स्वीयान्स मल्लारिररिर्महीयान् ।
अजिज्ञपद्योद्धुमना द्विषद्भिः त्रिलोकलोकानतिकम्पयद्भिः ॥४६॥
अथैतयोर्युद्धविधिः प्रवृत्तः समद्वितीयः सतलज्ञमध्ये ।
तद्युद्धभीतः पदयोः पपात मल्लारिनामा द्विषतां वरीयान् ॥४७॥
जितोऽमुना सोऽथ मिषेण भुक्तेः हालाहलं वैरिणमाततान ।
तस्येश्वराख्यस्य नराधिपस्य ततोऽसवो लोकमवापुरन्यम् ॥४८॥
सर्वेऽप्यमात्याः पुरमेत्य राज्ञः तथौर्ध्वदैहं विधिमप्यकार्षुः ।
आनीय मातामहगेहवृत्तं सद्योऽनुजं माधवसिंहसंज्ञम् ॥४९॥
इत्थं लोकान्तरमुपगते देववाञ्छानुकूलं
तस्मिन्नीशे बलिनि सहसाऽमात्यवर्याः समस्ताः ।
स्थाने तस्मिन्नभिषिषिचुरानीय नीराणि तीर्थात्
गङ्गापूर्वाद्बलिनमतुलं माधवेशं सुशीलम् ॥५०॥
आसीद्यस्य पराजितामरगुरुः श्रीलक्ष्मणाख्यः पिता
माता यस्य सती सतीव्रतपरा यस्याग्रजौ भ्रातरौ ।
स्तः स्वन्ताधिपदाद्यजन्तजयतिप्राग्वर्तिरामाभिधौ
रामास्यास्य कृतौ कवेरिह गतः सर्गः शरद्मासमः ॥५१॥

इति श्रीपर्वणीकरोपाह्वश्रीलक्ष्मणभट्टात्मज सतीगर्भ-
सम्भव श्रीसीतारामकविविरचिते जयवंश-
महाकाव्ये पञ्चदशः सर्गः ॥

षोडशः सर्गः

पित्र्यं पदं प्राप्य समृद्धि रेजे नराधिपो माधवसिंहवर्मा ।
सवर्मवीराङ्गविदारणेषु क्षमः क्षमी क्ष्माभरणे पटीयान् ॥१॥
दलद्द्विषद्वर्गवपुःक्षरद्भिरसृग्भिरुच्चाः सरितश्चकार ।
रणाङ्गणे यः सहसा तदम्बु पीत्वा प्रसेदुः शमनस्य नार्यः ॥२॥
यस्य प्रतापे जगति प्रतीते वैयर्थ्यमासादितवानपीनः ।
बभ्राम लोके पुरतोऽस्य नित्यं क्षमापनायेति वितर्कयामि ॥३॥
प्रतापतेजोऽभिधयन्त्रलेखाद्वृत्तीकृतस्तिग्मकरोऽधितेजाः ।
विकर्तनाख्यां खरदीधितित्वे जगाम लोके तत एव मन्ये ॥४॥
प्रतापभानावुदिते त्वखण्डं न केवलं नैशतमो जनानाम् ।
ननाश किन्तु प्रसभं विलिल्ये तदान्तरं नो पुनरुद्बभूव ॥५॥
प्रतापहेलावुदयं प्रपन्ने विकासमापुः सुहृदां मुखानि ।
दुर्हृन्मुदां कैरविणीजनानां हाहाकृतिः सन्ततमुद्बभूव ॥६॥
प्रतापसूर्येऽभ्युदिते यदीये सद्यो रिपूलूकजनान्ध्यमासीत् ।
द्विषद्वधूनां मुखशीतभासो विभासतोऽप्यस्तमयं प्रपन्नाः ॥७॥
प्रतापवन्हौ ज्वलति प्रवृद्धे सर्वेऽरयोऽङ्गानि हवींष्यहौषुः ।
तदुत्थपुण्योपचयेन सद्यः स्वर्गौकसां वन्द्यतमा बभूवुः ॥८॥
प्रतापधर्मागमतिग्मभानौ करैरतीवोष्णतरे प्रवृत्ते ।
नितम्बिनीनां सहसा रिपूणां सर्वेऽप्यशुष्यन्सरसा विलासाः ॥

प्रतापसूर्येण च घर्मकाले प्रवर्तिते सामयिकेऽपि सद्यः ।
वृद्धिं समीयुर्दिवसान्यपूर्वा सुहृज्जनर्द्धिप्रतिपादकानि ॥१०॥

वने वसन्तो हृदये रिपूणां घर्मोऽरिकान्तानयनेषु वर्षा ।
सुहृन्मुखेन्दौ शरदुद्विकासा कासाऽवृत्तावपरावृतू तु ॥११॥

इत्थं षडेवर्त्तव ऋद्धिमन्तः सदा वसन्माधववर्मणीशे ।
गुणैस्तदीयैरिव कृष्यमाणा गुणैः पदं कुत्र निधीयते नो ॥१२॥

किं माधवेशेऽग्रऋतुत्वबुध्या परर्त्तवो नित्यमवात्सुरेव ।
स्वस्याद्वितीयोत्तरताभ्रमेण मधुस्तथान्तं खलु निश्चिचीषुः॥१३॥

प्रसिद्धसूर्यानुसृता विभिन्नाः क्रमोद्गमास्ते ऋतवोऽन्य एव ।
प्रतापभानुं सततोदितं तमन्येऽनुयाता युगपत्प्रवृत्ताः ॥१४॥

प्रतापतप्तारिकुलाङ्गनानामनङ्गतापोऽपि विषह्य एव ।
साङ्गस्य तापं यदि सोढुमीशो यस्तस्य चान्यः स कथं विषह्यः॥

दिगङ्गनाः कीर्तिततिस्वरूपं वासो वसानाः सकला विरेजुः ।
नित्यं ददत्योऽवनिपाय तस्मै सदाशिषो माधवसिंहनाम्ने ॥१६॥

यशःसुधादीधितिदीधितीनां जगत्सु सर्वेषु सति प्रचारे ।
द्विषद्वधूरूपकचक्रवाक्यो निमीलितादयो विरहातुराङ्क्यः ॥१७॥

यत्कीर्तिरूपेन्दुरशेषवैरिमुखाम्बुजानि प्रसभादुदीतः ।
न्यमीलयत्पत्यनुरोधिचक्षुःकुमुद्वतीप्रीतिकरः करैः स्वैः ॥१८॥

यशोभरासादितपाण्डुभावे नृपस्य यस्यातितरां मलोनैः ।
जगत्यभूत्पाण्डुगुणो गरीयान्स्वाद्वैतभावं प्रतिपद्य सुस्थः ॥१६॥

क्षीराब्धिरूपं यश एव यस्य ततोऽजनिष्टेन्दुरयं कलावान् ।
यदन्यथा तस्य यशस्समत्वं कथं घटेतेति विनिश्चिनोमि ॥२०॥
दानेषु यस्यावनिनायकस्य निरीक्षितेषु श्रुतिगेषु वाऽपि ।
कर्णादयः कर्णपथं प्रयाताः सव्रीडमुज्झन्ति पदं प्रयान्तः ॥२१॥
द्विजाङ्गनाकेलिषु भग्नहारमुक्ताभरापूर्णगृहाङ्गणानि ।
सम्मार्जयन्तः परिचारकौघाः सम्मेनिरे वज्रिवधूं तृणाय ॥२२॥
विद्वान्न कः प्राप मनोरथान्स्वान्स्वदेशवासी परदेशगो वा ।
न चित्रमेतद्विदुषोऽपि भिन्नो न प्रत्यगाद्रिक्ततमोगृहं यत् ॥२३॥
सुपर्वणामेष निवासभूमिः सुमेरुरस्मिन् क्षयिते क देवाः ।
वत्स्यन्ति शङ्काकुलमानसेन महीभुजाऽकारि न दृष्टिरस्मिन् ॥२४॥
यद्दाननीराम्बुधिनिर्झरेण कल्लोललोलीकृतभूमिकेन ।
दारिद्र्यमद्रिप्रमितं प्रवाह्य कुत्र पि नीतं पुनरीक्षितन्न ॥२५॥
कृपासमुद्रोऽतलको नृदेवः कैः कैर्न भूदेववरैः प्रमथ्य ।
गुणौघमन्थानमहीधरेण धनामृतं दुर्ल्लभमार्जि नित्यम् ॥२६॥
दयासरित्कापि चकास्ति पूर्णा तदुत्थितो भूमिरुहोऽयमीशः ।
यदक्षिपाणिद्वयसूनधारी वनीपकैश्छिन्नफलो नितान्तम् ॥२७॥
दुग्धाब्धिवद्देववरैः कृपाब्धेः प्रमथ्यमानादुदभूत्स शाखी ।
यः कल्पवृक्षः प्रथितो जगत्सु नृपच्छलादत्र वसन्बभूव ॥२८॥
दुःखानि कस्यापि जगज्जनस्य शुश्राव नो यः श्रुतवान्न तस्थौ ।
तूष्णीं हरिः कृष्ण इति प्रतीतो द्विजं सुदामानमिवेक्षमाणः ॥२९॥

न कोपहेतावपि कोपकारी न शर्महेतावपि शर्मकारी ।
नारीविलासाहितचित्तबन्धः केनाऽनुचक्रे स तु माधवेशः ॥

औदम्बरज्ञातिषु लब्धजन्मा विद्यावतामग्रसरो महीयान् ।
सदाशिवो धर्मतनुः शिवोऽन्यो विद्यागुरुर्यस्य बभूव राज्ञः ॥

अबोधनध्वान्तनिकायहारी तथा निशान्तोदयमाप्तवान्यः ।
प्रभाकरोऽन्योऽवनिगोप्रचारो हारीणि कर्माणि च यस्य नित्यम् ॥

यस्योपदेशेन नराधिपस्य सप्ताङ्गराज्येन विवृद्धिरेव ।
यमाश्रयन्गुर्वनुगं महेन्द्रं तिरश्चकारावनिमण्डलेन्द्रः ॥ ३३ ॥

तपःकृशोऽप्यद्भुतरूपहारी शुक्लद्वितीयोदितवानिवेन्दुः ।
ददाह पापानि परन्तपोऽयं दग्धेन्धनोऽल्पोऽपि कृपीटयोनिः॥३४॥

वीतस्पृहोऽप्याप्तनिधिर्निधानो गुणोदयानामवनीवनीशः ।
यः प्रेमवान्भूभुजि यत्र नित्यं प्रसादयन्पत्तनमध्यवात्सीत् ॥

अथाभवन्मन्त्रगुरुर्नृपस्य मन्त्रागमज्ञो हरदत्तभट्टः ।
औदम्बरज्ञातिवरो गरीयान्परोपकारी नितरां सुशाक्तः ॥३६॥

शास्त्रान्तराभ्यासगृहीतविद्यः शास्त्राखिलाध्यापनलब्धकीर्त्तिः ।
यथा सुधर्माधिगतो महीयान्गुरुर्महाराजसमाधिवर्ती ॥३७॥

चतुर्भुजो मन्त्रिवरो नृपस्य ? पल्लीवलज्ञावभृत्रात्तजन्मा ।
गदाधरोऽन्यो भवति स्म मन्त्री तथापरोऽभूद्गुणनायकोऽपि ॥
एतैरमात्यैर्नृपकर्मदक्षैर्नराधिपो माधवसिंहवर्मा ।
चकार राज्यं खलु सत्वयुक्तः सत्वानुकम्पारतिधर्मशाली ॥३६॥

को धर्मशाली न बभूव भूमौ जनो महीं शास्तरि माधवेशे ।
कः सत्यवादी न बभूव सत्यारते नते माधवनामनीशे॥४०॥
राजा कदाचिद्भुजदण्डशाली जिघृक्षुरासीदथ दाक्षिणात्यैः।
संरक्षितं दुर्गमधृष्यमेव नाम्ना रणस्तम्भमरीन्विजित्य ॥४१॥
ततो रिपून्प्रत्यचलत्ससैन्यः स्थितो रथे शस्त्रधरस्तरस्वी ।
महीपतिर्माधवसिंहवर्मा सवर्मदेहो जयसिंहजन्मा ॥४२॥
चलत्तुरङ्गोत्खनितोच्चरेणुभरैर्भृताः सर्वदिशो बभूवुः ।
अद्वैतभावा जनता तदानीमबोधि तं ब्रह्मणि सत्यमेव ॥४३॥
चञ्चद्रथालीप्रधिखातधूलीविलीनचञ्चत्पटलैरलीनैः ।
आच्छादितार्कैर्दिवसोऽपि दोषा बभूव किं वाच्यमतःपरन्तु ॥
गजावलीभिश्चलतीभिरुर्वी द्यां प्रत्यमर्षादिव राजते स्म ।
माहेन्द्रचापोदितचञ्चलालीविभूषिताम्भोदघटावृतेव ॥४५॥
प्राप्तं रणस्तम्भमधीशमेनं तदीशितारः श्रुतवन्त आरात् ।
सन्नद्धभावं समुपेत्य सद्यो दुर्गाद्बहिर्योद्धुमथो बभूवुः ॥४६॥
तद्युद्धमासीदतिचित्रकारि शस्त्रैरनेकध्वनदग्नियन्त्रैः ।
युगान्तकालः किमसाविदानीं व्यतर्कि लोकैर्हृतधैर्यचित्तैः ॥४७॥
चिरं प्रसक्तेऽतिरणे यमाशाभटैर्महद्भिः किल संहरद्भिः ।
निन्ये क्षयं माधवसैन्यमुच्चैः पलायमानं परितो दिशासु ॥४८॥
पलायमानान्स्वभटानवेक्ष्य कुर्वन् स्मितं माधवसिंहवर्मा ।
इत्थं बभाषे वचनं सकोपः सङ्ग्राममूर्ध्नि प्रतिनन्दितारौ ॥४९॥

रेरे भटाः स्वाश्रयलालितां तां स्ववीरतां क्व प्रतिमुच्य याथ ।
स्वमाश्रितानां परिमोचनन्तु विगर्हितं धर्मधनैर्विशेषात् ॥५०॥
आलम्ब्य धैर्यं प्रविहाय भीतिं रणाङ्गणे स्थैर्यमुपेत्य वीराः ।
उत्पादयध्वं जननीष्वरीणामवीरसूत्वं धृतवीरशीलाः ॥५१॥
आश्वास्य तानित्थमुपात्तधैर्यमयुद्धयत द्वेषिभिरुच्चवीर्यैः ।
धरा शशङ्के प्रलयोऽद्य भावी संहर्त्तुमुत्के किमु माधवेशे ॥५२॥
जालैरिपूणां ज्वलदग्निकीलैः स माधवो माधव एव साक्षात् ।
ददाह सैन्यानि च रैपवीणि पलायमानान्यवशेषितानि ॥५३॥
कियन्ति धैर्यं प्रतिमुच्य सर्वं शरण्यमेनं पदयोः प्रणेमुः ।
स्वमर्पयन्ति प्रतिकूलभावं कुरुष्व रक्षामिति च ब्रुवन्ति ॥५४॥
तान्याबभाषे सदयो महीन्द्रो महीपतीनामधिशासितासौ ।
दयावतां नित्यमुदेति चित्ते जनेषु हि स्वे शरणागतेषु ॥५५॥
अहो यमाशाजनुषः प्रवीराः स्वदुर्गमेतद्धि निवेदयध्वम् ।
अस्मासु वीर्योपचितेषु नो चेद्बलादुपादानममुष्य कार्यम् ॥५६॥
श्रुत्वेति वाचं बलशालिनीन्ते निवेद्य तस्मै निजदुर्गमुच्चैः ।
सव्रीडमात्मानमथार्प्य तस्माज्जग्मुर्दिशं स्वां यमदिक्प्रवीराः ॥
अथाधिपः सोऽभवदुच्चतूर्यघोषप्रहृष्टाखिललोकमन्तः ।
दुर्गे रणस्तम्भ इति प्रतीते रणप्रतीतो निदधे पदं स्वम् ॥५८॥
चिरस्य तत्रोषितवान्ससैन्यः पुरं निजं सोत्सवसर्वलोकम् ।
स प्रत्यगाद्बन्दिविगीतकीर्तिः सतोरणं प्रोच्चलसत्पताकम् ॥५६॥

इत्याद्यनेकै रणकर्मभिः स्वैरनेकवारं महनीयकीर्तिः ।
जिगाय निष्कण्टकमेव पित्र्यं चकार राज्यं सुचिरं नरेन्द्रः ॥६०॥

पत्न्यां सतीधर्मयुजि स्वभर्त्तुः सुतावभूतामतुलप्रभावौ ।
पृथ्व्यग्रपूर्वः प्रथमः सुशीलः प्रतापसिंहस्त्वपरः प्रतापी ॥६१॥

ताभ्यां सुताभ्यामतुलप्रभाभ्यामधर्षणीयो नितराम्बभूव ।
स माधवेशोऽशनिशस्त्रपाणिर्द्विषद्भिराखण्डलतुल्यवीर्यः ॥६२॥

तावप्यभूतां पितृतोऽधिकज्ञौ विनीतियोगादतिनम्रवृत्ती ।
धर्मोऽयमेवात्मजवृत्तिकारी लोकद्वयोदीतशुभोपधायी ॥६३॥

पदं निधायाग्रसुते विनीते जगाम लोकान्तरमुच्चकीर्त्तिः ।
कर्मावदातं भुवि संविधाय महीपतिर्माधवसिंहवर्मा ॥६४॥

पृथ्व्यग्रसिंहः पितुरौर्ध्वदेहं चकार विध्युक्तविधिं विधिज्ञः ।
पुरोहिताज्ञावशवर्तिवृत्तिर्द्विषद्गजालीदलने नृसिंहः ॥६५॥

पितुः पदे पद्मदलोपमाक्षः समक्षमेवाखिलपण्डितानाम् ।
पट्टाभिषेकं त्वनुभूय भूयो विराजमानः स्थितवान्स्थितिज्ञः ॥६६॥

यस्मिन्महीं शासति भूमिपाले परे न पारं स्वभुवः समीयुः ।
धनानि धान्यानि धरा सुवन्ती तिरश्चकारामरराजभूमिम् ॥६७॥

सप्ताङ्गराज्येऽधिसुखान्यभूवन्विद्वज्जनानां गुणवृद्धिरासीत् ।
समृद्धिरासीदतुला धरायां स्वर्लोकलोकैरपि सम्मतायाम् ॥६८॥

अधिधरणि नरेन्द्रः सप्तवर्षाणि राज्यं
विधिवदखिलमुर्वीमण्डलेन्द्रः प्रतापी ।

अनुजमधिकवीर्यं स्वे पदे सन्निधाय
स्वरमरजनपूज्यो लोकमध्यारुरोह ॥६९॥

आसीद्यस्य पराजितामरगुरुः श्रीलक्ष्मणाख्यः पिता
माता यस्य सती सतीव्रतपरा यस्याग्रजौ भ्रातरौ ।
स्तःस्वन्ताघिपदाद्यजन्तजयतिप्राग्वर्तिरामाभिधौ
रामस्यास्य कृतौ कवेरिह गतः सर्गो रसक्ष्मासमः ॥७०॥

इति श्रीपर्वणीकरोपाह्वश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भ-
सम्भव श्रीसीतारामकविविरचिते जयवंश-
महाकाव्ये षोडशः सर्गः ॥

सप्तदशः सर्गः

विद्याम्भोनिधिरः प्रतापसिंहः
सम्बद्धाञ्जलनिधिभिर्महीं समन्तात् ।
शत्रूणामथ दलनेऽधिकं पटीयान्
भर्ता स्वामिव वनितां पपौ सवीर्यः ॥१॥

आनन्दं ददखिलाय शर्मकारी
हारीहो हरिणविलोचनामनस्सु ।
सन्तन्वन्नतुलमनङ्गमम्बुजाक्षः
संरेजे नृप उपमाविहीन एषः ॥२॥

सौहार्दं सकलजनेषु तस्य जज्ञे
प्रत्येकं धरणिपतेर्नयोपचेतुः ।

तादृक्त्वं प्रति जनमानसेषु बुद्धिः
प्रीतोऽस्यास्म्यहमिति यादृशा बभूवुः ॥३॥

कीर्त्यालीविमलभमौक्तिकौघहारै-
र्भूपस्योन्नतगुणगुम्फितैरनर्घ्यैः।
कण्ठे स्वे खलु निहितैर्हरिद्रमण्यो
हृष्यन्त्यो बहुकृतकृत्यतामवापुः ॥४॥

मित्राम्भोजनिजजनितप्रमोदभारो
भूभर्त्तू रिपुनृपपङ्कशोषकारी।
सर्वस्मिञ्जगति करप्रचारहारी
प्रभ्राजे नवमुदितः प्रतापसूर्यः ॥५॥

कीर्त्तीस्ता गुणनिचयांश्च भूमिभर्त्तुः
पश्यन्सादरमुपकर्णयंश्च दृग्भिः।
मत्तोऽन्यः समजनि भूमिलोकभर्त्ता
बद्धुं मां गुणनिचयांश्चकार दीर्घान् ॥६॥

शङ्कित्वेत्युरगपतिः शुचा महत्या
शैत्यं किं समलभत प्रकम्पते स्म।
तेनेवावनिरपि? प्रवृत्तकम्पा
संजज्ञे भवति च सा कदा कदापि ॥७॥

दातारो भुवि बहवो ददत्यपीमे
नेदृक्षोऽजनि जनिताऽपि नाधुनास्ते।

तेनासावनुपम एव भूमिलोके
भूमीन्द्रः खलु निरमायि वेधसाऽपि ॥८॥

सम्पत्तौ विहितपराजयो महेन्द्रो
धैर्येऽसावजनि तपस्सुतो नरेन्द्रः ।
विक्रान्तौ स्म भवति शन्तनोस्तनूज-
स्तेजोभिः समजनि हेलिरेव भीमैः ॥९॥

सम्पत्तिर्धरणिपतेः परोपकृत्या
यौन्नत्यं बुधनतये बभूव यस्य ।
धर्मायाजनि परमस्य कर्म सर्वं
शर्वान्तःकरणमुदे जपो गरीयान् ॥१०॥

वन्दारुर्विबुधजने सदा शरारुः
शत्रूणां सुकृतकृतां वरो नृनाथः ।
सस्याढ्यामकृत महीं महीमहेन्द्रः
पर्जन्यस्नपितवतीं यथेच्छमेव ॥११॥

भूपानां निजसमविक्रमाश्रयाणां
ताः कन्याः परिणयति स्म भूमहेन्द्रः ।
यद्रूपानुपमतया स्मराङ्गनाया-
श्चेतस्तो व्यगमदरं स्वरूपगर्वः ॥१२॥

यासां तत्प्रथममवेक्ष्य वक्त्रचन्द्रं
चन्द्रोऽपि द्यवि समधिष्ठितोऽपि नित्यम् ।

कोहे किं मयि ? कृतशोकमानसोऽभू-
त्पूर्णस्सन्ध्यरुगनूदितः प्रतीमः ॥१३॥

ता नित्यं स च समये धरामरेन्द्रः
क्रीडाभिः खलु रमयन्मनोभवस्य ।
साफल्यं जनुरनयच्छिवेन कोपाद्
दग्धस्याप्यभिनवनिर्मितस्य नूनम् ॥१४॥

कामोऽर्थोऽप्यभवदमुष्य धर्मतुल्यः
सम्बाधं न हि लभते स्म तेन धर्मः ।
धर्मेणागमदितरोऽपि नैव बाधं
द्वाभ्यां नागमदितरोऽपि बाधमर्थः ॥१५॥

मन्त्र्यासीत्कुशलिपुरःस्थितो बहूरा
भूभर्त्तुर्नृपकुशलानि कर्त्तुकामः ।
दानीयो बहुनिजनामनाम चक्रे
सार्थक्यादतिमधुरं जगत्प्रसिद्धः ॥१६॥

मन्त्र्यन्योऽवनिपतिकस्य राजचन्द्रो
भूभारे क्षमतमशेषसद्द्वितीयः ।
धर्मात्मा गुणिजनमानतत्परान्त-
र्लोकानां हितकरणेषु सर्वदोत्कः ॥१७॥

दाधीचे महति कुले प्रशंसनीये
जातः सन्गुणवति माधवाभिधानः ।

भ्रातृव्योऽस्य च शिवविष्णुनामनामा
श्रेयांसाववनिपमन्त्रिणावभूताम् ॥१८॥

अन्येऽपि द्युपतिगुरुक्षमाः क्षमाया
भूभर्त्तुः परिणतमन्त्रिणो बभूवुः ।
तानास्थायसधरणीं धरामरेशो
नीतिज्ञश्चिरमवति स्म सम्यगृद्धाम् ॥१९॥

भूपालेऽवनिमवति प्रतापसिंहे
सौख्याय प्रददुरहो जनाः समस्ताः ।
चित्तं स्वं तत इव जानते स्म नैते
यात्यस्तं रविरुदयश्च कुत्र चेति ॥२०॥

के नासन्गुणगणनार्जनोत्कचित्ताः
के नासन्धनिकपुरस्सरा नरेन्द्राः ।
सत्यस्मिन्नवनिरतीव रम्यमूर्त्तिः
सञ्जज्ञे सधववधूरिवाम्बुजाक्षी ॥२१॥

वाणिज्यं विपणिगता वणिक्पुमांसो
धर्मज्ञा विनयमथोपचेतुकामाः ।
सूदर्कं सफलतरं पुरो जनेषु
द्रव्याणां विदधुरुदारमानसेषु ॥२२॥

निस्स्वत्त्वं समुपलभेम कुत्रचिद्वा
पश्यन्तोऽधिधरणि सर्वतो न केऽपि

आयुस्तद्विरहशुचे च तस्य लब्ध्यै
विप्रेभ्योऽनिशमददुर्धनानि लोकाः ॥२३॥

पात्रेभ्यो बहुभरणं यथाम्बुवद्भ्यः
पाथांसि क्षणमध एव निष्पतन्ति।
लोकेभ्योऽप्यतिभरणान्युपेयिवद्भ्यः
पात्रेषु क्षमिषु वसूनि निष्प्रपेतुः ॥२४॥

शोकः कः क्व वसतिकास्य जातिरास्ते
किं वृद्धः किमु तरुणोऽथवा शिशुः किम।
पक्षी वा किमु पशुरेष मानवो वा
सन्दिग्धाजनि जनतेति शास्त्रवाक्ये ॥२५॥

भूभर्त्ता स च परदेशवासिनोऽपि
स्वीयान्नॄन्यादि कुरुते स्म विस्मयः सन्।
स्वीयांस्तत्किमपरदेशवासकर्तॄन्
किं कुर्यात्कुत इति तर्कयामि चित्ते ॥२६॥

दण्ड्यान्भूपतिरिह दण्डयेदवश्यं
तेभ्योऽन्यानतिदययाऽनुपालयेच्च।
शास्त्राज्ञामिति स च माधवेशसूनुः
स्वीचक्रे विगतभयो भयानकोऽरेः ॥२७॥

संमेने गणपतिपूर्वकान्कवीशान्
भूपालः स्वयमपि काव्यकर्मदक्षः।

काव्यानां श्रवणविधेर्व्यतीतकालः
सञ्जज्ञे कविषु समर्पिताधिलक्ष्मीः ॥२८॥

पूर्वेषां सगुणगुरून्सपौत्ररूपान्
सम्मेनेऽधिकमवनीपतिः पुरस्तात् ।
विध्वस्ताखिलदुरितौघशुद्धबुद्धीन्
निष्कामान्मनसि तु पौण्डरीकमुख्यान् ॥२९॥

योऽमात्यः प्रथममभूत्पितामहीयः
सर्वज्ञो व्रज इति पूर्वनाथशर्मा ।
तत्सूनुर्जगदिति पूर्वनाथनामा
व्यासोऽन्योऽजनि स पुराणवाचनेषु ॥३०॥

पौराणे न्यधित तमासने महीन्द्रः
पौराणश्रवणकृते कृती कृतज्ञः ।
पौराणानि हि वचनानि यस्य सम्यक्-
शृण्वन्तो द्रवितहृदो न के बभूवुः ॥३१॥

यागानप्यकृत कृती धरामरेन्द्रः
संशुध्यै निजवपुषोऽपि निर्मलस्य ।
दाक्षिण्यैरधिकधनान्धनी द्विजेन्द्रै-
र्वैदुष्योज्झितसुरराजपूज्यवर्गैः ॥३२॥

राज्ञी काचिदथ वसुन्धरामहेन्द्राद्
दध्रे श्यामलमतिगर्भमर्भकेच्छोः ।

इन्द्राद्यष्टमितदिगीशभागपुष्टं
सर्वेषामतिशयसम्मुदे निदानम् ॥३३॥
सा राज्ञी समय उपस्थिते व्यसूत
प्रोत्तुङ्गस्तनभरसन्नताङ्गरम्या ।
पुत्रन्तं य इनकरौजसां निकामं
तेजोभिः खलु सहसा तिरश्चकार ॥३४॥
राजानं परिषदि संस्थितं स्थितिज्ञः
सामोदं स्वमनसि सौनवीं जनिं यः ।
सम्प्रोचेऽलभत स कञ्चुकी नरेन्द्राद्
गण्यान्यद्वसु वसुमत्यधीशनेतुः ॥३५॥
गत्वान्तःपुरमथ भूमिलोकभर्त्ता
भर्ता स्वं प्रति धरणीभुजामशेषम् ।
पश्यन्सोऽजनि सुतवक्त्रचन्द्रलक्ष्मीं
लक्ष्मीवानतिकृतकृत्यभावलम्भी ॥३६॥
संश्चक्रे जगदिति पूर्वसिंहनाम्ना
पुत्रं स्वं नरपतिरद्भुतप्रबोधः ।
सिंहत्वं जगति यतोऽस्य भावि नूनं
तेनैवाभवदभयस्य नाम सार्थम् ॥३७॥
तत्क्रीडेक्षणजविनोदनन्दितान्तः
कालोऽतिक्रममगमत्कियान्नृपस्य ।

नाज्ञासीत्सुखवशतः कियानतीतः
क्ष्माशक्रः कृतविकृतिर्द्विषन्मनस्सु ॥३८॥

दुर्गानाथ इति जगत्प्रतीतनामा
मन्त्रज्ञो विबुधवरोऽथ मैथिलोऽगात् ।
यो नित्यं खलु मिथिलां पुरीं स्वकीयां
वागीशो दिवमिव तामलङ्करोति ॥३९॥

विध्युक्तं मुनिसममेनमर्चयित्वा
सच्चक्रे मधुरं वचोभिरुन्नतेच्छः ।
भूपालो रिपुपृतनाभिमानहर्त्ता
कर्त्ता शं शरणमितस्य सर्वदा यः ॥४०॥

दीनानामतिशयमूढचेतनानां
शर्मेच्छा यदि महतां महीयसी स्यात् ।
नो चित्रं विधिरपि यान्ससर्ज लोके
मूढानामपि भववार्धितारणाय ॥४१॥

सन्तो ये जगति तदीयमस्ति नित्यं
तद्राजद्व्रतमुत यत्परोपकारः ।
प्राणानामपि हरणं तृणाय यस्मा-
न्मन्यन्ते मितवचनाः परोपकृत्यै ॥४२॥

देवानां भवति यदोपकर्तुमिच्छा
सद्वारैव विदधते दयालवस्ते ।

भानुर्यन्निजकिरणैर्हिमोपतापं
लोकानां हरति हिमागमे पटीयान् ॥४३॥
सन्तापानपनुदतां भवान्मदीयान्
न प्रार्थ्यस्त्विति भवतामिहागमस्य ।
अन्यत्किं फलममृतांशुरश्मिचारे
घर्मोद्भूतविततताप‌नुत्तिरेव ॥४४॥
लक्ष्म्यन्धा वयमिति चक्षुषां पटुत्वं
सन्धातुं कृतनिजदर्शनाञ्जनेन ।
आयाता मम निकटे विशेषविज्ञाः ।
स्वाभाव्यात्कृपणदयालवः स्थ यस्मात् ॥४५॥
इत्येवं वचनममुष्य भूमिभर्त्तुः
श्रुत्वासौ मुनिरिति वाक्यविज्जगादी ।
सन्तन्वन्मुदमतुलां सभासदन्तः
सोऽनूचे प्रतिनिनदच्छलादिवैनम् ॥४६॥
भूभर्त्तः ! पदमधिगत्य ऋद्धमेत-
न्माद्यत्सेऽप्यभिमितिमात्मनो न धत्से ।
नो चित्रं कुलपुरुषान् परम्परातः
सोऽयं न त्यजति जहातु तत्कथं त्वाम् ॥४७॥
राज्यानि प्रतिपदमीक्षितानि राज्ञा-
मस्माभिः कुतुकमकारि नैव तेषु ।

राज्यं ते प्रसभमिदं मनोज्ञशोभं
शोभाभिर्नयति न उर्व्यधीश भूरि ॥४८॥

राजन्वत्तव नगरं गरीय एतद्
दृष्ट्वाऽन्यद्भुवनपराजवद्गरीयः ।
त्वय्येव प्रतिपदमादधाति लक्ष्मीः
प्रेमाणं हरिगुणसंश्रिते नरेन्द्र ! ॥४९॥

धाराभिर्वहति मुदं जनस्य चित्ते
जीमूतो नृप परमम्बुदागमेषु ।
त्वं नित्यं वहसि वसूनि भूरि भूरि
सर्वेषां मुदमतुलां सदैव देव ! ॥५०॥

उक्त्वेत्थं वचनपटुर्वचो लघीयो
जोषं सोऽवनिविबुधः स्थितो बभूव ।
सन्तो हि प्रकृतिवशेन भाषिणोऽल्पं
जायन्ते परवचनश्रवोत्कचित्ताः ॥५१॥

ऊचे भूवलयगतोऽपरस्सुधांशु-
स्तं विप्रं खलु विहिताञ्जलिर्नरेन्द्रः ।
राजानो जयकुलजाः सदैव सत्सु
स्वाभाव्याद्विनयनता भवन्ति पुंसु ॥५२॥

तां विद्यां वितर कृपानिधे हि मह्यं
मन्त्रज्ञस्त्वमसि भवादृशो न लोके ।

सिद्धिः स्याद्दृढतरमात्मनः पदं स्या-
दस्मासु स्थिरमतिजापतोऽल्पकालम् ॥५३॥

श्रुत्वेत्थं वचनमधीशितुर्विनेतुः
सत्कालेऽप्युपदिशति स्म मन्त्रमस्मै ।
भूभर्त्रे निखिलमहोदयर्द्धिहेतुं
पात्राय प्रतिपदसन्नताय सोऽयम् ॥५४॥

भूमीशो दशशतसंख्यपीतमुद्रा
ग्रामाणां दशकमिभाश्वयानपूर्वम् ।
यानञ्चाभरणममूल्यमित्यमुष्मै
कार्पण्यं बत निगदन्न्यवेदयत्सः ॥५५॥

तत्सेवापटुमनसामुना नृभर्त्रा
साफल्यं निजजनुषः समार्जि नूनम् ।
गौरव्या विधिकृतया सपर्ययालं
को न स्यात्सफलजनिः सभावभावः ॥५६॥

पुत्रस्याध्ययनविधिं विधातुकामो
भूमीन्द्रोऽध्यकृत सलक्ष्मणाभिधानम् ।
वैदुष्यावधिममलोदचित्तवृत्तिं
यो जज्ञे जितबुधमाधवस्य वंशे ॥५७॥

नैस्पृह्यं स्वरधिपसम्पदोऽपि लाभे
यस्याध्यापनकुशलत्वमीक्षमाणः ।

विद्वांसोऽजनिषत के न पादनम्रा
नाधीता विबुधवराश्च के बभूवुः ॥५८॥

आगत्यानवरतमेष वाहनस्थः
सूनुं तं जगदिति पूर्वसिंहसंज्ञम् ।
भूभर्त्तुः किल समपाठयत्पटीयान्
सप्रज्ञं धृतविनयं मनोज्ञशीलम् ॥५९॥

सोऽयं भूपतितनयोऽचिरेण विद्वा-
नत्यन्तं समजनि सम्पठन्गुरुभ्यः ।
प्रज्ञावत्स्विति न हि विस्मयो विचार्यो
धानुष्कादथ समशिक्षतास्त्रविद्याम् ॥६०॥

सिंध्योऽभूद्यमदिशिजः पदं जिघृक्षुः
युद्धेच्छाकुलितमनाः समाजगाम ।
सेनाभिस्सह विकटाभिरुन्नतेच्छो
नाजानादिव नृपतेः स वीर्यमुच्चैः ॥६१॥

खड्गांसाः परिधृतचर्मपृष्ठभागाः
योद्धारो रणविधिचातुरीप्रसिद्धाः ।
स्वे पाणौ धृतधनुषो गुणाधिरूढं
तूणीराङ्कितसमपार्श्वकाश्च यत्र ॥६२॥

केचिद्दन्तिषु रुरुहुर्भटास्सुवीर्याः
केचिद्वाजिषु धृतशस्त्रपाणयश्च ।

केचिद्वा रथमधिरुह्य यत्र तस्थुः
केचिद्वाजनिषत पत्तयस्सशस्त्राः ॥६३॥

कुर्वन्तः प्रतिपदमेणराजनादं
योद्धारो रिपुगणनैतिकापिनो न ?।
सम्भ्राम्यत्प्रधिरथखातरेणुभारैः
व्यापिन्यां रणभुवि तत्र कोऽभयस्स्यात् ॥६४॥

सन्नद्धानिति समवेदय सिन्ध्ययोधान्
स्वान्योधानपि समनाहयद्रणेषु ।
भूमीन्द्रः सबलवरः प्रतापसिंहः
प्राप्तेऽरौ भवति हि कस्य सत्त्युपेक्षा ॥६५॥

योद्धारोऽजनिषत दोर्लताभिरामा
दुर्गेशाः शिव इह माधवो बहूराः ।
अन्येऽपि प्रतिपदसिंहनादकाराः
सन्नद्धा रिपुगणयुद्धकाम्ययैव ॥६६॥

इन्द्रार्वप्रतिभटवाजिवाह्यमाने
संस्थस्सन्महति रथे वरूथयुक्ते ।
भूभर्त्ता करधृतहेतिरुच्चनादः
शत्रूणामभिमुखमुच्चचाल वीरः ॥६७॥

जन्यं भीममजनि सेनयोरमर्याद्
देवानामपि कृतरोमहर्षमारात् ।

बाणैर्वा ज्वलितकुपीटयोनियन्त्रैः
स्वध्वानस्फुटितजनश्रवोभिरुच्चैः ॥६८॥
अन्योन्यं बहुलमभूत्तयो बलानां
नद्योऽसृक्जलपरिपूरिताः प्रसस्रुः ।
संसस्नुः पपुरुदकानि संविजह्रुः
तीरस्था यमपुरजाङ्गनाश्च तासु ॥६६॥
सिन्ध्योऽपि प्रकुपितचञ्चलाधरोष्ठो
भूभर्त्रा जयनगरेश्वरेण तेन ।
आरेभे युधमतिशायिनीं तरस्वी
वीराणां क इह नृणां भवेद्विलम्बः ॥७०॥
भो ! राजन् किमिह यमाय दित्ससि त्वं
स्वं देहं बलिमिव मूढता तवेयम् ।
यद्वामे विदितमथार्कवंशजस्त्वं
सौरायार्पितबलिता तवोचितैव ॥७१॥
श्रुत्वेत्थं वच इति सैन्ध्यमुत्प्रतापो
नैवोचे सपदि जघान वक्षसीमम् ।
बाणेनापरदलनक्षमेण सोऽपि
क्ष्मापालः शिरसि रणाङ्गणप्रवीरः ॥७२॥
स्वैर्भल्लैरथ तुरगालिसारथीनां
कीनाशातिथिकरणात्ससाध्वसेन ।

सिन्ध्येनापसृतमितो रणाङ्गणान्तात्
सोऽद्यापि प्रतिभटतामुपैति नैव ॥७३॥

इत्याद्यनेकै रणकर्मभिः स्वै-
स्तांस्तान् रिपूनुच्चबलान्बलीयान् ।
निवार्य राज्यं विदधे पितॄणां
प्रतापसिंहो युवराजसूनुः ॥७४॥

चिरं भुक्त्वा राज्यं धनदमदसन्दोहदलनं
यशोवासो वासीकृततमदिशो ज्ञानसघनः ।
घनक्रीडां कृत्वा विबुधजनवर्गेषु सततं
धनाम्भोभिः सोऽयं स्वरतिथिरभूद्भूपरिवृढः ॥७५॥

आसीद्यस्य पराजितामरगुरुः श्रीलक्ष्मणाख्यः पिता
माता यस्य सती सतीव्रतपरा यस्याग्रजौ भ्रातरौ ।
स्तःस्वन्ताधिपदाद्यजन्तजयतिप्राग्वर्तिरामाभिधौ
रामस्यास्य कृतौ कवेरिह गतः सर्गोऽद्रिगोत्रासमः ॥७६॥

इति श्रीपर्वणीकरोपाह्वश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भ-
सम्भवश्रीसीतारामकविविरचिते जयवंश-
महाकाव्ये सप्तदशः सर्गः ॥१७॥

———

अष्टादशः सर्गः

पित्र्यं राज्यं बन्धुराजीवसूर्यो धौरेयाणामग्रणीरग्रगण्यैः ।
वृद्धामात्यैः स्वानुकूलोऽनुकूलै राज्ञस्सूनुः पालयामास सोऽयम् ॥१॥

धीरो वीरो नीतिनीतः प्रमोदी मोदीकुर्वल्लोकमालोकगीतः ।
वीतः पापैः सम्मितः स्वर्गभर्त्रा पूतः पुण्यैः पौरकान्तः शशास ॥२॥

सन्ति क्षोणीमण्डले यद्यपीशा बंहीयांसो रक्षणे शक्तिमन्तः ।
तेनौपम्यं नूतनेनेश्वरेण प्राप्तुं को वा भूमिपो योग्य आसीत् ॥३॥

यस्यौजोभिः सम्प्रवृत्तैर्जगत्यां मन्दाभासो भूमिपाला बभूवुः ।
हेलेरुस्राप्रस्थितस्यान्तकीयां काष्ठां हैमे नेहसीवाप्रकृष्टाः ॥४॥

चक्रेऽनङ्गं काममेवैकमीशो दग्ध्वा नेत्रज्वालयामर्षपूर्णः ।
तूर्णं चक्रे स्वौजसा नूतनेशोऽनङ्गान्भूरीन्विद्विषो लीलयैषः ॥५॥

शम्भुस्तेने त्वन्धकासून्वियुक्तान्युक्तं नैतद्दृश्यते युक्तमेतत् ।
अन्धान्सर्वान्नूतनो भूमिपालो ज्ञानं दत्त्वा निर्ममे दिव्यदृष्टीन् ॥६॥

वन्हिः सर्वं भस्मसात्कर्त्तुमीष्टे दाह्यादाह्यज्ञानशून्यः प्रदीप्तः ।
भूमीन्द्रौजोवन्हिरुद्भूतहेतिस्तानेवायं ये तु न स्वानुकूलाः ॥७॥

ऊर्ध्वज्वालः केवलं जातवेदाः क्षिप्तं गृह्णात्येव हव्यं कदाचित् ।
सर्वज्वालो भूमिपस्य प्रतापः स्वस्माद्गृह्णात्येव विद्विड्ढवींषि ॥८॥

कर्मोदारं शीलमौदार्ययुक्तं धर्मे बुद्धिर्भूतजातेऽनुकम्पा ।
कम्पोद्भावो वैरिचन्द्राननानां नूत्नाधीशोऽभूदिदं स्वप्रकृत्या ॥९॥

विद्वद्गोष्ठीसङ्गलब्धप्रबोधो बुद्धोऽनङ्गौजःपरासे परासः ।
दक्षोऽत्यन्तं वाग्विलासप्रबन्धे शोभां दध्रेऽतीतसादृश्यवार्तः ॥१०॥
पृथ्वीपालो भूमिभारस्य धर्ता हर्त्तारीणां भूमिलोकस्य भर्त्ता ।
नेता राज्ञां पापिनां दण्डदाता धाता बन्धोः कांक्षितानां विधाता ॥११॥
कीर्त्तिर्यस्य क्षोणिपालस्य साध्वी माध्वीकाभैः सद्गुणैरेव जाता ।
त्रैलोक्ये या सम्भ्रमन्ती सखेदा क्षीरोदाब्धेस्तीरमासाद्य वृत्ता ॥१२॥
मन्दाकिन्याः सैकते दैवकान्तागीता कीर्त्तिर्यस्य भूभर्त्तुरासीत् ।
तेनैवेयं दुग्धतुल्याम्बुधारा दुग्धभ्रान्तिं द्रष्टृचेतस्सु धत्ते ॥१३॥
शुद्धस्वान्ता कीर्तिशैलूषकान्ता नेयं भ्राम्यच्चन्द्रमोमण्डलीया ।
नाट्यं धृत्या कुर्वती व्योमरङ्गे लोकस्वान्तं रञ्जयामास नित्यम् ॥
कीर्त्तिं यस्य क्ष्मापतेर्दीर्घपूर्णामाश्रित्येवानन्तशय्योपरिष्टात् ।
शिश्ये विष्णुस्तेन सम्पर्कजन्यो वार्धौ शेषे चाभवत्पाण्डिमैव ॥१५॥
मान्यो राज्ञां कीर्त्तितः सर्वलोकैर्भोगानुच्चैर्भोजयन्भोगिलोकान् ।
नाकाधीशेऽप्यस्पृहो यक्षराजे सोऽयं भूमीमण्डलेशो बभूव ॥१६॥
स्वर्गे लोके गोत्रभिद्भूमिलोके सोऽयं राजा भोगिराजस्त्वधस्तात् ।
एषामासीद्राज्यमत्यन्ततुल्यं त्रैलोक्ये निश्शत्रुजाते सजाते ॥१७॥
आसीदिन्द्रः गोत्रभेत्ता सशोषः सागेभ्योऽभूच्छिद्रभागः कृतेभ्यः ।
सोऽयं राजा गोत्रभेत्ताऽपि नासीत्सर्वेभ्यः प्राग्यस्य निर्माणमासीत् ॥
कृत्वा कृत्यान्युत्तमान्येव राजा स्वस्माद्वक्त्रान्नो कृतित्वं स्वमूचे ।
अन्यैरुक्तं संसदन्तर्निविष्टैः शृण्वन्ह्रीणः सन्नभून्नम्रमूर्द्धा ॥१९॥

नाज्ञाशक्तिर्यस्य भूमीपतीनां श्रेष्ठस्यासीत्कस्य मूर्द्धोपविष्टा।
तत्राप्यास्ते केवलं न स्म तूष्णीं सिद्धिं प्राप्तसद्य एव प्रवृद्धा ॥२०॥

यस्याभूवन्मन्त्रिणो मन्त्रदक्षाः कौशालीयश्चामृता एष नामा ।
मानश्चान्यो रैवलो मोहनाख्यो वृद्धाः केचित्पैतृका एव सन्तः ॥२१॥

माधोराजो लक्ष्मणो लालनामा भट्टाचार्यः कीर्त्तनाथोऽम्बदत्तः।
गोविन्दोऽन्यो लालजिह्वा पुरोधा एते राज्ञो गौरवं स्थानमापुः॥

दत्वा दीक्षां भूभुजे सर्व एते मानं राज्ञो लेभिरे तुल्यमेव ।
तेष्वप्यासील्लक्ष्मणो वेदलक्ष्मा भूमीपालप्रेमभावाश्रयोऽसौ ॥२३॥

राज्ञोऽप्यासन्भूभुजो यस्य वध्व्यः कौमारी सा योधराजात्मजान्या।
तौवर्यन्या सा गुलाबी कुमारी वैजिन्यन्या श्यामिकान्या युवत्यः॥

रूपोदारा धर्मशीलैजनाद्या कौमारी सा भर्तृचेतःप्रियासीत्।
देवी दैवैः पूजिता पूज्यपादा पत्युः पादाम्भोजसेवापरैका॥२५॥

अन्या आसन्भोगपत्न्यस्त्वनेकाः लावण्याम्भःपूरसम्मग्नदेहाः।
राज्ञः प्रेम्णा मन्यमानाः स्वतां स्वे स्वैरापूर्णाः पूर्णकामा नरेन्द्रात्॥

वेश्यावेशालङ्कृतिप्राप्तशोभा लास्योत्सेकैर्मोहयित्री जनानाम्।
गानैः स्वीयैः कोकिलास्यापिजेत्री गौरी राज्ञः स्नेहपात्रं बभूव॥२७॥

कर्पूरान्या विभ्रमालापयोगैः सर्वांल्लोकान्मोहयन्ती वहन्ती।
राज्ञो हर्षं हृष्टचित्ता सदैव प्रत्याचख्यौ लोककान्ताः समस्ताः॥२८॥

आभिः स्त्रीभिस्संविजह्रे मनोज्ञं क्रीडाभिस्सन्नन्दयन्मेदिनीन्द्रः।
आरामेषु प्रेमसम्भ्रान्तचित्तो दुर्गे दुर्गानारसिंहाभिधाने॥२९॥

आरामे स्वे सद्मनः षड्भिरुच्चैः ऋद्धैः सिद्धैरार्त्तवैराश्रितेतः ।
भूमीपालो वल्लभाभिः स्विकाभिः कर्त्तुं क्रीडामैच्छदुल्लासिताङ्गः ॥३०॥

वसन्तवर्णनम्

प्राञ्चि त्यक्त्वा पल्लवानि त्तमाजा नूत्नान्यादुः कोमलानीति सर्वे ।
राज्ञो वध्वः स्वैः करैस्तारतम्यं यास्यन्त्येषां लोकयन्त्यो विहारे ॥३१॥

आम्रीशोभा शोभयामास भूमिं वामै रम्यैः काननीयामजस्रम् ।
माद्यत्कूजत्कोकिलालापदम्भाद्राजाह्वानं कुर्वती वै हि राजन् ॥३२॥

आम्रे सूने पानमत्तां षडङ्घ्रिद्वन्द्वं केलिं कर्त्तुकामं मिथोऽभूत् ।
अन्यः कश्चिद्धर्षितुं तां द्विरेफीमुद्यञ्ज्ञानोऽप्यग्रहीन्न द्विरेफः ॥३३॥

याशोकीया शोणसूनोपशोभा जज्ञे तस्मिन्माधवर्त्तौ प्रवृत्ते ।
सेयं रेजे भीषयन्तीव पान्थान्कामन्युग्रान्स्वादिराङ्गारशङ्कान् ॥३४॥

गन्धोदग्रा सूननम्रा विनम्रा वल्ली भ्रेजे कानने बाकुली सा ।
मुग्धा कान्तेवात्तकम्पा समीराद्रामां शोभां सन्दधाना नवीनाम् ॥३५॥

ग्रीष्मवर्णनम्

काप्यारामे मल्लिका मोदमानाः सूनव्यजात्सस्मिता व्यक्तदन्ताः ।
गायन्त्योऽभुः षट्पदस्वानदम्भान्नृत्यद्वेश्यातुल्यमात्ताभिनयाः ॥

शैरीषीषु व्यश्नुवाना सुसर्वा धूलीष्वशाः कीररोमोपमासु ।
कीराङ्गाभा जज्ञिरे सार्थसंज्ञाः ख्याता लोके हारिता इत्यभिख्याः ॥

तापोऽह्नश्च प्राप्नुतस्माधिवृद्धिं चेलुः स्वेदाम्भोलवा मौक्तिकाभाः ।
जग्मुर्धाराः पाथसां वल्लभत्वं वात्या वाति स्मापि यूनामनूना ॥३८॥

स्वेदाम्बूनां विप्रुषः कामिनीनां वक्षोजेषु भ्रेजुराशुभ्रवर्णाः ।
उत्सूत्राः किं भग्नहारावलीनां सस्वेदाङ्गे श्लिष्टवत्यो विभक्ताः ॥३९॥
धारावेश्मान्याश्रिताश्चान्दनीयैः पङ्कैर्लिप्तास्तालवृन्तप्रवृत्तैः ।
वातैः शीतैर्वीजिताः पानकीयैः पानैर्ग्रीष्मं नाविदन्केऽति लोकाः ॥४०॥

वर्षावर्णनम्

जीमूताली कज्जलाभा जलाभा सौदामिन्या लब्धकान्तिस्समन्तात् ।
चापेनैन्द्रेणानुयातानुपाते वर्षाकाले व्याप रोदोऽन्तराणि ॥४१॥
गर्जध्वाना मानिनीनां घनीया मानच्छेदे हेतवस्सम्बभूवुः ।
सन्तः कृत्वा साधु साधूपदेशं शर्मात्यन्तं कर्त्तुमिच्छन्ति युक्तम् ॥४२॥

युग्मम्

वर्षत्स्वम्भोदेषु नीराणि गर्ज्जी घोषै रोदोमध्यमास्फोटयत्सु ।
चञ्चद्विद्युत्केषु भीमेषु कामे स्थित्वा याने कामयाने युवत्यः ॥४३॥
गेहान्यापुर्वल्लभीयानि सद्यो निर्भीका यन्नैतदस्त्यद्भुतं नः ।
हन्तुं दर्पं दर्पकीयं जवेन त्रैलोक्यस्योद्भूतमुच्छक्नुयात्कः ॥४४॥
कादम्बोत्थै रेणुभिर्वायुधूतैः शोणैर्व्योमन्युच्चवैतानशोभा ।
तेनेऽटव्यां भूमिभर्त्ता विहारं सोऽयं कर्त्ता कामिनीभिस्सहेति ॥४५॥

शरद्वर्णनम्

मुक्तं मेघैर्व्योम रेजे विरेजे चान्द्री शोभा शृङ्खलारोधमुक्ता ।
मुक्तावृन्दानीव भाति प्रकाशी छायामार्गः पाथसां स्वच्छतासीत् ॥
रेजे चन्द्रो राजचन्द्रश्च सोऽयं कुर्वंल्लोकानन्दमानन्दवृत्तः ।
अच्छोऽनच्छान्स्वच्छयन्पादचारैः चारैः सर्वान्बोधयन्नर्थजातम् ॥

जात्यो रेजुस्सूनदात्यो महत्यः कीरग्राह्या नूत्नपत्राधरोष्ठ्यः ।
धीरस्वानैरालपन्त्यस्स्वगानीकान्ताः कान्तासङ्गवत्यो रहो वा ॥४८॥

हंसालापः सम्प्रवृत्तो निवृत्तः केकिस्वानः सारितीमन्दतासीत् ।
कालं कालं प्राप्नुवन्तो हिनस्युः स्वीयं स्वीयं के जनाः प्रौढिभाजः॥

हेमन्तवर्णनम्

हैमन्युच्चैर्यामिनी यामवन्तो दैर्घ्यं प्रापत्प्रापुरुच्चैर्लघुत्वम् ।
मय्येवेमाः संरमन्ते युवत्यो यत्तद्दैर्घ्यं युज्यतेऽलं ममेति ॥५०॥

प्रेम्णा बद्धाः प्रेयसीनां युवानः सह्यस्तासां विप्रयोगो न तेषाम् ।
तेनात्मानं शीघ्रमेव प्रवृत्तं घस्रो वस्यत्येष मन्येऽहमित्थम् ॥५१॥

भानोस्तापः सह्यतामाललम्बे प्रेमाधिक्यं खादिरे पावकेऽभूत् ।
तूलासङ्गः सर्वदापेक्षणीयः सोष्माणो वा कामिनीनामुरोजाः ॥५२॥

कण्ठाश्लेषे साधितेऽन्योन्यमारात्साकं रामा वल्लभैर्हैमनीषु ।
रात्रीषु द्राक् त्यक्तुमैच्छन्प्रमत्ताः काष्ठां प्राचीं चुम्बतीनेऽपि नैव ॥५३॥

वक्षोजौष्ण्यं यौवनोदग्रमग्र्यं कान्तानां ये सेवमाना युवानः ।
हेमन्तं ते नाविदन्किन्तु शुक्रे मासीवैते वीजनाकम्पनेच्छाः ॥५४॥

भोगान्भोक्तुं भोगिनः पूर्णकालो नान्यः कश्चिद्धैमकालं विनेति ।
भोगांश्चित्रान्सुन्दरीभिर्युवानो भेजुः स्वेच्छाप्रातिकूल्येन नैव ॥५५॥

वाते शीते शैशिरे वाति कामं प्रेयोदष्टौष्ठेषु वृत्तं युवत्यः ।
गोपायन्त्यो भोगमातृप्तिभुक्ता यत्नं चक्रुर्नैव दम्भावकाशात् ॥५६॥

कौंद्यो वल्यो रेजिरे पाण्डुसूना वायोर्धूताः सव्रणौष्ठव्यथार्त्ताः।
रामाः किं शीत्कुर्वतीः सोपहासं पाणिक्षेपं वारयन्त्यो वयस्याः॥५७॥

लौध्रो रेणुः पाण्डुरो दिग्वधूनामास्यान्यासीत्पाण्डयन्काननोत्थः।
मन्ये क्षोणी काननी होलिकीयं चूर्णक्षेपं कुर्वती दिक्सखीषु॥५८॥

वाताधूताः पल्लवा वल्लरीणां भृङ्गैः स्पृष्टा नूतनाताम्रभासः।
प्रेयोदष्टाः कामनीनां तथौष्ठास्तुल्यं रेजुर्वेपमाना व्यथार्ताः॥५९॥

इत्यारामे तत्र सर्वर्तुरम्ये भूमीपालः कामिनीभिर्व्यहार्षीत्।
सेवोत्सिक्ताः स्वस्य ये वर्तमानास्तेषां सन्तः पूरयन्त्येव कामम्॥

वामालीभिः संवृतः सर्वतोऽसौ पश्यन्शोभामार्त्तवीं काननान्ते।
हस्ताहस्तिप्राप्तसम्मोदवाही वामां काञ्चित्कम्बुकण्ठीमवादीत्॥६१॥

त्वं वासन्तीं पश्य कान्ते मनोज्ञां चूताश्लिष्टां गाढमाकम्पमानाम्।
भृङ्गारावैर्नेति नेत्यालपन्तीं कामेपूणामास्पदं सूनदम्भात्॥६२॥

फुल्लत्सूनां भृङ्गसम्भुज्यमानां व्रीडानम्रां मल्लिकामुल्लसन्तीम्।
गन्धोदग्रां पश्य पश्येति जज्ञे श्यामा कापि व्रीडमाधोमुखेन्दुः॥६३॥

कादम्बानां पङ्क्तिरेषा विशेषाद्गन्धोदञ्चच्चञ्चरीका समन्तात्।
पुंयोगाद्वा फुल्लसूनापदेशाद्रोमाञ्चाङ्गीं पश्य कान्ते त्वमेताम्॥६४॥

हंसालीयं पल्वलीये तटेऽस्मिंस्थित्वा हंसीयोगसम्मोदमाना।
स्वच्छं पाथोजन्मसौरभ्ययुक्तं पीत्वा शीतं पाययत्यम्बु हंसीः॥६५॥

कौन्दा एते सूनबाणेन बाणाः लक्ष्यीकर्त्तुं संहिता नोऽधिचापम्।
इत्युक्तासीत्प्रेयसी वल्लभेन व्रीडां स्वालीमालम्बेऽतिभीता॥६६॥

अन्धीकुर्वन्भृङ्गमालारजोभिः लोध्रोद्भूतैः सान्द्रतामाश्रयद्भिः।
चञ्चत्कम्पे पश्य शीतो नभस्वान् कुर्वन् सन् दौर्दिन्यमावाति धीरम् ॥

कण्ठं सख्याः पाणिनालम्ब्य सम्यक्काचित्कान्तं दूरतो यान्तमग्रे।
प्राप्तुं धीरं धावती नाप्यशक्नोत् श्रोणीभाराक्रान्तखिन्नाङ्गयष्टिः ॥

कचिन्नारी यानखिन्ना कराभ्यां कादम्बीयां पुष्पितां रम्यपत्राम्।
धृत्वा शाखां पृष्ठतोऽयं तमारात्प्रेयांसं स्वं प्रेक्षमाणा स्थितासीत् ॥

इत्यारामे कमिनीभिः सहासं वैहारीं भूलोकभर्त्ता सशोभाम्।
कुर्वन्खिद्यन्मानसे तालसंज्ञे क्रीडां कर्त्तुं वाञ्छति स्मामलोदे ॥ ७० ॥

तस्मिन्वध्वः पल्वले गाधनीरे प्राहृत्यक्ते जालिकानां प्रयासात्।
नौकायुक्ते तीर्थमार्गेण तेरुः क्षिप्तान्योन्याम्भःकणाः पाणिपात्रैः ॥७१॥

काचिद्भीता नावतीर्णा पयोधौ तीरे स्थित्वा पाणिना सिञ्चति स्म।
आलिं काञ्चित्साथतां पाण्युपात्तां नीत्वा नीरं नीरकेलिं चकार ॥७२॥

गौरैस्तासामङ्गरागैः प्रवृत्तौ रक्तीभावं नीतमम्भो मलीनम्।
वक्षोजाभ्यां सक्तिमासाद्य पाण्योः पाथोजन्यो हातुमैच्छच्चिरं नो ॥

अम्भोहस्तैस्ताडयामास काचिल्लुण्टाकं तत्पुष्पमालावलीनाम्।
रक्तं तत्तु प्रत्युतासीदशङ्कं सङ्क्रान्ताभिः पाणिपद्मप्रभाभिः ॥७४॥

संस्थं नावि प्रेक्षमाणं विलासान्भूमीपालं शृङ्गतोयैर्विचित्रैः।
उक्षामासुस्ता रमण्यः सहासाः प्रोचे राजा सस्मितं प्रेयसीस्ताः॥७५॥

कोऽयं धर्मः स्वीकृतः पद्ममुख्यो वैषम्यस्थस्यापि मे सेककर्म।
उत्तीर्णोऽहं पश्यत प्रेमकेलीं लीलालोला मामकीमुत्ततार॥ ७६ ॥

उत्तीर्यासौ पल्वले भूमिभर्त्ता ताभिः क्रीडामद्वितीयां चकार ।
वर्णाम्भोभिर्हैमशृङ्गोपपूर्णैः पाण्यम्भोभिर्मोदमानोऽभिषिञ्चन् ॥७७॥
काञ्चित्प्रेम्णा सिच्यमानां सपत्नीं वर्णाम्भोभिः स्वामिनालोकयन्ती ।
रागाङ्ग्यासीदानखा केशवेशं चित्रं ह्येतन्नाभिषिक्ताऽपि कान्ता ॥
ताभिस्तस्मिन्कुर्वति क्षोणिपाले क्रीडामित्थं भोक्तुकामं तमेत्य ।
भानुर्मन्दीभूय सव्रीडमस्तं शैलं सद्यश्चुम्बति स्मेति युक्तम् ॥७९॥
उज्झित्वाम्भस्तीरमासाद्य सद्यो वासांस्याधाद्वल्लभो वल्लभाभिः ।
क्रीडासद्म प्राविशत्कामबाणैश्चापे रम्ये संहितं ज्याधिरूढे ॥८०॥
भानावस्तं याति याताथ सन्ध्यापद्मानीयुर्मुद्रणं कैरविण्यः ।
मोदं प्रापुः कौशिकाली प्रहृष्टा नीडाञ्जग्मुः पक्षिणः सारवाः स्वान् ॥
कोकाः कोकीः कम्बुकण्ठीरुपेत्य क्रोशन्तीरारामशोभामनोज्ञम् ।
वेशन्तीयं तीरमन्यत्प्रयाताः किं कुर्युस्ते न स्वतन्त्रं हि सर्वम् ॥८२॥
गाढध्वान्तं क्वाप्यहर्लीनमासीत्प्राप्येदानीं यामिनीसङ्गमं तत् ।
व्योमाशानां मण्डलं भूमिभागं व्याप्यैतानि प्रौढतामुज्जगाम ॥८३॥
भानुश्चोरोऽहः सविश्वासमेतत्कृत्वा सर्वं स्वैः करैः सद्य एव ।
आदायाक्षीणीव रत्नान्यनासीत्तेनैवान्ध्यं सर्वतः सम्प्रतीये ॥८४॥
नक्षत्राणां कैतवेन प्रयान्त्याः शीघ्रं रेजुर्नूनमाकाशलक्ष्म्याः ।
त्रुट्यत्पादाम्भोजभूषाः स्खलन्ति व्योमाध्वन्युन्न पुराणीति मन्ये ॥
ऐन्द्री काष्ठा सस्मितालक्षि किञ्चित्शोभामेतां वीक्षमाणा विचित्राम् ।
आकाशीयां विस्मिताविष्टचेताश्चित्रा दैवीयं गतिर्हन्त गुर्वी ॥८६॥

भूमीलोकं द्रष्टुकामेयमैन्द्री चन्द्रव्याजादात्मनो वक्त्रमुच्चैः ।
कृत्वाऽपश्यत्सस्मिता रागिणीन्द्रे दृष्टालोकैः सस्पृहं मोदमानैः ॥८७॥

ध्वान्तं ध्वस्तं कैरविण्यः प्रफुल्लाः पाथोजानि प्रापुरालस्यमुच्चैः ।
ऐन्द्रीं प्राप्ते कैरवप्राणनाथे पूर्णे पूर्णानन्दमासीत्समस्तम् ॥८८॥

यावान्यावानिन्दुराकाशमागात्तावत्तावद्ध्वान्तमासीत्त्रयिष्णु ।
तेजोभाजां वैरिणः क्वापि दृष्टा नष्टा दृष्टा भीतिभाजो जनानाम् ॥८९॥

ताभिः सोऽयं वारुणीं स्वादुमीशः कामप्रीत्यै धैर्यवानप्यपीप्यत् ।
पात्रे पूर्णां पद्मपत्रोत्थगन्धां पश्चात्पानं चात्मना सन्ततान ॥९०॥

हासो हर्षो हर्षवान् वाक्यबन्धो वारुण्यासीत्सर्वमेतद्वधूनाम् ।
मुग्धानामप्यद्भुतं नेति नूनं सौरो यस्मान्निश्चितं स स्वभावः ॥९१॥

इन्दौ संस्थं बिम्बिकायाः फलं यत्पद्मोद्भूतैर्मौक्तिकैः पाण्डुरागैः ।
योगं प्राप्यातीव रेजे तदानीं यूनोः केलौ सम्प्रवृत्तीकृता या ॥९२॥

कोकद्वन्द्वं पद्मयोगोपशोभां हैम्यां वल्यामुद्भवं मोदमाप ।
चापं वक्रं सज्जितं सौनचापां कोकद्वन्द्वं धर्षिताम्भोजबाणाम् ? ॥

काचित्कान्ता वल्लभाश्लिष्यमाणा कम्पैःस्वेदाम्भोलवै राजते स्म ।
नीवीभीतात्स्वाश्रयाद्वेपमाना त्रुट्यद्ग्रन्थिर्भूमिमभ्याससाद ॥९४॥

इत्थं केलीः सुन्दरीभिः स ताभिः कुर्वन्प्राचीं भूमिपालो ददर्श ।
एता एव प्रेयसीः सत्करोति त्रैलोक्येशः शोणितामीर्ष्ययेति ॥९५॥

ऊचुर्वाचं बन्दिनो बोधहेतोर्भूमीभर्त्तुर्वाक्यबन्धे समर्थाः ।
राजन्पूर्वा सूर्यसिंहेन दीर्णा वान्तामोघच्छोणिताक्तेव भाति ॥९६॥

कोकैः कोक्यो योगमासाद्य हृष्टाः सम्भाषन्ते वेदनां यामिनेयीम् ।
हाहाकारः कैरवाणां विकासः पद्मानां वा गन्धसम्भूमिहेतुः ॥९७॥

स्वामिन्स्वामी कैरवाणां मृगाङ्को रात्रिं भुङ्क्त्वा सूर्यसिंहात्पलाय्य ।
पश्चान्मार्गाच्छीघ्रमेत्याहृतौजा भीत्योडूनि प्रापुरेतानि नाशम् ॥९८॥

दीपा एते मन्दभासो गृहस्थाः शय्याप्येषा याति मालिन्यमुच्चैः ।
योग्या नेयं ते तु मालिन्यसेवा यो वान्येषां धूनने तस्य शक्तः ॥९९॥

वैतालिकोक्तैर्वचनैः प्रबुद्धो नराधिपः सन्विजहौ स शय्याम् ।
औपस्यमाधाद्विधिकर्म सर्वं यथोपदिष्टः स्वपुरोहितेन ॥१००॥

स एकदा योधपुराधिनाथं स्वप्रातिकूल्याचरणस्वभावम् ।
नराधिपः स्वस्य वशे विधातुं सवाहिनीको युधि सम्प्रतस्थे ॥१०१॥

गजैरनेकैः शतशोऽश्ववर्यैं रथैश्च पत्तिप्रतियोद्धृभिश्च ।
शस्त्रैः सशस्त्रैश्च सवन्हियन्त्रैः सा वाहिनी पूर्णतमा रराज ॥१०२॥

अवाप्य तद्योधपुरं नरेन्द्रः समं तदीशेन स सम्प्रजह्ने ।
तद्युद्धमासीज्जनरोमहर्षनिदानमत्यन्तविचित्रकारि ॥१०३॥

भेरीध्वनिस्तादृगभूत्सुघोरैर्यस्य श्रुतेर्गर्भवतीजनानाम् ।
गर्भा निपेतुः सहसैव भूमौ पलायमानोऽरिजनो बभूव ॥१०४॥

योधाधिपोऽयुध्यत युद्धमध्ये प्रतापसिंहस्य सुतेन तेन ।
तद्वीर्यमुच्चैरवबुध्य सर्वा सशङ्कचित्ता जनता बभूव ॥१०५॥

भल्लैः शरैः शक्तिभिरुच्चघोषं चिरं वियुध्याधिकवीर्यमेनम् ।
ज्ञात्वैव योधाधिपतिर्विगर्वः पदाब्जयोरेत्य नतो ननाम ॥१०६॥

तस्योपरिष्टात्प्रणतस्य पादे नत्वा स्वयं वाक्यपटुर्वचोभिः ।
क्षमापयित्वैव करं गृहीत्वा पुरं निवृत्तो जयपत्तनेशः ॥१०७॥
इत्याद्यनेकै रणकर्मदक्षैर्योधैरनेकान्द्विषतो विजित्य ।
निष्कण्टकः सन् विदधे पितॄणां राज्यं रजोरिक्तमना यशस्वी ॥
तस्मिन्महीं शासति भूमिपाले सौराज्यसम्पादककर्मशीले ।
बभूव सर्वा जनता सशर्मा शर्मेतरा स्वत्वमलंबभूव ॥१०९॥
राज्ञी नृपस्यैजनपूर्ववृत्तिकुमारिका साधुचरित्ररम्या ।
गर्भं दधाराष्टदिगीशभागैर्यो मांसलो भार्ग्यविवृद्धिधारी ॥११०॥
संवत्सरे पञ्चनगाष्टचन्द्रे पौषे नवम्यां बहुलस्य काले ।
वैकुण्ठमासद्य हरेः सपर्यां जग्राह पत्नीभिरसौ सतीभिः ॥१११॥
मन्त्री वरो मोहननामधेयः सरैवलो लोभविवृत्तचित्तः ।
गर्भोद्भवापेक्षितचित्तवृत्ती द्वौ बभ्रतू राज्यमकण्टकौ द्याम् ॥११२॥
वैशाखे शुक्लपक्षे शरदि च षडगाष्टेन्दुतुल्योन्मितायां
तिथ्यामादौ रवौ वा वृषवपुषि तथा मेषगौ भानुसौम्यौ ।
चन्द्रश्चोर्वीतनूजे भृगुशनियुगली चन्द्रवैरी च मीने
नक्रे जीवश्च केतुः सुदृशि नृपसुतः प्रादुरासीदनन्तः ॥११३॥
नाम्ना यो जयसिंह इत्यभिमतः सर्वस्य सर्वे गुणाः
सार्द्धं तेन नृपात्मजेन गुणिना जन्मालभन्तेव ते ।
द्यौर्भूमिः सममेव मोदमगमद्गन्धादयो भौतिकाः
स्वोत्कर्षं जनितः सको मुदमगाद्योनान्तरे तत्क्षणम् ॥११४॥

आसीद्यस्य पराजितामरगुरुः श्रीलक्ष्मणाख्यः पिता
माता यस्य सती सतीव्रतपरा यस्याग्रजौ भ्रातरौ ।
स्तःस्वन्ताधिपदाद्यजन्तजयतिप्राग्वर्तिरामाभिधौ
रामस्यास्य कृतौ कवेरिह गतः सर्गोऽष्टगोत्रासमः ॥११५॥

इति श्रीपर्वणीकरोपाह्वश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भ-
सम्भव श्रीसीतारामकविविरचिते जयवंश-
महाकाव्ये अष्टादशः सर्गः ॥

एकोनविंशः सर्गः

श्रीमान्सवाई जयसिंहवर्मा नृपः पदं पित्र्यमलङ्करोति ।
तेजोभिरौर्वानलसन्निभैः स्वैर्भस्मीकृताराातिपयोधिनीरैः ॥१॥

आत्मीयमोजोऽधिकमादितो यः सपादमुर्वीवलये नरेन्द्रात् ।
प्रसार्य सार्थक्यमवाप नाम्नि द्विषद्व्रजालीजयजातकीर्त्तिः ॥२॥

यस्मिन्भास्वति भूपतौ समुदिते भास्वन्त्यभूवन्मुदा
मित्राम्भोजवनानि नूतनकरेऽभूदेव देवार्चिते ।
तत्तद्वेषणकैरवाणि मलिनान्यासन्समस्तान्यहो
दुष्टोलूकजनान्ध्यमद्भुतमभूदाशाविकासोऽभवत् ॥३॥

आशाभाजनमुच्चकैरनुदिनं नापूरि कस्याऽमुना
भूपालेन नतेन सत्सुवसुभिः कामातिगैर्दानिना ।

कौबेरं धनदत्वमप्यजनि तल्लीनं विलीना खला-
लीनासीद् रदृष्टजन्यजनहृत्तापोऽवति क्ष्मामिह ॥४॥

तापाय द्युमणेः कराः शुचिभुवो वृद्धस्य तापक्षये
तैरेवायमपीदृशो नरपतिः सन्नद्धिमालम्बते।
भानुर्दैनमपाकरोति तमसां स्तोमं परं नो निशः
सोऽयं सार्वदिकं ततो रविसमीभावोचितः स्यात्कथम् ॥५॥

ज्ञाता धर्मपथस्य दुर्वहधराभारस्य भर्त्ता न तत्
स्वीकर्ता रजनीशतुल्यवदनो हर्तारिलोकश्रियाम् ।
भेत्ता दुर्नयतो भयेन रहितः संग्राममूर्द्धन्यसौ
के के नेह गुणा वसन्ति सततं क्षोणीपतिश्रेयसि ॥६॥

यस्मिन्यस्य कृपाकटाक्षलहरीमाधुर्यबिन्दुच्छटा-
मध्यैका गुरुबिन्दुभाजनतया संश्रित्य संस्थीयते।
सोऽयं तादृशनाकनाथविभवेऽनल्पेऽपि नैव स्पृहां
यातीत्यस्य गुणानुवर्णनकृतौ कस्य क्षमत्वं भवेत् ॥७॥

सोढा धर्मकृते कृती सुविपदां वोढा रणानां बली
सन्नद्धो जनशर्मकर्मकरणे नद्धस्सतां प्रेमभिः।
देवानां प्रियता निवर्तकतया लोकस्य सर्वस्य यः
ख्यातः सर्वजगत्सु केन तुलनामाप्नोति भूमीश्वरः॥८॥

बुद्ध्यादेव गुरावपीह विहितावज्ञोऽनवज्ञो बुधे
मान्यः क्षोणिभुजां भुजाहितचतुःपाथोऽधिनद्धावनिः ।

नीत्या नीतरमो वशीकृतरिपुः शौर्येण तेजस्विनां
श्रेष्ठः कस्य न वल्लभोऽस्ति सततं यो धीरवीराग्रणीः ॥९॥

पाथोधिं परिदुस्तरं यदि तरेत्पोताद्युपायैर्जनः
शैलोल्लङ्घनमप्यशक्यमतुलं कुर्यादुपायान्तरैः।
गाम्भीर्यातिशयो हि यस्य न भवेत्कस्यापि शक्यस्तथा
नो वा धर्षणशक्तताऽपि स घुमानेनं विना दुर्लभः ॥१०॥

कर्णः कर्णपथीकृतोऽपि सहसा यद्दानपूरे वरे
जाते श्रुत्यतिथौ जनस्य सभयः संमज्जनाशङ्कया।
निस्सृत्यैव बहिर्गतो न हि पुनः सोऽयं प्रवेष्टुं बला-
दुद्योगं वितनोति तत्र विशदे सोऽयं कथं वर्ण्यताम् ॥११॥

यस्मिन्शासति भूमिमण्डलमिदं भूपालसिंहे जग-
त्सिंहस्यात्मजनौ पुरातनमहीपालान्सवीर्यानपि।
के वा सस्मरुरुत्सुका वसुमती म्लानाऽपि नास्ते समु-
न्मोदं सर्वदिशोऽलभन्त नियतं केनोपमा मे त्वयम् ॥१२॥

प्रतापार्के तर्कः समुदयति यस्यावनिभुजः
किमर्कः स व्योम्नि स्फुरति न हि भूमाविति न सः।
युगान्ताग्निः किं वा विधिनियमितानेहसमसौ
विनैवाविर्भावं न भजति ततोऽन्यः पुनरयम् ॥१३॥

प्रतापाग्नौ यस्य द्युतिमति विसर्पत्यविरतं
द्विषां प्रासादेषु प्रतिभवनमुच्चैः प्रतिपुरम्।

रमण्यो विश्वस्ताः प्रसृमरकृशानोर्विहतये
स्रवन्नेत्राम्भोभिर्विदधति घनैः प्रावृषमिव ॥१४॥

यस्मिन्युद्धमहीं महीभुजि भुजव्यासज्जचापे विभौ
याते विस्तृतसद्गुणाऽपि विगुणा चापावलिः शात्रवी ।
क्षोणीशक्रशिरोम्बुजन्मरचितस्रग्भूषिता भूरियं
द्यौरेषापि धृताप्सरोभिरमरैर्वैमानिकैरावृता ॥१५॥

आजौ वाजिविराजिराजिविजितप्रोल्लासिरंहोभर-
स्वः स्वाम्यर्वमणेर्जयोपपदयर्तिसहस्य भूमीपतेः ।
के ते मत्तरिपुद्विपाः समभवन्नाम्नैव ये कम्पिनः
सन्तः सत्वरमेव पर्वतदरीदारा न भूताः परम् ॥१६॥

यद्वाजिनोऽतिविनतासुतवेगवेगा
लक्ष्मीरलक्ष्मकलिता ललना यदीया ।
नाङ्गेषु कालकलना कथमेनमेते
नाविष्णुरेष इति तं निगदन्ति लोकाः ॥१७॥

वर्षन्त्वम्बुधरा जलानि जलजान्युद्भासयन्त्वम्बरे
तिष्ठत्वेष रविश्चिरं कुमुदिनीरामोदयंश्चन्द्रमाः ।
स्तोतुं स्वं जयपूर्वसिंहनृपतेर्दाने स्वमित्रोदये
स्वर्वानाजनचित्तवञ्चनविधौ दृष्टे तु के ते पुनः ॥१८॥

के वा सन्ति न चापकर्मकुशलाः के वा तथा नाभवन्
के वा भूमितलेऽखिले नृपतयो वीरा न सम्भाविनः ।

किन्तु श्रद्धितमस्ति मद्वचसि वः श्रोतव्यमेतज्जना
युद्धे यावदसौ न दृक्पथमियात्तावत्त एवेदृशः ॥१९॥

म्लाने धर्मपथेऽपथे समुदयं याते गुणे गौणतां
वैगुण्ये प्रभवत्यलं मतिमतां वार्ताऽपि दूरङ्गता ।
इत्थं विप्लवमुल्बणं स्वजगतः पश्यन् व्यवस्थापनं
कर्त्तुं राजवपुर्विधाय वसुधां मन्येऽवतीर्णो हरिः ॥२०॥

कीर्त्तिर्यस्य दिगन्तरेषु विमला वैशद्यमातन्वती
क्वापि क्वापि चकार पाण्डिमगुणं पात्रेषु सङ्क्रामितम् ।
पात्रेष्वेव निवेशितो यदि गुणः प्राप्नोति सोऽयं ततः
सङ्क्रान्तिं मुकुरान्तरे रविरिव द्योति प्रभोनः स्थले ॥२१॥

दातारो दिवि वारिदा जलनिधावर्थित्वमासाद्य ते
किं वा तेन ततो विशेषमहिमा नो नो मनो लम्भते ।
सोऽयं वाङ्मनसव्यतीतनिलयो योऽस्मिन्धराधीश्वरे
नित्यं याचकलुण्ठनेऽपि विमुखो नाशात्परं लक्ष्यते ॥२२॥

यदीयगुणवर्णनं स विदधीत शेषोरगः
समुद्भवति वर्णने स विरतौ भवेच्छेषता ।
विशेषकृतशेषसङ्गमवशादिव प्रायशो
भवन्ति कृतसङ्क्रमा विहितसङ्गमानां गुणाः ॥२३॥

द्विषन्नृपवधूजनो निहतदुर्मदस्वामिको
वसन्नधिवनं सदा सदयचेतसां भूरुहाम् ।

अनुग्रहवशादुपैत्यहह सत्कृतिं कम्पिनां
समीरणवशान्नराधिपतया दिवप्रोत्कटम् ॥२४॥

प्रतीपनृपसुभ्रुवः प्रतिवनं भ्रमन्त्योऽनिशं
महीरुहजनादहो किमपि नातिथेयीं ययुः ।
नृपारिवनिता इमा इति भयादिवोत्कम्पिनः
चलत्किसलयच्छलादिव निवारणं कुर्वतः ॥२५॥

निहितपतयो देव्योऽरीणां स्रवन्नयनाम्बवः
पथि पथि भयाद्भ्रेमुः कम्पोदयोल्लसदङ्ककाः ।
शिशुभिरधिकैरङ्कस्कन्धाङ्गुलीनिलयाश्रयैः
प्रतिपलगतिव्याघातेनाकुलाकुलचेतसः ॥२६॥

प्रणतिततिभी राज्ञामाज्ञानुवर्तनशालिनां
रविरुदयतः प्राप्तोऽप्यस्तं तथास्तमयादपि ।
उदयमवधिर्नासामास्ते कृताञ्जलयो नृपा
नृपमभिमुखं भानुं विप्रा इवोदितमासते ॥२७॥

रणमभिमुखं याते नाथे भुवो विभवाञ्चिते
धनुरधिगुणं प्राप्नोतीषूनिमे रिपुराजकम् ।
तदवनिमयं यं यः कीर्तीरिमा भुवनत्रयं
तदपि नृपतेरस्वातन्त्र्यं महोन्नतकर्मणः ॥२८॥

इभा इभ्या नित्यं ददति सुतरां दानपयसां
प्रवाहं भ्राम्यद्भ्यो निकटमलिरूपेभ्य उषसि ।

द्विजेभ्यः सर्वेभ्यो निखिलविधिविद्भ्यो यदि तदा
किमाश्चर्यं नृणां भवति वसतामत्र नगरे ॥२९॥

गरीयांसः केचिद्विभववशतो नागरजना
गुरुं मन्याः स्वल्पानभिभवपथं ये खलु जनान् ।
नयन्त्येते रत्नाकरजलपयोदत्वमुदितं
न बुध्यन्तेऽम्भोदे समदमलिने गर्जनकृति ॥३०॥

राजामात्योऽमात्यवर्यो यशस्वी सोऽयं भूंथारामपालश्चकास्ति ।
को वा पायाद्यस्य सादृश्यशोभां बाबाशब्दं यस्य राजा प्रवक्ति ॥

धर्मोदारो भूतजाताऽनुकम्पो विश्वास्यो यः क्षोणिपालस्य राज्ये ।
भूमीभारे दक्षहस्तोऽतिदक्षो मन्त्रे गुप्ते गुप्तसर्वक्रियो यः ॥३२॥

बाल्यं राज्ञो व्यज्यते न प्रजानां यस्मिँल्लोकान्पालयत्युन्नतेच्छे ।
राजामात्यास्ते हि ये राजकार्ये मन्यन्तेऽसूंस्त्वान्महान्तस्तृणाय ॥

शीलाचारप्राप्तकीर्तिर्जगत्यां नित्यानन्दो नन्दयन्सर्वलोकान् ।
लोकान्सर्वान्व्याप्नुवाना यदीया कीर्त्तिः शुभ्रा गीयते केन नैव ॥

यादृक्तप्तं येन भूयो गरीयो राजामात्यत्वाप्तिकामेन पूर्वम् ।
क्षेप्तुं योग्यं नैव दूरं तपो वै केनाप्येतन्नो कदाचिन्नरेण ॥३५॥

धर्मस्य कर्त्री गुणिलोकधर्त्री जनस्य भर्त्री दुरितस्य हर्त्री ।
कीर्त्याः प्रसर्त्री नृपतेर्जनित्री धनस्य दात्र्यै जननामधात्री ॥३६॥

सहस्रचण्डीप्रभृतीनि विप्रैः पुण्यानि कर्माणि विधाय यन्ती ।
सती पुरोगा जनमाननीया या तुल्यतामेतु जगत्सु कासाम् ॥३७॥

हेम्नस्तुलाभिर्बहुदक्षिणाभिर्विधीयमानाभिरजस्रमुच्चैः ।
सम्भावयत्येव गुणैरुदारान् द्विजन्मनः शीलमनोज्ञवृत्तीन् ॥३८॥

यामाप्य को नो लभते स्वकामान् दीनो नदीनोऽस्य समत्वमेति ।
मेति प्रवाच्यं हि समत्वचर्चानर्चापदं केवलमापदेव ॥३९॥

पत्यौ प्रयातेऽपि महेन्द्रलोकं बालेऽपि सूनौ नरलोकमेतम् ।
अम्बेव साम्बैकपरा पपौ या पतित्वबुध्या हरिमर्चयन्ती ॥४०॥

रूपेति नाम्नी गुणवत्सु नम्रा धर्मे परा राज्यधुरि क्षमेव ।
बृहद्व्रती कीर्त्तिमती सतीव सतीव्रताचारकरी विशेषात् ॥४१॥

सौजन्यसम्भाषणलोकचेतोहरद्विजन्मार्चनतत्परैव ।
समर्जयन्त्यैहिकशुद्धकर्माण्यामुष्मिकाणि प्रयता यतात्मा ॥४२॥

विशेषकम्

नरेन्द्रमातुर्मनसो विनोदकारी सदाचारकृतोऽनुकूला ।
विभाति नित्यं सुतबुद्धिकर्त्री नराधिपेऽस्मिञ्जयसिंहनाम्नि ॥४३॥

तस्यां निजं राज्यभरं निधाय शेते सुखेनैव पटुत्वभाजि ।
समानुकूलासु सखीषु कृत्ये सतीषु वध्वो न भवन्ति दुःखाः ॥

सा मन्त्रिणोऽपि प्रियतां वहन्ती तदानुकूल्येन करोति कामान् ।
सौजन्यवन्तो न भजन्ति वाम्यं स्वस्वामिकार्येषु जनाः कदापि ॥

नेत्रे यस्य विभावसुः सितकरस्स्वान्ते च शान्तिस्स्थिता
पाणिः पौष्करमुच्चकैरनुदिनं सादृश्यमालम्बते ।

संज्ञा पावकताश्रया विधुसमं यस्याननं भासते
गोविन्दो हरिरित्यवाप्तमहिमा यः सर्वदा गीयते ॥४६॥

योऽधीशो हिमदीधितिः खचरतामासादितो दासता-
मालम्ब्यैव यदाननस्य सहसा प्राप्नोति सर्वस्वताम् ।
सोऽयं लक्ष्मणसूनुरुन्नतगुणः सख्यादिरामाह्वयो
विष्णुर्विप्रवपुर्विधाय गुरुतां भूपस्य यस्याप्तवान् ॥४७॥

श्लोकद्वयेऽस्मिन्नुपदिष्टनीलसरस्वतीमन्त्रजपेन पुंसाम् ।
वैदुष्यमर्थः सुतसौतसौख्यं यशोभवेल्लोकवशीकृतिश्च ॥४८॥

महीभुजे मन्त्रमिमं महीभुजे गुरुर्गुरुः सर्वजगत्सु सद्गुरुः ।
उपादिदेश प्रयताय शर्मणे महीभुजः स्वस्य च धर्मशर्मणे ॥४९॥

विवाहिता येन नराधिपेन सुता नृपाणां गुणशीलरम्याः ।
भजन्ति तं नित्यमहर्मणीया भासो यथाहर्मणिमम्बरस्थम् ॥५०॥

यस्य भाति सततं जयपूर्वं पत्तनं पुरमतीव मनोज्ञम् ।
उच्चशालमधिशालिविशालं सत्यभाषणरताखिललोकम् ॥५१॥

रूपधेयभरभृतिविभूत्यो भान्ति भूषणहरा हि युवत्यः ।
यत्स्मितं कुमुदसूनसमानं पुंसु मन्मथजनुःकरमारात् ॥५२॥

गृहास्त्रिलोकीघटिता विभान्ति यस्मिन्समस्ता गगनस्पृशोऽपि ।
त्रैलोक्यवस्तूनि सुदुर्लभानि भवन्ति यस्मात्सुलभानि येषु ॥५३॥

यस्मिन्वनानीव गृहाणि भान्ति सुवर्णवल्यः सुफलाः सपुष्पाः ।
अधिश्रिताः पुंविहगैरनेकैर्विलासचेष्टा विदधत्यजस्रम् ॥५४॥

नाकर्मदक्षा न जना वसन्ति राज्ञा न हीना न वसन्ति यत्र ।
देवेषु भक्तिप्रवणा नबोधा न नास्तिका नास्तिकबुद्धयश्च ॥५५॥
स्वार्थैकदृष्टिस्तु न पश्यतीदं परार्थदृष्टेरधिवासहेतु ।
धर्मे मतिश्चेदितरत्र नो चेद्यस्यायमस्मिन्नधिवासकारी ॥५६॥
इभ्यैरनर्घ्यव्यवहारकृद्भिर्जनोपतापोपशमैकनिष्ठैः ।
इष्टैकदृग्भिर्विनयोपयुक्तैर्व्याप्तं पुरं यत्सततं विभाति ॥५७॥
विश्वेश्वरो भाति नितान्तरम्ये सन्मन्दिरे राजहितेच्छयैव ।
तथा प्रतापेश्वरनामधेयः प्रतापमुद्योजयते नृपस्य ।५८॥
गोपीपतिः पालितगोपवर्यो विधातुकामो नृपतिप्रसादम् ।
सन्मन्दिरे क्वापि च यत्र नित्यं करोति वासं जनकामदोग्धा ॥५९॥
सीतापति. सौधपुरस्थितेऽस्मिन् सदालये वासमुपातनोति ।
तैष्यां दशम्यां सितपक्षगायां रथाधिरूढः प्रतिवर्षमेति ॥६०॥
अभ्रंलिहे वायुललत्पताके सन्मन्दिरे कल्कहरो जनानाम् ।
नरेन्द्रगेहाभिमुखे स कल्की करोति वासं खलु यत्र देवः ॥६१॥
नरेन्द्रसद्मानि चितानि रत्नैः स्वच्छैः समच्छानि मनोहराणि ।
राजन्ति राजालयजित्वराणि सुवर्णभङ्गीरुचिभान्ति यत्र । ६२॥
यत्र प्रकृष्टा महिता निवासा विभन्ति ये प्रीतिनिवासपूर्वाः ।
अन्वर्थनामान इव प्रतीताः परस्पराभा जयिभा महोच्चाः ॥६३॥
जयनिवाससमाह्वयमुन्नतं ह्युपवनं किल नन्दनजित्वरम् ।
रुचिरभूरुहपल्वलमण्डलैरुपचितं मणिसौधलसद्रुचि ॥६४॥

गोविन्ददेवोऽमलमन्दिरस्थो निकामरम्याकृतिरुन्नतौजाः ।
विराजिते यत्र हितानि कुर्वन्न नराधिपस्यक्षितिपालजेतुः ॥६५॥

सन्मन्दिरे क्वापि विराजमानः सम्मोदयन्मानसमस्य राज्ञः ।
यात्रासु रामोऽभिमुखं प्रयायी गजाधिरूढो विजयं करोति ॥

क्वाप्यद्भुतं पल्वलमम्बुपूर्णं विराजते तालकटोरनाम ।
पुंसः प्रमाणापरनामतालप्रमाणनीरं यत एतदस्ति ॥६७॥

स्वच्छाम्बुभिर्गाङ्गपयोभ्रमाणां यदास्पदं चन्द्रमरीचिगौरैः ।
माधुर्यमत्यन्तमनोज्ञमस्य पीत्वा सुधा स्यादवहेलनीया ॥६८॥

सरोजराजीसुमनोरजोभिः पाथो यदीयं धृतपङ्कमन्तः ।
सौवर्णनीरैरिव पीतिमानं वहद्भिरापूरितमेव भाति ॥६९॥

गौर्युत्सवे माधवमासवृत्तो तथा नभोवृत्तिकरे निशायाम् ।
महीपतिर्नात्रमधिश्रितः सन् विहारमन्वब्दमिहातनोति ॥७०॥

स राजमार्गो जयति प्रकामं हट्टालिशोभारुचितः समन्तात् ।
सम्पद्विशेषोपचितो विशेषाद्यस्मिन्पुरे पौरजनाभिपूर्णे ॥७१॥

हट्टेषु यस्मिन्महितेषु हेममुद्रास्तथा राजतमुद्रिकाश्च ।
ताम्यश्च ताःक्वापि विभान्ति नित्यं वराटिकाःक्वापिच राशिभूताः ॥

रत्नानि रक्तानि हरिन्मणीनां राशिस्तथा मौक्तिकसञ्चयोऽपि ।
क्वापि स्थितस्सन्नृपपत्तनीयां श्रियं विजित्याविरतं विभान्ति ॥

ताम्राणि पात्राणि च पैत्तलानि हट्टेषु राजन्ति च राजतानि ।
हैमानि नित्यं विविधानि नूनं मनोहराकारमनोहराणि ॥७४॥

गोधूमराशिः क्वचिदुच्चमानो विभाति नित्यं सुसमर्घ एव ।
जिजीविषूणां कृपयेति मन्ये व्यपारभाजां त्वसमर्घमानः ॥७५॥
मसूरमुद्गाढकधान्यराजमाषामलव्रीहितिलादिकानि ।
अन्नानि चान्यान्यपि भान्ति नित्यं गोधूमराशेः सदृशं विशेषात् ॥
अनेकपक्वान्नपयोविकारसंसर्गशोभामधिगत्य सन्ति ।
ऋद्धा विपण्यो वणिजोऽपि ऋद्धा लोकोपकारार्थमुदारभावाः ॥
शुण्ठीलवङ्गानि महौषधीनामेलादिकानां निचयो विपण्याम् ।
स्वस्वर्तुसम्भूतफलानि भान्ति शाकान्यनेकानि मनोहराणि ॥
कस्तूरिकाकेसरचन्दनौघकर्पूररूपाण्यतिसुन्दराणि ।
वस्तूनि च क्वापि च चेललीला विनोदकारा वणिजो विभान्ति ॥
द्वाराणि चत्वारि चतुर्दिशासु पुरस्य यस्य प्रतिभान्ति नित्यम् ।
सौरं तथ कार्ष्णमतः परन्तु चान्द्रं तथा गाङ्गमतिप्रशस्तम् ॥८०॥
शालो विशालो धवलः सुधाभिरावृत्य संस्थां कुरुते पुरं यत् ।
भियं द्विषद्भ्यो वितरीतुमुच्चैर्ग्राही विषस्येति नु बुद्धिमद्भ्यः ॥
तस्मिन्पुरे क्वापि मनोज्ञगेहा सुशीललोका गुणिलोकपूर्णा ।
लघ्वी पुरी ब्रह्मपुरीति नाम्ना विराजते वैभवपूरिताशा ॥८२॥
तपस्विनो यत्र वसन्ति लोका विवैभवा धर्मकृतावदक्षाः ।
दक्षाः परेषामुपकारवृद्धौ सदा सदाचारपराः सुशीलाः ॥८३॥
केचिन्महाराष्ट्रभवाः सधर्मास्ते पौण्डरीकप्रमुखा महान्तः ।
विद्याभिरासादितकीर्तिपुञ्जा राजन्ति सर्वे खलु राजपूज्याः ॥८४॥

केचिच्च सम्राट्प्रमुखा विविद्या विवैभवाः साधुचरित्रचित्राः ।
नेत्रातिथीभावमुपागताश्चेद्यं तर्हि केषां मनसो न मोदः ॥८५॥

अग्न्याहितैर्यत्र च गेहमध्यं तनूनपाद्भ्यो हुतहव्यभुग्भ्यः ।
उत्तिष्ठमानैः परितो विधूमैराकाशमाभाति घनावृतं किम् ॥८६॥

जागेश्वरो यत्र वसत्यजस्रं श्रीपौण्डरीकालयसन्निधिस्थे ।
सन्मन्दिरे वायुलसत्पताके सदाशिवो लोकशिवानि कुर्वन् ॥८७॥

केचिद् द्विजाः प्रश्नवरा वसन्ति यत्र प्रतीता गुणगौरवेण ।
सन्मार्गगाः सोत्सवगेहनिष्ठाः ज्यौतिर्विदो गोकुलनाथपूर्वाः ॥

केचित्तथा गुर्जरजातिजाता गुणप्रतीता मतिमत्सुवीराः ।
वसन्ति यत्रालयवर्तिनारी विलासलीलामुदिताः समन्तात् ॥८६॥

पद्माकरः सोऽयमतिप्रतीतो विभाति पूर्णो विमलाभिरद्भिः ।
यादोविलासाः सततं भवन्ति यत्राम्बुजालीरजसा विभिन्ने ॥६०॥

अम्बावती सादिपुरीमनोज्ञा मनोज्ञहर्म्या गुणिलोकपूर्णा ।
अधिष्ठिता यां सततं सुमूर्तिरम्बा मनोज्ञालयसन्निविष्टा ॥६१॥

यत्राम्बिकेश्वरशिवः शिवकर्मदक्षः
सन्मन्दिरे वसति शैवजनार्च्यमानः ।
भूपालशर्मकरणप्रवणो महीया-
नर्द्धेन्दुशेखरतया बहुरोचमानः ॥६२॥

यामन्वहं बटुकभैरवनाम देवः
शर्मेतराणि सकलस्य निवर्तयन्सः ।

पूज्यो जनैः स्वहितकामनयाऽधितिष्ठ-
त्युच्चोच्चहेममयमन्दिरवासकारी ॥९३॥

अधिवसति जगच्छिरोमणिर्यां जगदभयङ्करतामधिश्रितस्सन्।
शिवपदकमलार्चनैकनिष्ठो बतबत हैमवती प्रसादकाङ्क्षी ॥९४॥

स चैत्रापलो जनशर्मकारी दान्दूरितीह प्रथितो जगत्याम्।
आस्थाय सन्मन्दिरमात्मनीनसपर्यया मोदमलं दधाति ॥९५॥

आरामवर्यः फलपुष्पऋद्धो नित्यं दलाराम इति प्रतीतः।
प्रासादवान्माठसरोऽमलाम्भस्संसिक्तनानाविधशाखिवृन्दः॥

पुरोपरान्तस्थितयो विभान्ति स्वारामवर्यास्सघनाऽवनीजाः।
जलाशयैर्हर्म्यवरैरुपेता विहारयोग्या षडृतूपयुक्ताः ॥९७॥

मैश्रो महीयानपराजचान्द्रश्चन्दूबृहद्भृत्युपर्निर्मितश्च।
तथापरः कश्चन शैवदासस्तथाश्वमेधीय इति प्रसिद्धः ॥९८॥

देवालयः परशुराम इति प्रसिद्धो
यस्मिन्वसन्हरिरहर्निशमात्मनीनम्।
आत्मानमुच्चमवलोकयते जनानां
शर्मेतरस्य हतये सततं दयालुः ॥९९॥

श्रीजिन्महद्भिर्गुणिभिर्नरेन्द्रै
रजोभिरन्धैः कृतितां नयद्भिः।
यो निर्मितो धर्मकृते महीयान्
परोपकाराय च धर्मकृद्भिः ॥१००॥

घाटेति नाम पदमम्बुझरैरजस्र-
माल्लाव्यमानमवनीरुहवृन्दशोभम् ।
नृत्यत्कलापकलकूजितकोकिलाली-
लीलामनोहरतरं नितरां विभाति ॥१॥

यस्मिन्वसत्यविरतं हनुमान्कपीन्द्रः
सन्मन्दिरे सकलवाञ्छितदानदक्षः ।
गोधूमचूर्णकृतलड्डुकभुक्तितृप्त-
विप्रप्रसन्नहृदयः प्रतिभौमवारम् ॥२॥

आराममुख्याः प्रतिभान्ति यत्र वैद्याधरो मातृक उच्चशाखी ।
रौपेयशैशोदनिकौ मनोज्ञावन्येऽपि केचिद्बहवोऽपि सन्ति ॥३॥

अस्ति गालवपदं सुमनोज्ञं पल्वलोपवनमण्डितमुच्चैः ।
यत्र गोमुखमुखाज्जलकुण्डे निष्पतन्निव झरः सुरनद्याः ॥४॥

यस्मिन्नजस्रमजनन्दनलब्धजन्मा
रामोऽङ्कवर्तिजनकावनिपालकन्यः ।
सून्वन्वितो वसति भूपहितानि कुर्वन्
रामानुजैः सततपूजितपादपद्मः ॥५॥

सदैव कर्णः शुभवृत्तशाली पुण्याधिकारं नृपतेरवाप्य ।
पुण्यान्यनेकानि चकार नूनं सहस्रचण्डीप्रभृतीनि धीरः ॥६॥

तस्यात्मजस्तत्सदृशो महीयान् पुण्याधिकारं परिपाति शश्वत् ।
माल्यादिरामः समुदारचेता यस्य प्रसादाद्धनिनो भवन्ति ॥७॥

धर्माधिकारमुपलभ्य नरेन्द्रवर्याद्
धर्मं चतुष्पदतया जयरामशर्मा ।
भ्राताऽनुजो नृपगुरोर्गुणवर्गशाली
सम्यङ्न्यधत्त जयपत्तनभूमिमध्ये ॥८॥

मनोरथो ज्यौतिषशास्त्रवेदी साक्षाज्जनानां स मनोरथो यः ।
नराधिपज्यौतिषकाधिकारेऽप्यतिप्रवीणो जयताच्चिरं च ॥९॥

गोविन्दरामप्रमुखाः सुशीला ज्यौतिर्निर्णयज्ञाश्च जयन्ति लोके ।
मान्या नरेन्द्रस्य विचारदक्षा दक्षास्त्रिकालार्थविचारणायाम् ॥

सोऽयं कदाचिद्धरणीमहेन्द्रः सेनासमेतो गुरुलोकयुक्तः ।
अमात्ययोगी निजमातृयोगी प्रतिप्रतस्थे जमवायदेवीम् ॥११॥

अलङ्कृतास्सत्कुथपृष्ठभागा वलक्षदन्ता द्विरदा नरेन्द्रम् ।
तमन्वयुर्हैन्द्रविमानसंस्थं विन्ध्याद्रिकूटा इव मूर्तिमन्तः ॥१२॥

वाहास्सिता भूषणभूषिताङ्गाः सचामरस्कन्धरुचो महोच्चाः ।
समीरवेगाधिकवेगयोगाः सहस्रशो भूपमनु प्रयाताः ॥१३॥

वरूथिनः स्वप्रधिखातभूमीरजःपटाच्छादितदिग्विभागाः ।
चेलुर्झणत्काररवाभ्रनादभ्रमादनृत्यन्सहसा मयूराः ॥१४॥

पदातयश्चेलविभूषिताङ्गाः शस्त्रौघधारावसनावृताङ्गाः ।
प्रकम्पयन्तो भुवमङ्घ्रिघातैरहो अनुप्रास्थिषतावनीन्द्रम् ।१५॥

अध्वानमुल्लङ्घ्य नराधिनाथः सम्प्राप्तवान्बाणसरित्प्रतीरम् ।
तन्नीरलीलेक्षणहृष्टचित्तः सेनासमेतोऽध्यवसत्प्रतापी ॥१६॥

ददर्श देवीं जमवायनाम्नीं सन्मन्दिरे वासकरीं यशस्वी ।
अभ्रंलिहे वातललत्पताके लसन्मणीभङ्गिविराजमाने ॥१७॥
प्रसन्नमूर्त्तिं स विलोक्य देवीं प्रसन्नचित्तो भवति स्म राजा ।
वासांसि भूषाफलपुष्पमालावसूनि तस्यावुपदीचकार ॥१८॥
तत्रत्यविप्रान्बहुशः पदार्थैरभोजयद्भूमिपतिः कृतार्थः ।
तृप्ता अमुष्मै ददुराशिषं ते पुत्री चिरायुर्भव भूमिपेति ॥१९॥
विधाय यात्रां जमवायदेव्या यथाविधि क्षोणिपतिः प्रतापी ।
पुरं निवृत्तो निजमुन्नतेच्छः सेनासमेतो धृतहर्षलोकम् ॥२०॥
पुरं प्रविश्य प्रशशास भूपो नयावनम्रो भुवमासमुद्रात् ।
रामामिव स्वां धृतधर्ममार्गाममात्यवर्गाप्रतिकूलवृत्तिः ॥२१॥
कदाप्यसौ भूपतिरिन्द्रतुल्यः श्रीपुष्करं तीर्थवरं दिदृक्षुः ।
स्वया जनन्या सह वल्लभाभिः स्वाभिस्समं सैन्ययुतः प्रतस्थे ॥
अमात्यवर्योऽवनिपालमेनं समन्वगाद्बुद्धिमतां वरेण्यः ।
अन्येऽपि केचिद्बलिनः स्वकीयास्सुबन्धवो वीरवराश्च धीराः ॥
गुरुः सखाराम इति प्रतीतस्स पौण्डरीकश्च स कीर्त्तिनाथः ।
राजानमालम्ब्य विलम्बिबाहुं प्रतस्थिरे पुष्करतीर्थमुच्चैः ॥२४॥
सा वाहिनी स्यन्दनवाजिदन्तिपदातिरूपा गुणिलोकपूर्णा ।
प्रत्यध्वमास्थानवती पुरीव प्रासादयुक्ता रमणीयरामा ॥२५॥
तत्तीर्थमासाद्य स पुष्कराख्यं सस्नौ यथाकाममपां प्रवाहे ।
दानादिकं तत्र विधाय सम्यक्कृतार्थतामाप नराधिनाथः ॥२६॥

मातापि राज्ञो बहुभक्तियुक्ता बृहद्व्रती रूपवती च नाम्ना ।
अम्भस्सु तीर्थेषु विनिर्मलेषु स्नात्वा च दत्त्वाऽभवतां कृतिन्यौ ॥
सर्वेऽपि सैन्याः परिमृज्य तीर्थे वपूंष्यपूतान्यपि पूत्यकार्षुः ।
गुरुर्द्विजा निर्मलबुद्धयस्ते स्नानादिकं श्राद्धविधिञ्च चक्रुः ॥२८॥
यात्रामित्थं पौष्करीं संविधाय क्षोणीपालः प्राप्तकीर्त्तिप्रकर्षः ।
सेनायुक्तः स्वं पुरं सन्निवृत्तो वृत्तस्वच्छः पूर्णकामो बभूव ॥२६॥
पुरं स्वकीयं प्रविशन्तमेनं नराधिपं द्रष्टुमथोत्कचित्ताः ।
पौराङ्गनाः स्वान्यपहाय शीघ्रं कार्याणि वातायनमापुरुच्चैः ॥३०॥

काचिन्नराधिपविलोकनकार्यवाञ्छा-
सम्भ्रान्तचित्तवशगातिमनोज्ञरूपा ।
वामं विलोचनमथाञ्जनयोगहीनं
कृत्वैव सत्वरमवाप गवाक्षमुच्चैः ॥३१॥

काचिच्च भोजनकरी तदरं विहाय
भूपेक्षणोत्सुकमनाः सहसा हसन्ती ।
नाचारिताऽऽचमनकापि मनोज्ञवर्णा
वातायनं गगनगामि जगाम कान्ता ॥३२॥

कबरीप्रसाधनपरा वनिता सहसा विहाय तदधीशमनाः ।
अकृताऽवगुण्ठनपटोच्चकुचा कृशमध्यमा निजगवाक्षमगात् ॥

सरसयावकमण्डितपादया वनितया समुपेक्षितशोषया ।
पथिकृताङ्घ्रिसरोजनिचिन्हया निजगवाक्षवरः सहसागमि ॥

निजभर्तृसङ्गमपहाय वधूस्सहसा गवाक्षमगमन्नृपतेः ।
परिलोकनोत्सुकमना नितरां विनिवारिताऽपि रतिदर्पहरा ॥३५॥

सामिमज्जनमपोह्य गवाक्षं काऽपि भूपतिविलोकनकामा ।
आर्द्रयन्त्यथ मनोहररूपा मार्गमम्बुपृषतैः समवाप ॥३६॥

इत्थं परा युवतयः स्मितमादधाना
वातायनानि समवाप्य दृशांविलासैः ।
तीक्ष्णैः शरैरिव मनोभवचापमध्यात्
सन्निस्सृतैर्नरपतिं सहसा विजघ्नुः ॥३७॥

ताः पश्यन्नववनिता नितान्तरम्याः
प्रोल्लङ्घ्य क्षितिपतिमार्गमुर्वरेन्द्रः ।
सोत्साहं विहितनवोत्सवातिरम्यं
सद्म स्वं प्रविशति स स्म मन्त्रियुक्तः ॥३८॥

दत्त्वाऽऽशिषो नृपतये गुरवः समस्ताः
सत्कारिता विविधपूजनयोपदाभिः ।
स्वान्स्वान्गृहान्प्रतिययुः सुसमृद्धिवृद्धान्
वृद्धा गुणैर्गुणवतां महतां वरिष्ठाः ॥३९॥

क्षोणीपतिः सोऽयमपारबोधः श्रीमान्सवाईजयसिंहवर्मा ।
चिरस्य पित्र्यं पदमृद्धिवृद्धं पातु प्रणष्टाखिलवैरिलोकः ॥४०॥

यो लोकानुदितस्तमिस्रनिचयात्प्रागल्भ्यमासादिता-
द्यामिन्यां दुरितानि सर्वजगतां बिध्वंसयन्रक्षति ।

आलम्ब्याश्रयमन्तरैव गगनं यो लङ्घते प्रत्यहं
सोऽयं तिग्मकरः प्रतापमवनीनाथस्य संवर्द्धयेत् ॥४१॥

यो हालाहलमम्बुधेः समुदितं दाहाय लोकात्मनां
सद्यो विष्णुमुखामरेषु परितः पश्यत्सु कण्ठे न्यधात् ।
सोऽयं पर्वतराजराजसुतया संश्लिष्टमूर्त्तिः सदा
शर्वः पातु विभूतिभूषिततनुर्भूपालचूडामणिम् ॥४२॥

स्तम्भादुत्थाय सद्यः प्रसृमरकिरणः क्रोधसंसृष्टदेहः
शत्रोर्वक्षोनखैर्यः सपदि घनतरं दीर्णवान्सायमुच्चैः ।
सोऽव्याद्भूपालमेनं गुणगणसहितं विक्रमोदारकीर्ति
हर्यक्षो नारसिंहः श्रियि कृतसुमुखो भीषणो धीरनादः ॥४३॥

हैय्यङ्गवीनचौरो मायामानुष्यकं बिभ्रत् ।
वृन्दावनविहरणशीलः कृष्णो नृपं सदा पायात् ॥४४॥

क्षीराब्धेरिव पूर्णो रात्रीरमणो मुदो हेतुः ।
सत्वरमस्माद्भूपादाविर्भावं प्रपद्यतासूनुः? ॥४५॥

सरसा मनोज्ञवृत्ता सालङ्कारा च तरुणकान्तेव ।
भणितिरियं रामकवेः कस्य न मनसो विनोदाय ॥४६॥

सन्तः काव्यरसज्ञा कवितामेतां विभावयन्त्वनिशम् ।
रामस्तदर्थमेव व्यातेने काव्यकृतिरत्नम् ॥४७॥

निरर्था ते चिन्ता मनसि कविते निर्मलरसे
मया सेव्यः कः स्यादिति जगति विद्वेऽपि विदुषि ।

मदोन्मत्तोर्वीशे निरवधिजगद्भूपणतया
सखारामो विद्वानथ च जयतां भूपतिरयम् ॥४८॥

विद्वांसः सन्ति शब्दागमपरनिपुणा न्यायनामागमज्ञाः
मीमांसाशास्त्रविज्ञा परनिगमपरा वादवाञ्छैकनिष्ठाः ।
साहित्यज्ञानहीना यदि किल पशवोऽशृङ्गपुच्छास्ततस्ते
नेयं चिन्ता ममास्तां चिरमिह जयतादेष भूमीमहेन्द्रः ॥४६॥

सीतारामेण कविना निर्मितस्तीव्रबुद्धिना ।
जयवंशोऽयममलः कस्य हर्षाय नो भवेत् ॥१५०॥

जयवंशमिदं काव्यं जयरामानुजन्मना ।
जयपत्तनभूपालजयसिंहाज्ञया कृतम् ॥१५१॥

आसीद्यस्य पराजितामरगुरुः श्रीलक्ष्मणाख्यः पिता
माता यस्य सती सतीव्रतपरा यस्याग्रजौ भ्रातरौ ।
स्तः स्वन्ताधिपदाद्यजन्तजयतिप्राग्वर्तिरामाभिधौ
रामस्यास्य कृतौ कवेरिह गतः सर्गोऽङ्कगोत्रासमः ॥१५२॥

इति श्रीपर्वणीकरोपाह्वश्रीलक्ष्मणभट्टात्मज सतीगर्भ-
सम्भव श्रीसीतारामकविविरचिते जयवंश-
महाकाव्ये एकोनविंशः सर्गः ॥१६॥

समाप्तञ्चेदं जयवंशनाम महाकाव्यम्

॥ श्रीः ॥

जयवंशमहाकाव्यस्य दशमसर्गान्ता संक्षिप्ता विवृतिः

प्रथमस्सर्गः

लोकशास्त्रमूलकत्वमालोकयन् कविरसौ शिष्टाचारप्राप्तं वस्तुनिर्देशात्मकं मङ्गलं शिष्यशिक्षार्थमुपनिबध्नाति प्रणम्येति। अस्मीत्यहमर्थकम् अव्ययम्। आदौ जगणप्रयोगो यद्यप्यनिष्टाधायकस्तथापि 'पः कुबेरे स समाख्यातः' 'पवने पस्समाख्यातः' 'रश्च रामेऽनिले वह्नौ' इत्यादिकोषबलाद् वाय्वग्निकुबेरवाचकत्वात्प्रशब्दस्य नानिष्टफलकता। महीपतेः शासनयेति स्वस्य तदाश्रितत्वम् अर्थावाप्तिरूपं प्रयोजनञ्च संसूचितम् ॥१॥ अमन्दसम्बन्धिपदम् महाकविपदमित्यर्थः। उच्चिचीषा उच्चेतुमिच्छा। निदर्शना वस्तूत्प्रेक्षा वालङ्कारः ॥३॥ नास्ति अन्येषां प्रतिमा प्रभा येषां तेषाम् अनन्यप्रतिमप्रभाणाम्। तेषां गुणानाम्, श्रुतेः श्रवणकर्तृकया नोदनया प्रेरणया ॥५॥ पराक्रमेण क्रान्तं स्वायत्तीकृतं दिगन्तानां चक्रं मण्डलं येन सः पराक्रमक्रान्तदिगन्तचक्रः। विभूत्या सम्पत्त्या भूतीकृता भस्मवत्तुच्छीकृता वज्रिणो भूतिर्येन सः विभूतिभूतीकृतवज्रिभूतिः। नीवृत्सु देशेषु ॥६॥ यतः सोढदेवस्य सार्वविभक्तिकस्तसिः। भानुं सूर्यं विभानुं विप्रभं करोतीति भानुविभानुकारी ॥७॥ राजापि रजस्वलः महिषः रजोगुणसम्पन्नश्च। नक्षत्रहन्तेति सुप्सुपेति समासः। तमसा शोकेन तमोगुणेन, विवेकशक्तिस्सूचिता, असत्वान् द्रव्यरहितान् बलरहितांश्च। श्लेषो विरोधाभासश्चालङ्कारः ॥८॥ अपाराः अनवधिप्रायाः ये पारावाराः समुद्राः, तेषां पारम् अवसानदेशं पिपर्ति व्याप्नोतीति तच्छीलम् अपारपारावरपारि। ताच्छील्ये सुप्यजाताविति णिनिप्रत्ययान्तं

पदम्। दुःखेन लङ्घितुं शक्याः दुर्लङ्घाः, कृच्छ्रार्थे खल्; ये शैलाः तेषां व्रजं समूहं लङ्घत इति दुर्लङ्घशैलव्रजलङ्घि ॥९॥ सौराज्येन राजसौष्ठवेन, रम्या मनोहरा। जिगाय तिरश्चकार, यतः सुकृतेन पुण्येन पूर्णा। काव्यलिङ्गालङ्कारः ॥१०॥ यो जनो यां पुरीमध्यतिष्ठदाश्रितः, अधिशीङ्स्थाधारस्य कर्मत्वम्। लिप्सां लोभं न भेजे न स्वीचकार। अलब्धभोगैरपि अन्यत्रेति शेषः। अतिशयोक्तिकाव्यलिङ्गयोस्सङ्करः ॥११॥ का ऐलबिलस्य पूः वा इति छेदः। ऐलबिलस्य कुबेरस्य। काञ्चनमयी रूप्यार्थे मयट्। अभावे उक्तम् भावे लिट् ॥१२॥ स्वभागिनेयाय स्वभगिन्यपत्याय, स्त्रीभ्यो ढक्। वह्निद्विशून्येन्दुमिते १०२३ त्रयोविंशत्यधिकसहस्रमिते। पित्र्यं पितुरागतम्। आरात् समीपम् ॥१३,१४॥ सस्मरुः स्मृचिन्तायां लिटि प्रथमपुरुषबहुवचनम्, 'गुणोर्तिसंयोगाद्योः' इति गुणः। दृष्टान्तालङ्कारः ॥१५॥ विचेलुः चस्खलुः। औचित्यम् उचितमेव, चतुर्वर्णादित्वात् ष्यञ्। अर्थान्तरन्यासालङ्कारः ॥१६॥ जादमनामराज्ञीं 'जादूणजी' इति भाषायाम्। अथवा जायाः स्त्रियः दमयतीत्यन्वर्थनाम्नीं राज्ञीम् पृषोदरादित्वात्साधुः। अशेषाणां कान्तानां गुणप्रयुक्तदर्पस्य गर्वस्य हन्त्री निवर्तयित्री। अनेन स्त्र्यन्तराद्व्यतिरेको व्यज्यते ॥१७॥ दुर्लभनामधेयं 'दूलेराय' इति भाषायाम् ॥१८॥ पञ्चवारो देशविशेषः पचवारेति प्रसिद्धः, तदीशस्य चबाणेत्युपनामकस्य (जोहान् इति भाषायां) राज्ञः शीलेनासमन्ताद्रसयतीति शीलारसीत्यन्वर्थनाम्नीं सुताम्। अथवा शीलारसीति नृपतिनाम तस्य सुताम्। सम्बुभोज अन्वभवत् ॥१९॥ बडगुर्जरीयाम् बडगुर्जरा बडगूजर इति प्रसिद्धा भाषायां क्षत्रियाः, तत्सम्बन्धिनीं नाम्ना द्योसाभिधेयां नगरीम् ॥२०॥ अभ्यर्णं समीपम्। न्यधत्त निदधे ॥२१॥ सावरोधं सशुद्धान्तं यथा स्यात्तथा समुपागतेन, संन्यवात्सीत् उवास। वस निवासे लुङ्। 'सः स्यार्द्धधातुक इति सस्य तत्वम् ॥२२॥ अनु जीवन्तीत्यनुजीविनः

ते च ते राजानश्चानुजीविराजाः । राजाह इति टच् ॥२३॥ ग्रामीणलोकाः ग्रामे भवा लोका जनाः । 'ग्रामाद्यखञौ' इति खञ् प्रत्ययः । आत्मनीनम् आत्मने हितम् । 'आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात्खः' इति खप्रत्ययः । अर्थान्तरन्यासालङ्कारः ॥२४॥ समघानि नाशितम् । हन हिंसागत्योः कर्मणि लुङ् । 'हो हन्तेः' इति हकारस्य कुत्वम् । काव्यलिङ्गालङ्कारः ॥२६॥ निशीथे अर्धरात्रे । आपन्नानां दीनानाम् उद्धरणात्मकं व्रतम् देवानां यदस्ति इदं न चित्रं न विस्मयः । पदार्थहेतुककाव्यलिङ्गालङ्कारः ॥२७॥ व्यथितोऽपि दुःखितोऽपि । व्यथारूपकारणसत्वेऽपि स्तुतावप्रवृत्तिरूप-कार्यानुत्पत्तिलक्षणा विशेषोक्तिः, सा च भावमुखेन न निर्दिष्टा, अतोऽस्फुटा ॥२८॥ 'शिवः शक्त्या युक्तः प्रभवति' इति रीत्या शिवाद्या देवसङ्घा अपि त्वां विना कार्यसाधनक्षमा न भवन्ति, अहं कीटप्रायः केवलं त्वामानतोऽस्मि । एतेनात्मनः स्तुतिविषयेऽपि शक्त्यभावो ध्वनितः ॥३०॥ बाण-नद्याः बाणगङ्गायाः । यमवायनाम्नी जमवामाता इति भाषायाम् । यमाः इन्द्रियनिग्रहाः, वामाः प्रापका यस्या इति वा । वातेर्णिजन्तात्कर्तर्यच् । नामवर्णानुपूर्वीपरत्वेन नपुंसकत्वमनुसन्धेयम् । यथावत् यथार्हम् । तद-र्हमिति वातप्रत्ययः ॥३२॥ अरातयः शत्रवः । असन् द्वितीयो यस्य तत् असद्वितीयम् अद्वितीयमित्यर्थः । प्राह भूतार्थकमव्ययम् ॥३३॥ अधिरणं युद्धे । विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः । तिरोदधे अन्तर्हिताभूत् ॥३४॥ गव्यूति-मात्रात् क्रोशयुगपरिमाणाध्वनः । अवरस्थितस्य पूर्वदेशस्थितस्य । निस्त्रिंशाः खड्गाः, तद्रूपाणि शस्त्राणि तैः ॥३६॥ सौढदेवस्य सोढ-देवापत्यस्य । तस्यापत्यमित्यण् । काव्यलिङ्गालङ्कारः । ३७॥ यथावैभव-मेव स्ववैभवानतिक्रमेणैव । आस्थापयामास प्रतिष्ठापयामास ॥३८॥ ग्राम्येशकं ग्राम्यस्वामिकम् । खोहं तत्सञ्ज्ञकं पुरम् ॥३९॥ स्वयं वै स्वयमेव । समनद्ध णहबन्धने लुङ् । नहो ध इति धत्वम् । अजिज्ञपत् आज्ञापया-

मास। ज्ञपेर्ण्यन्ताल्लुङ् ॥४०॥ अन्योन्यपराजयेच्छवोः अन्योन्यस्य पराजयमिच्छतोः। सन्देहालङ्कारः ॥४१॥ चान्द्रं तत्संज्ञकं खोहाधिपम्। चाँदामीणां इति भाषायां प्रसिद्धम्। समद्यं रुधिराध्यवसितमद्यपूर्णम्, यमस्य चषकं पानपात्रम्। गम्योत्प्रेक्षा, रूपकं वा ॥४२॥ तत्र खोहे। अस्थात् अतिष्ठत्। 'गातिस्थाघुपाभूभ्यस्सिचः परस्मैपदेषु' इति सिचो लुक् ॥४३॥ विद्वदुपाश्रयेण विदुषामुपासनया। अग्रे सरतीत्यग्रेसरः तस्य। 'पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्तेः' इति टप्रत्ययः एतदन्तत्वाच्चाग्रशब्दस्य निपातः। पाश्चात्याः पश्चाद्भवाः क्रियाः औद्र्ध्वदैहिकीः। दक्षिणापश्चादिति त्यकप्रत्ययः ॥४५॥ पराजितामरगुरुः विद्यया तिरस्कृतबृहस्पतिः। सतीव्रतपरा सतीव्रते पातिव्रत्ये परा आसक्ता सती सतीति नाम्ना प्रसिद्धा यस्य माता। स्वन्ताघिपदाद्यजन्तजयतिप्राग्वर्तिरामाभिधौ स्वन्तं प्रथमैकवचनान्तं यद् अघिपदं घिसंज्ञकभिन्नं पदं सखा इति पदम् 'शेषोऽध्यसखी'ति तद्भिन्नस्यैव घिसंज्ञानुशासनात्। तदेवादिर्यस्य, एवमच्प्रत्ययान्तो जयतिः जिधातुः जय इति निष्पन्नः, स प्राग्वर्त्युपपदं यस्य तादृशौ रामावित्युपपदं यस्य तादृशौ रामावित्यभिधे ययोस्तौ, सखाराम जयराम वित्यर्थः। अग्रजौ ज्येष्ठौ स्तः ॥४६॥

द्वितीयस्सर्गः

संयति युद्धे। सम्यग्जिता अरयो येन सः सञ्जितारिः ॥१॥ अतिक्रान्ताः नाककान्ता अप्सरसो याभिस्ताः अतिनाककान्ताः कान्ताः स्त्रियो यस्यां ताम् अतिनाककान्तकान्ताम्। अशिषत् शशास। शास्तेर्लुङि 'शास इदङ्हलोः' इतीत्वम्, 'सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्चे'ति च्लेरङ् ॥२॥ आलयेषु मन्दिरेषु। अर्चासु प्रतिमासु निविष्टाः निवेशिता आत्मनो यैस्तैः

अशेषैर्देवैः, अधिष्ठितः पूर्णधर्मो यां तादृशी द्यौसा अधिष्ठिता । स्वर्गत्यागपूर्वकपुर्यधिश्रयणासम्बन्धेऽपि सम्बन्धकल्पनातिशयोक्तिः ॥३॥ विधर्माणो लोका यस्मिन् तादृशः कलिः प्रवृत्तोऽपि, सधर्मा लोका यस्याम्, उषितः असुरारिः यस्याम्, अकाले कालेन मृत्युना अनभिभूता अधर्षिता लोका यस्यां, निर्गते रोगचिन्ते यस्याम् तादृशीं पुरीं नैवाभ्यभूत् न धर्षितवान् । नृपेऽसुरार्यध्यवसानादतिशयोक्तिः ॥४॥ समाधिं योगं भजन्तोऽप्यसमाधिभाज इति विरोधः। सम्यगाधिमभजन्त इति परिहारः। द्विजाः ब्रह्मक्षत्रवैश्याः अध्यवात्सुः अशिश्रयुः ॥५॥ राजन्वती सुराजका। 'सुराज्ञि देशे राजन्वान् स्यात्' इत्यमरः । राजन्वान्सौराज्य इति निपातः। राजवत्यः साधारणस्वामिकाः। 'ततोऽन्यत्र राजवान्' इत्यमरः । प्रकृतपुरः पुरान्तराद्व्यतिरेकः । उपमानतिरस्कारेण प्रतीपालङ्कारश्च अनयोस्संसृष्टिः ॥६॥ सुराज्ञि दुर्लभे लोकान् परिपाति सति साध्वी राज्ञी महेन्द्रादीनां दिगीशानामष्टानां मात्राभिरंशैः विशेषेण पोषितं गर्भमधत्त धृतवती ॥७॥ विपेदुः खेदं प्रापुः ॥८॥ रसान्तरे मधुरादौ । गार्ध्यं अभिकाङ्क्षाम् । सुदती शोभनदन्ता । नास्ति अन्यत् यस्यां तामनन्याम् । मृत्स्नां प्रशस्तमृदम् । अदती भुञ्जाना ॥९॥ राज्ञी रवितेजसं सुतं यस्मादसूत, तस्मादरिष्टं सूतिकागृहम् अन्धकाररहितं, अनपेक्षितप्रदीप्तदीपकं स सुतः व्याधादेव अकरोदेव । हेत्वलङ्कारः ॥११॥ यः कञ्चुकी मुदः सन्तोषस्य निदानं कारणं सूनुजनुः पुत्रजन्म निवेदयामास, सः पूर्णकामान्नृपात् अराजचिह्नं छत्रचामरादिरहितं वसु धनं प्राप्तवान् । अनेकपदगतो लाटानुप्रासः ॥१२॥ आहितजातकर्मा कृतजातकर्मसंस्कारः । अर्थापत्तिरलङ्कारः ॥१३॥ काकाह्वयद्वीपवतां काकद्वीपवासिनाम् । 'काकस्स्याद्वायसे वृक्षप्रभेदद्वीपभेदयोः' इति विश्वः । लाति गृह्णाति । द्विजनोदनेन पुरोहितोपदेशेन । ला आदाने, अदादिः ॥१४॥ अमितान् बहून् । स्ववीर्यात् स्ववीर्यमवलम्ब्य । ल्यब्लोपे

पञ्चमी । व्यजेष्ट जिगाय । जिजये लुङ् । 'विपराभ्यां जेः' इत्यात्मनेपदम् । गुरुतः गुरुभ्यः । अध्यैष्ट अधीतवान् । इङ् अध्ययने लुङ् ॥१५॥ भांडरेजीम् पुरीम् । योद्धुमिच्छुः युयुत्सुः तस्य भावः युयुत्सुता ॥१६॥ कुमारस्य विक्रान्ति विक्रमं दिदृक्षु द्रष्टुमिच्छु चित्तं यस्य तादृशः । चञ्चत् प्रकाशमानं भुजदण्डयोर्वीर्यं यस्य तम् । काव्यलिङ्गालङ्कारः ॥१७॥ जीवितुमिच्छा जिजीविषा सैव जिजीविषामात्रं तत्कृतं तदर्थम् । अङ्घ्री पादौ सरोजे इव तयोर्युग्मे । न्यपप्तत् शरणार्थं निपपात । पतेलुङि 'पतःपुम्' इति पुमागमः । उपमार्थान्तरन्यासयोः संसृष्टिः ॥१८॥ कुमारेण गुहेन तुल्यः कुमारतुल्यः । अर्थान्तरन्यासः ॥२०॥ मम पितुः भवतः पुरोऽपि सत्ता स्थितिः स्वसत्ताविनिवृत्तिपूर्वा स्वसत्ताया विनिवृत्तिः पूर्वं यस्यास्तादृशी सती आस्ताम् विध्यर्थे लोट् ॥२१॥ चिन्तया सहितं सचिन्तं चित्तं यस्य तादृशः राजा भाण्डरेजीपतिः । पदोत्के राज्यजिघृक्षौ अरौ विषये ॥२२॥ उत्तरवाक्यद्वयेन शङ्काभावसमर्थनात्तद्धेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारः ॥२३॥ हितस्य युक्त्या लाभोपायेन युक्तैः हितयुक्तियुक्तैः । भीमतरं भयानकम् ॥२४॥ शरैः बाणैः । भल्लैः कुन्तैः । असिभिः खड्गैः । अघानि प्रहृतम् । हन हिंसागत्योः कर्मणि लुङ् । अकारि कृतम् । कृञः कर्मणि लुङ् ॥२६॥ तुतोद व्यथयामास ॥२७॥ शपति क्रोशति, "अरातौ शत्रौ भाण्डरेजीपतौ निमित्तसप्तमी । शराणामोघं समूहम् । विमोघं निष्फलम् । वितताान चकार । अत्राजम्यनाकर्मत्वद्वयसामान्यधर्मेण सन्मित्रस्वास्योरौपम्यवर्णनादुपमा, छेदनवैफल्ययोर्वीरत्वेन समर्थनात्काव्यलिङ्गञ्च ॥२८॥ आरात् समीपम् ॥२९॥ गवालेरपदस्य गवालेरराज्यस्य राजा दूतमुखेन दूतद्वारा इति वार्ता वृत्तान्तं राज्ञा दुर्लभेन प्रयोज्यकर्त्रा अश्रावयत् । तदेवाह-हे राजन् ! बलिनो दाक्षिणात्याः ते तवेदं पदं राज्यं ब्राह्मणश्रमणन्यायेन भूतपूर्वगत्या त्वत्सम्बन्धकथनं ताटस्थ्यानौ-

चित्यसूचनार्थम्। प्रसह्य बलात् यतः ग्रहीतुकामाः, अतस्त्वं शीघ्रं समुपेहि आयाहि । स्वं पदं तेभ्यः दाक्षिणात्येभ्यः भीत्रार्थानामिति पञ्चमी। परिपालय रक्षस्व। प्रार्थनायां लोट्। वयं तादृग्बलिनो न स्मः, यतस्ते शत्रवः पराजिता भवेयुः, अत एव विमुखा भवेयुः ॥३२॥ ततः दूतादिति संनिशम्य श्रुत्वा प्रकृष्टक्रोधशाली स नृपतिः दुर्लभः त्वं न याहि, किमुताहं यास्यामि इत्थं सुतेन काकिलेन विनिवारितोऽपि रिपून् जेतुं प्रतस्थे ॥३३॥ अयुद्ध युयुधे। युध सम्प्रहारे लुङ् ॥३४॥ गजाः गजारोहाः राजपक्षीयाः। गजप्राचुर्यद्योतनमूलको गजेषु तदारोहत्वोपचारः। गजैः गजारोहैः दाक्षिणात्यपक्षीयैः। युयुधिर इति शेषः। पत्तिभिः पदातिभिः। आयोधनं युद्धम् ॥३५॥ प्रोद्धताः ये कुम्भिनः गजाः तेषां वृन्दैः समूहैः। रदाभ्यां रदाभ्यां युद्धं प्रवृत्तमिति रदारदि उपोह्यमाने स्वीक्रियमाणे। उवोष ददाह। उष दाहे लिट् ॥३६॥ एकक एव असहाय एव। 'एकादाकिनिच्चासहाये' इति कन्। कबन्धतां शिरोरहितत्वम् ॥ ७॥ तद्धैर्यं तस्य राज्ञो धैर्यम्, अस्थैर्यस्य निदानं कातर्यं बाधत इति अस्थैर्यनिदानबाधि ॥३८॥ घनोऽपि दृढवपुरपि, छिन्नाः द्विधाभूताः भिन्नाः विदीर्णाश्च अपघना अवयवा यस्य तादृशः। अस्त्रैः खड्गादिभिः। अतिशयेन पीयमानं पेपीयमानं तादृशं श्रुतशोणितं यस्य तथाभूतः। नाके स्वर्गे। अर्हत्तमं अतियोग्यम्। लेभे प्राप। स्वर्गं गत इत्यर्थः। कार्यनिबन्धनाप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः ॥३९॥ सकलानि यानि विधेः शास्त्रस्य विधानानि कर्माणि तेषां ज्ञानं भजत इति तादृशा पुरोहितेन उपदिष्टमिति शेषः। स्वेऽसाधारणे तत्पदे पितृराज्ये ॥४०॥ अधिपदाम्बुजं चरणकमले। नेमुः नमश्चक्रुः। पाणिभिः न्यस्ताः राज्ञः पुरः स्थापिताः महान्तः उपदाः गजाश्वादिरूपा उपहारा यैस्तथा सन्तः। लिङ्गेन नयनविकासादिचिह्नेन उन्मिता अनुमिता अन्तर्मुत्

मनःप्रीतिर्यस्य तादृशस्य नृपतेः सकाशात् अनुग्रहं प्राप्य उद्ययुः जग्मुः ॥४१॥

तृतीयस्सर्गः

प्रतापेन सम्यक् तापिताः समूलदग्धाः शात्रवाः शत्रवो येन सः। स्वार्थे प्रज्ञाद्यण्। उपमालङ्कारः ॥१॥ बलीयसां बलवताम् अग्रेसरति गच्छतीत्यग्रेसरः तस्मिन्। प्रतापिनां राज्ञाम्। तत्सम्बन्धिनो ये प्रतापाः तेषां मान्द्यस्य प्रतिपत्तिं करोतीति तस्मिन्। अपरा इव पूर्वतोऽन्या इवेत्युत्प्रेक्षा। इयञ्चोत्प्रेक्षा भेदकातिशयोक्त्या सङ्कीर्णा ॥२॥ अत्र काकिले नृपे सति जनाः सनीतयोऽपि नीतिवर्तिनोऽपि अनीतयः कुनीतिवर्तिन इति विरोधः। अतिवृष्ट्यादीतिबाधारहिता इति परिहारः। अबन्धवोऽपि बन्धुरहिता अपि सबन्धव इति विरोधः। अप्पूर्णा जलपूर्णा अन्धवः कूपा येषामिति परिहारः। शाकपार्थिवादित्वादुत्तरपदलोपः। प्रयताः पूताः। तथोत्तमाः श्रेष्ठा अपि न उत्तमतामधिगच्छन्तीति विरोधः। न उत्तमो यस्मादिति पञ्चमीबहुव्रीह्यन्तात्तसिलो विधानेन परिहारः। विरोधाभासो हेत्वलङ्कारश्च ॥३॥ पित्र्यवधोद्धतश्रियां दुर्लभसम्बन्धिवधेनोत्कटशोभानाम्। अधिश्रियामधिकसम्पदां पदानां मध्ये वरे श्रेष्ठे गवालेरपदे वसतां दाक्षिणात्यानामपारं पाररहितं आगः पितृवधरूपमपराधं स्मरन् स दौर्लभिः तद्विजिगीषुतां तेषां विजेतुमिच्छां गतः प्राप्तः। विजेतव्यमित्यैच्छदित्यर्थः ॥४॥ निःक्वणन् नदन्। ज्यामधिरूढं धनुर्यस्य सः अधिज्यधन्वा। 'धनुषश्चे'त्यनँङ्। ध्वनिभिः सिंहनादादिभिः ध्वनिता नादिता दिशः यथा स्यात्तथा। व्यचलत् प्रतस्थे ॥५॥ अनन्यसन्निभम् अनन्यादृशम्। विजज्ञिरे जाताः। जनीप्रादुर्भावे लिट् ॥६॥

परन्तपेन शत्रुदाहकेन ओजसा ग्रसितं मन्दीकृतम् अर्कमण्डलं यैः परैः शत्रुभिः। अयोधि युद्धमारब्धम्। भावे लुङ् ॥७॥ दुर्लभात्मजे वियुध्यमाने सति रुधिरौघपूरिता नदी नदीना महती, नशब्देन दीनाशब्दस्य सुप्सुपेति समासः। नदी वहति स्मेति शेषः। मही द्विषतां शीर्षाण्येव शिरांस्येव सरोजानि तैः पूजिता सत्कृता रेजे इति शेषः। नभः आकाशं विमानमालाभिरलङ्कृतं बभूवेति शेषः। अनुप्रासो रूपकञ्च ॥९॥ सकलास्ते अरातयः शत्रवः। अस्रैः रुधिरैः सिञ्चितः उक्षितः ॥१०॥ सुरभिस्वरूपिणी सुरभेः कामधेन्वाः स्वं देहं रूपयति कल्पयतीति यावत् सती यमवायदेवता आविरासीत् प्रकटीबभूव। विपत्तिभाजः विपन्नस्य। निजया भक्त्या शालत इति तस्य स्वभक्तस्य विपन्निवृत्तिः आपदां दूरीकरणं तादृशं। यमवायदेवतासदृशानां व्रतमेव व्रतमिव दुस्त्यजमित्यर्थः। अर्थान्तरन्यासः ॥११॥ दुर्लभभूपनन्दनः महीपतिः काकिलः तां गां, अंशुमालिनीं अंशूनां माला विद्यते यस्याः। व्रीह्यादित्वान्मत्वर्थीय इन्। तदन्तान्ङीप्। मातरं यमवायदेवतां विलोक्य नुनाव तुष्टाव। नु स्तुतौ लिट्। यथाऽतले वाहिन्याः नद्याः प्रवाहमध्ये पतितः पुमान् नावं समुपेत्य नौति तद्वत्। अत्र विपज्जलपतनयोर्गोनावोश्च बिम्बप्रतिबिम्बभावेन पूर्णोपमा ॥१२॥ यः कृपात्मको निधिः सोऽसकौ सोऽयं, अकजन्तस्यादश्शब्दस्य प्रथमान्तमिदम्। आनयते प्रापयतीत्यर्थः। भवच्चरणकृपयैव भवच्चरणप्राप्तिर्भवतीति भावः ॥१३॥ हे महेशवल्लभे! द्रुहिणः ब्रह्मा। इतरे इन्द्रादयः। ईशमानिनोऽपि आत्मानमीशं मन्यमाना अपि। 'आत्ममाने खश्च' इति चकाराण्णिनिः। चिदात्मिकायास्ते तव यथार्थतां वस्तुतत्त्वं ईषदपि, मध्यमणिन्यायेनापेः अत्रापि सम्बन्धः। नैव विदन्ति। अपरे मादृशाः किमुत। अर्थापत्तिरलङ्कारः। तया स्तोतुमशक्तस्यापि मम स्तुतिप्रवृत्तिलक्षणं चापलं सोढव्यमिति वस्तु व्यज्यत इत्यलङ्कारेण

वस्तुध्वनिः ॥१४॥ अर्थापत्तिविभावनेऽलङ्कारौ ॥१५॥ चतुर्मुखेनापि ब्रह्मणापि ते गुणा सुदुस्तवाः सुतरां दुःखेन स्तोतुं शक्याः। कृच्छ्रार्थे खल्। दधानकैः दधद्भिः। अर्थापत्तिः ॥१६॥ आसिच्यते आपूर्यते दृगादिकमनेनेत्यासेचनकम् त्वदीयमेतद्रूपं लावण्यम्। द्विनेत्री द्विनेत्रसमाहारम्। द्विगोर्ङीप् ॥१७॥ हे कृपानिधे! अफलैः निष्फलैः त्वया मदनुग्रहः विधीयतां क्रियताम् प्रार्थनायां लोट् इति वचोभिरलम् इति वचांसि न प्रयोक्तव्यानीत्यर्थः। यतोऽयं जनः अनुग्रहायैव अनुग्रहं कर्तुमेव। 'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः' इति चतुर्थी। निजरूपदर्शनात् निजरूपदर्शनं कारयित्वा। ल्यब्लोपे पञ्चमी। विशेषितः विशिष्टीकृतः। काव्यलिङ्गालङ्कारः ॥१८॥ आतुरचेतसा विपत्त्या विह्वलमनसा मया दयार्द्रमानसा त्वं इति निवेद्यसे। हन्तेति अयुक्तोक्तिजन्यविषादाभिव्यञ्जकम्। अनुभवाध्वनि स्थिता अधुनानुभूयमाना मदीया विपत् निवर्तनीया। अत्र निवेदनस्य आतुरेति दयार्द्रेति पदद्वयेन समर्थनात् पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारः ॥१९॥ मार्द्वीकरसाधिजित्वरम् मृद्वीका द्राक्षा तस्या अयं मार्द्वीकः तादृशस्य रसस्य अधिकं जित्वरं जयकर्तृ। 'इण्नशजिसर्तिभ्यः क्वरप्' 'ह्रस्वस्य पिती'ति तुक्। इदं वचः निशम्यावोचत ॥२०॥ भवत्कृतामीदृशीममूं स्तुतिमहं श्रोत्रपथीकृतां विधाय श्रोत्रमेव पन्थाः इति श्रोत्रपथः 'ऋक्पूरब्धूः पथामि' त्यप्रत्ययः। सः विषयत्वेन यस्याः सा श्रोत्रपथा अर्श आद्यजन्तादाप्। अतादृशी तादृशी सम्पद्यमाना कृता श्रोत्रपथीकृता। 'अभूततद्भावे च्विः' 'अस्य च्वौ' इत्यवर्णस्य ईकारः। श्रुत्वेत्यर्थः। तुष्टास्मि। तवाखिलान् शत्रून् सुतरां प्रियैरसुभिः विमोचयिष्ये हनिष्यामीत्यर्थः ॥२१॥ या अम्बिकापुरी सम्पदञ्चितां समृद्धियुक्ताम् ऐकपिङ्गीमपि अलकामपि। हाटकेन सुवर्णेन उञ्चितां घटितां दशाननीयामपि लङ्कामपि पराजयेत तिरस्कुर्यात् ॥२२॥

प्रतिष्ठितीकृत्य प्रतिष्ठाप्य त्वमर्चयेः पूजय विध्यर्थे लिङ् । अधिरणं रणे ॥२३॥ अर्थिनां याचकानां कामान् दोग्धीत्यर्थिकामधुक् । पयस्स्रवैः दुग्धस्रावैः । निषिच्य अनुगृह्येत्यर्थः । अत्रानुग्रहनिषेकाध्यवसानादतिशयोक्तिः । एवं वचःपयस्स्रवयोः बिम्बप्रतिबिम्बभावेन स्वस्य गोरूपत्वेन च प्रवृत्ता राज्ञि वत्सौपम्यात्मिकोपमा च, तयोस्सङ्करः ॥२४॥ नास्त्यन्यो यस्मादनन्यः असाधारणः विक्रमो यस्य सः काकिलः । अनेकासां पूरीणां उच्चैर्जयेन शालते तथोक्तामम्बिकापुरीम् ॥२५॥ समुन्नाः सम्यगुन्नताः । नितरां चिता पुञ्जिता उन्नता महती श्रीः सम्पद्येषु ते निचितोन्नतश्रियः । व्यभुः शुशुभिरे । अत्रोदात्तालङ्कारः । नातिशयोक्तिः, सर्वत्र प्राचुर्यार्थे मयटो विधानात् । प्राचुर्यस्य चात्र योगमात्रपरत्वात् ॥२६॥ पयस्सु दुग्धेषु । पयोभिः जलैः । पार्थकी पृथक्सम्बन्धिनी प्रतिभा बुद्धिः न भवति । अत्र सामान्यदृष्टान्तोदात्तानां सङ्करः ॥२७॥ स्वर्गपुर्या विलिप्सया विशेषेण लब्धुमिच्छया । अतीव दुष्करं पुण्यं विधित्सतः कर्तुमिच्छोः पुंसः समुद्यमोऽनर्थकः । अत्र व्यतिरेकालङ्कारः, अतिशयोक्तिर्वा ॥२८॥ स्वरपि स्वर्गेऽपि । नागरिकैः नगरोद्भवैः ॥२९॥ तत् सुखम् । तथेति शेषः । शर्ममन्दिरे सुखजनकस्थाने मन्दरेऽप्यद्रौ नासीत् । सुपर्वशैलेऽपि सुमेरावपि । भोगविधायीनि दैवतानि देवा यस्मिंस्तादृशे रैवतेऽपि । यथा येन प्रकारेण विन्ध्यगिरौ विन्ध्याचलेऽभवत् । अम्बाधिष्ठितैतत्पुरीकत्वादिति भावः । व्यतिरेकोऽतिशयोक्तिर्वा ॥३०॥ इतरेतरम् अन्योन्यम् । मा तिष्ठ न वर्तस्व । निषेधार्थकमोपपदत्वान्न लुङ् ॥३१॥ यथाक्रमम् अधर्माय पुरान्तरं धर्माय च स्वां पुरीमदत्त । अत्र विभागकरणस्य बुद्धिमत्त्वपदार्थेन समर्थनात्तद्धेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारः ॥३२॥ रजस्वलत्वं स्त्रीधर्मवत्त्वं रजोगुणत्वञ्च । तमांसि तमिस्राणि अज्ञानानि च । अनर्हविधानकारिणि अनुचितकर्मकर्तरि । श्लेषालङ्कारः ॥३३॥ यदधिष्ठिताः

यत्पुरमधिष्ठिताः जनाः । सदा नित्यम् । परस्य कान्तासु कनकेषु च । विधर्माणां नास्तिकानां संयोगात्पराङ्मुखाः बभूवुः ॥३४॥ यदा यदीत्यर्थः । तदा तर्हीत्यर्थः ॥३५॥ लघुः कनीयान् । महीयांसं ज्येष्ठम् । सुवृतिः सुष्ठुवृत्तिर्व्यवहारः, उद्वर्णयितुं उच्चैस्सामस्त्येन वर्णयितुं न शक्यते ॥३६॥ परोवयः बाल्यम् । प्रियं वयः भोगक्षमं वयः यौवनम् ॥३७॥ न धार्मिकीं धार्मिकभिन्नां वृत्तिं व्यपारम् । सधर्मवर्मणः धर्मरूपकवचसहितस्य कस्य पुंसः सुखदा न स्यात् ॥३८॥ प्रयतैः सदाचारपूतैः । प्रतीतैः विख्यातैः द्विजवरैः ब्राह्मणैः प्रयोजकर्तृभिः । प्रत्यतिष्ठिपत् प्रतिष्ठापयामास । णिजन्तात्तिष्ठतेर्लुङ् । आर्चिचच्च पूजयामास च ॥३९॥ स राजा, देव्या यमवायदेवतया । तत्पदं गवालेरं अधिगम्य प्राप्य व्यजयत सर्वोत्कर्षेणावर्तत । नाकं स्वर्गम् ॥४०॥

चतुर्थः सर्गः

धर्मेण वित्ता धर्मचणा 'तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ' इति चणप् । तादृशीः कृताः प्रजा येन तथाभूतः । व्यधोक् पूरयामास । दुहप्रपूरणे लङ् ॥१॥ मनीषिणां पण्डितानां संसदि सभायां स्थिरया लब्धज्ञानः यो हनुः । अधुक्षत दुदोह । दुह प्रपूरणे लुङ् । महेन्द्रसत्कारं इन्द्रादातिथ्यमापत् मृत इत्यर्थः ॥२॥ तेन ज्ञानददेवेन भवोन्नताः भवेन भूत्या उन्नताः समृद्धा भुवः समर्जिताः सम्पादिताः । यशस्कराणां कीर्तिमताम् । 'कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येष्वि'ति टप्रत्ययः ॥३॥ भोगिनां सुखिनाम् । स हानव इति पाठः । हनोरपत्यं स नराधिपः ॥४॥ धर्मचणः धर्मेण वित्तः । अनृणी देवर्षिपितृसम्बन्धिना ऋणत्रयेण विनिर्मुक्तः । गुणी गुणवान् । गुणीकृता उपसर्जनीकृता उर्वीशजना राजानो येन तादृशः ।

गुणीकृता उपसर्जनीकृता उर्वीशजना राजानो येन तादृशः । प्रजोनः तन्नामा जनाधिपः जगतीमपालयत् ॥५॥ क्षमां पृथ्वीम् । अधिपाति अधिकं रक्षति सति । तत् तस्मात् क्षमेति भुवो नामाफलमेव। यत: सह्ये-तरत् असह्यं दुःखमिति यावत् नो आस्त नाभवत् ॥६॥ रणे शरैः आसारकरः आसारस्य धारासम्पातस्य करः कर्ता, उचितो योग्यः, शतैरनेकैः नृपैः अञ्चितः पूजितः प्रजोननामा अवनिभृत्रहा भूमीन्द्रः, चबाणे-स्युपनामकः पृथ्वीपतिरेव पृथ्वीराज एव चक्रवर्ती तस्य योग्यां स्वसारं व्युवाह परिणिन्ये ॥७॥ स्वस्य विक्रमेण अरातिबलं शत्रुसैन्यं अति-वर्तितुं शीलमस्येति ताच्छील्ये णिनिः ॥८॥ अरात् दूरं नृगौरं नरो गौरा यस्मिन् इति सार्थकम् । नागोरेति प्रसिद्धं भाषायाम् । प्रहीतुमु-त्सुकः, प्रिया अग्रजा ज्येष्ठा यस्य तादृशः पृथ्व्यधिपः स्वसुः पतिं प्रजोनं पुरस्कृत्य सबलसन् प्रस्थितवान् ॥९॥ तस्य नृगौरस्य ईशः स्वामी यो गौरीपतिः गौरीशाह इति प्रसिद्धः तेन समं सार्धम् । अयुद्ध युयुधे । युधसम्प्रहारे लुङ् ॥१०॥ मनीषिणां विदुषाम् पुरस्सरः स्वसेनाधिपतिः असाधारणसेनापतिरित्यर्थः । नृपं प्रजोनम् । अच्युतां दृढां वाचमवोचत् । उच्चकैः महति तदाधिपत्ये सेनाया आधिपत्ये निदानं कारणं मनीषितै-वास्ति इति नः अस्माकं निश्चयः । मनीषिण एव सेनापत्यमर्हन्तीति भावः ॥११॥ हे महीन्द्र प्रजोन ! उत्कटं अधिकम् । अतः परावृत्य गतिः परिवृत्य गृहं प्रति गमनम् एव गरीयसी युक्ता । अल्पशक्तिषु एत-न्न विरुद्धम् ॥१२॥ ज्ञानददेवनन्दनः नते जने शरणं प्रजोननामा एष नृपोत्तमः इति एवं वादिनं तं सेनापतिम्-यतः यूयं अशक्तयः शक्तिरहिताः अतः, इतः प्रदेशात् पलायनं कुरुध्वम् , इत्थेव पलायनमेव भवादृशो-चितम् , परं इद्धे प्रज्वलिते अग्नितेजसि अग्निज्वालायां निजाननारूढ तृणानि निजाननेषु मुखेष्वारूढानि उत्पन्नानि तृणानि तृणत्वेनाध्यवसिता-

नि श्मश्रूणि भस्मसात्कुरुध्वमिति निर्भर्त्स्य तर्जयित्वा रणे तं गौरीपतिं आबध्य पदे नागोराख्ये राज्ये पदं सत्तां दधे ॥१३,१४॥ महेन्द्रलोकस्य स्वर्गस्यातिथिता लभ्यते स्म लेभे । मृत इति यावत् ॥१५॥ नवेन्दुसन्निभे यत्र मलेषिणि नराधिपे सति द्विषः वैरिणः अद्विषः निरमर्षास्सन्तः सन्नतिमानुकूल्यमापुः । अनेन राज्ञस्सौजन्यातिशयस्सूचितः ॥१६॥ सः मलेषी असुलभेऽपि वीरस्वामिकदुराधर्षेऽपि गुर्जरीये नीवृति देशे स्वस्य विक्रम एवोपायस्तस्य विधेः प्रयोगात् स्वकीयं पदं निहितं स्थापितं व्यधात्तमाम् अतिशयेन व्यधात् बलीयसः कस्य ततं विस्तृतं विक्रान्तिबलं हितं न स्यात् अपितु सर्वस्यापीति भावः ॥१७॥ हताः मारिताः हन्तारोऽपि वीरा अपि सैनिकाः यैस्ते द्विषः शत्रवः, तेजोभिरहीनमन्यूनम्, उर्वराया: भूमेः भरस्य पालनात्मकस्य उद्वहे धारणे अहीनं अहीनां सर्पाणां इनं शेषं महीपुरन्दरं मलेषिणं वीक्ष्य सकम्पाः कम्पयुक्ताः दर्यो गुहा एव दाराः स्त्रियः, विपत्समये दारवत्प्रियत्वेन तासु तद्रूपणम् । तेष्वपि दरमीषदेव आदृताः दरं भयं अवहन् । अनुप्रासालङ्कारः ॥१८॥ प्राप्तो महत्सु इन्द्रेषु राजसु विषये विक्रमो जयो येन सः क्ष्मापतिः मलेषी । धिक्कृत्य जित्वा ॥१९॥ विदां पण्डितानां वरः श्रेष्ठः असौ राजा मलेषी नाकप्राप्तिः सुकृतीति पदेन समर्थितेति तद्धेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारः ॥२०॥ अद्युतत् अद्योतत । द्युत दीप्तौ लुङ् । 'द्युद्भ्यो लुङि' इति लुङः परस्मैपदं विकल्पेन । पुषादिसूत्रेण परस्मैपदेऽङ् । यो विजरः अखिले जगतीतले प्रसृत्वरैः विसृमरैः यशःपटैः सर्वदिग्वधूः आवृत अवृणुत । वृञ् वरणे लुङ् । अत्र निरवयवं रूपकम् ॥२१॥ जितमीनकेतुना जितमन्मथेन । आसेवि सेवितम् । षेवृ सेवने कर्मणि लुङ् ॥२२॥ स विज्वरः धनैः कुबेरीयति कुबेर इवाचरति स्म । कान्तिभिः कामीयति काम इवाचरति स्म । उपमानादाचारे इति क्यच् ।

क्वचिचेतीत्वम् । दानकर्मभिः कर्णति स्म कर्ण इवाचरति स्म । क्विबन्तः ॥२३॥ स विजरः परन्तपानि यानि ओजांसि तैरुपलक्षितोऽभूत् । अधिके तद्विषये अनुद्धतः नम्रः अभूत् ॥२४॥ असीमा महती कीर्तिर्यस्य स विजरः दिवौकसां देवानां सदसि व्यदीप्यत ॥२५॥ राजदेवनामा अननुकूलभूभुजां प्रतिकूलभूपानां शास्ता शिक्षकः सः विजरात्मजः भुवं शशास । येन महीभुजा नयेन नीत्या भुजाभ्यामर्जिता एव दिगन्तसम्पदः दिग्विभूतयः आददिरे गृहीताः । बहुसम्पदर्जकोऽभूदिति भावः ॥२६॥ तत्र वैजरौ विजरापत्ये महीन्द्रे भुवमवति सति जनाः अनीतिभाजः कुनीतिनिष्ठा न जज्ञिर इति न, अपितु जज्ञिर इति विरोधः । ईतिभाजो न भवन्तीति तादृशा न जाता इति न, अपितु जाता इति परिहारः । जनाः स्वधर्मे स्वोक्तधर्मानुष्ठाने निष्ठा आसक्तिर्येषां तथाभूता नो भवन्ति स्मेति विरोधः । सुतरां अधर्मे निष्ठा येषामिति तथाभूता नो भवन्ति स्मेति परिहारः । सदा नित्यं सदाचारे परा नाभवन्निति विरोधः । महीन्द्रे भुवं सदा अवति सति जनाः असदाचारपरा नाभवन्निति परिहारः । विरोधाभासोऽलङ्कारः । तेन परस्परविरुद्धा अपि नृपमुखदाक्षिण्येन भयेन वा एकत्र वसन्तीति नृपस्य सौजन्यातिशः सामर्थ्यातिशयो वा व्यज्यत इत्यलङ्कारेण वस्तुध्वनिः ॥२७॥ अरोगिता नीरोगता । अजनिष्ट जाता । जनीप्रादुर्भावे लुङ् । सा अरोगिता अन्यराज्ये न भवति स्म, नापि भाविनी । समाधयः योगाभ्यासाः पक्षे सम्यगाधयः ॥२८॥ विजरात्मजस्य सा स्वधर्मपत्नी कीलनाभिधं सूनुं स्वसोष्ठ सुखेन प्रासूत । षूङ् प्राणिप्रसवे लुङ् । ज्योतिश्शास्त्रद्वारा प्रसवात्प्रागपि भाव्यर्थस्य सूचयितुं शक्यत्वात् 'यशस्विनम्' इत्यादिविशेषणानि सङ्केतार्थान्येवेति ध्येयम् ॥२९॥ अमुना राजदेवेन त्रिदिवौकसा देवेन जज्ञे देवोऽभूदित्यर्थः ॥३०॥ अकीलयत् अज्वलयत् यतः, अतो नृपस्य कीलन इति नाम सार्थकमन्वर्थं

बभूव ॥३१॥ गुणाः विद्यादयः दिवसा इव औत्तरायणिकदिवसा इव । दोषगणः मृगाङ्कवत् कृष्णपक्षीयचन्द्र इव । धर्मराट् यमोऽपि । उपमा अर्थापत्तिश्च ॥३२॥ इह कीलने राज्ञि सति वेदविद्यायां वेदाध्ययने अरतिं अनासक्तिं, अां अवश्यं न आचरन्तं न कुर्वाणं लोकं परिभूय तमांसि अज्ञानानि नासिरे न तस्थुः । असगतिदीप्त्यादानेषु लिट् । नराधिपानां कुलं बलञ्च धृतासि सत् अवलम्बितखड्गं सत् नितरां रेजे ॥३३॥ दिवौकसां देवानामभिमतः यागादिशुभकर्माचरणेन देवानामिष्ट इत्यर्थः । असौ कीलनः सुपुण्यकर्मणां आवलिः पङ्क्तिः तस्या रूपं धरतीति तथाभूतां स्वस्य निःश्रेणिं अधिरोहिणीम् अधिश्रयन् अवलम्बमानः दिवं समाललम्बे आरुरोह ॥३४॥ महारथः 'आत्मानं सारथिञ्चाश्वान् रक्षन् युध्येत यो नरः। स महारथ' इत्युक्तलक्षणः कैलनिः पितुः पदं राज्यं पालयति स्म । कुशब्दस्य वाचकतायां मतद्वयम्—भूवाचकत्वं कुत्सितवाचकत्वञ्चेति । तत्र प्रथममेव मतं विवक्षितमित्याह-कुशब्देति । कुशब्दस्य भूवाचकतामते पक्षे कुशब्दपूर्वां तिलकेत्यभिधां लब्धवान् । कुतिलक इत्यन्वर्थनामाभूदित्यर्थः ॥३५॥ भुजेन उद्वाहितं पालितं भूमिमण्डलं यैस्तादृशान् अनतानपि क्षमाभुजो राज्ञः नतानकार्षीत् जिगायेत्यर्थः । एतस्य कुतिलकस्य दानितां विलोक्य स्थितस्य पुंसो दृष्ट्या ऐलबिलस्य कुबेरस्य दानिता का न कापीत्यर्थः । महादानी चायमभूदिति भावः ॥३६॥ रणे हताः मृताः रणोद्भटाः भटाः योद्धारः भटोभिः सहसा त्रिविष्टपं स्वर्गं हता एव जग्मुरेव, हनधातोः गत्यर्थकत्वात् । हिताः हि ताः इति छेदः । हिताः हितकारिण्यः उत्स्मितानना: उद्गतस्मितमुख्यः ताः त्रिविष्टपीया वनिताः रम्भाद्याः मन्दरागात् न अगुः न प्राप्ताः भटानिति शेषः । इण् गतौ लुङ् ॥३७॥ कैलनौ कुतिलके पुण्यवशेन दिवं गते सति प्रतापवान् कौतिलकिः पित्र्यं पदमलब्ध प्राप । सः कौतिलकिः योनशीति संज्ञामवाप ।

यतः सः नशनेन नाशेन ऊनितः अतोऽन्वर्थसंज्ञोऽभूदित्यर्थः ॥३८॥ मही पृथ्वी महीयसा अतिमहता महीभृतृणां राज्ञां महांसि तेजांसि अपहरतीति तथाभूतेन, भुजङ्गराजात् शेषात् अधिकवीर्येण शालत इति तथाभूतेन कौतिलकेन भूभुजा महीनेन मह्याः भूम्याः इनेन स्वामिना महीयसी अतिमहती अभूत्तमाम् जाता। यमकानुप्रासौ ॥३९॥ अमलकर्मा शुद्धक्रियः। अर्चनीयौ अङ्घ्री पादौ यस्य सः यौनशिः। अवदातैः पुण्यैः कर्मभिः ॥४०॥

पञ्चमस्सर्गः

अनाश्यं नाशयितुमशक्यम्। पितुः यौनशेः राज्यं अगमत् लेभे। यः यौनशिः येन कारणेन पितुस्सकाशात् स्वोदयमकार्षीत् तस्मात्कारणात् लोके ख्यातिमन्वर्थतया प्रसिद्धिं भजते तथोक्तमभिधानम् उदयकरण इति नाम अलभत किल ॥१॥ अवनिनाथा देशान्तरीया राजानः आत्मव्युदासात् स्वस्वपुरेभ्यः आत्मोच्चाटनाद्धेतोः उदयकरणं उर्वीवासवं वासहेतोः नाथं स्वामिनं व्यदधुः शरणागता बभूवुरित्यर्थः। यौनशिः तेभ्यः निवसतिं वासस्थानम् अदित दत्तवान् ॥२॥ जनितानि अनुष्ठितानि लोकख्यातानि कर्माणि यया सा। सुतरां शर्माणि मङ्गलानि यस्यास्सा। सम्यगनुदिताः अनुत्पन्नाः विधर्माणो यस्यां सा। भुवि अमुष्य क्ष्मापतेः परिषद् सभा सुधर्मां देवसभां उच्चैरभिभवपथं लम्भयित्वा प्रापय्य द्वितीया अजनि जाता ॥३॥ बहुना भुजयोर्बलेन शालत इति बहुभुजबलशाली। शालिकेदाराणां व्रीहिक्षेत्राणां दारैः तत्सम्बन्धिनीभिः स्त्रीभिः ॥४॥ स्वःपदं स्वर्गम्। तदुदितजनिः तस्मादुदिता उत्पन्ना जनिः जन्म यस्य सः नृसिंहः ॥५॥ बाललीलासु सक्तो यः

नृसिंहः प्रबलमपि रिपुबलं प्रसह्य बलात् अबलीयः निर्वीर्यं चकार। अबलमपि अद्भिः अलं पूर्णमपि पयोधिं समुद्रं, दानपाथःप्रवाहैः दानार्थं ये पाथसां जलानां प्रवाहास्तैः, दानस्य पाथसां प्रवाहास्तैश्च अनबलं नाद्भिरलं रिक्तं, अम्भोभिर्दरिद्रं मरुं, अम्भःपूर्णं वा अकृत। समुद्रादुद्धृत्योद्धृत्य मरौ प्रवर्तनेन युक्तैव तयो रिक्तपूर्णतेति भावः। अनेन राज्ञो दानातिशयो ध्वनितः ॥६॥ नरपतिपतिः नृसिंहः सन्नतान् अनुकूलान् राज्ञः आधिपत्यं स्वातन्त्र्यम् ऊहे प्रापयामास। वहप्रापणे लिट्। प्रतिविधिः प्रतिकूलः यो विधिः कर्म तस्य कर्तॄन् राज्ञः आहृतस्वामिभावान् चक्र इति शेषः। अनयवर्तिषु कुमार्गस्थेषु जनेषु प्रापितं आशासनं येन तथोक्तस्य यस्य नृसिंहस्य एकमेव भवनं त्रिभुवनमिव स्वमृर्त्युपातालत्रयमिव आसीत् ॥७॥ हताः रिपवो यस्य तादृशं निजपदं वनवीर इति आख्यातिराख्या यस्य तादृशाय सूनवे संवितीर्य दत्वा दिवि स्वर्गे दिविषद् देवो जज्ञे जातः। मृत इत्यर्थः ॥८॥ कान्तारगाणां भयाद्वनचरीणां निजरमणीनां स्त्रीणां आस्यचन्द्रान् अपश्यन् अवनिपालाः ॥९॥ रणमध्ये नृसिंहे निजचापं विधुवति सति अपयातप्रभाणां भयान्निष्प्रभाणां नरपतीनां सिंहनादोऽप्यपास्तः। सिंहनादञ्च विदधति कुर्वति सति गजासिंसहशङ्कया अपसृतिं पलायनं व्यधुः चक्रुः ॥१०॥ भूमिपालो वनवीरः स एवार्कः सूर्यः तस्य बिम्बे असिता नीला या घनानां मेघानां घटा समूहः तस्या आभेव आभा येषां तथोक्ता ये इभाः गजाः तेषामालिभिः पङ्क्तिभिः भीमे भयङ्करे रणान्ते समुदयमुपयाते सति रिपुजनवनितानां आननान्येवानुष्णभासः चन्द्राः हततनवः निष्प्रभाः आसन्, अर्कः तत्त्वेनाध्यवसितः शत्रुप्रतापः अस्तं यातवान् ॥११॥ यस्य वनवीरस्य प्रतापः तपसमये ग्रीष्मसमये समुन्नमुत्पन्नं तपनं सूर्यमपि तताप तापयामास। एषः तपनः अखिलं भुवनं आगः अपराधं अन्तरापि

विनापि प्रकामं ज्वरयति तापयति । अत इत्थमेव भूभुजां दण्ड्यः ॥१३॥ यः उद्धरणः । अन्यत्र वासो येषां तानपि यमसदनमनयत् । नैशमपि निशि भवमपि । अनेन परकीयवसतिस्थमपीति सूचितम् ॥१४॥ यः उद्धरणः अरिम् अनरिमरिभिन्नमकार्षीदिति विरोधः । अनुकूलमिति परिहारः । विपन्नं विपत्तियुतं तदन्यमविपन्नमिति विरोधः । परिहृत-विपत्तिकमिति परिहारः । अहौषीत् जुहाव । हुदानादानयोः लुङ् । स्वपथचरं स्वमार्गगामिनम् अपात् अरक्षत् । पा रक्षणे लङ् । 'गतिस्थे'-ति सिचो लुक् । परिखावदाचरिताः परिखिताः पाथोराशिकाः समुद्राः यस्यास्तस्यां भुवि तत्तुल्यता राज्ञस्साम्यं केन जनेन लेभे । न केनापी-त्यर्थः ॥१५॥ त्रिदशैः देवैः परिवृढः इन्द्रः तत्प्रमुखैर्देवैः गीयमाना उर्वी विपुला कीर्तिर्यस्य सः । प्रपेदे प्रपन्नः ॥१६॥ सः चन्द्रसेनो नरेन्द्रः पितुरधिकं यथा स्यात्तथा अपारीत् पालयामास । पॄ पालनपूरणयोः लुङ् । प्रतिनृपतिजनानां शत्रूणां पत्तनानि जनविजनभावं जनराहित्यमनयत् ॥१७॥ चन्द्रसेने अधिपाणि पाणौ । विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः । भुवनभारं दधति सति । उद्योगरूपं कर्म येषां तादृशा एव । धरणिः उद्योतीनि उज्वलानि यानि माणिक्यादीनि रत्नानि तद्रूपं वसु असूत सुषुवे ॥१८॥ अधिपतिजाया चन्द्रसेनपत्नी सुतमसूत । सर्वं त्रिभुवनमपि कर्तृ, विनीतं विनयसम्पन्नं चान्द्रसेनिं पृथ्वीराजनामानमाह व्यवजहार । यतः त्रिभुवनं निवसितगुणि निवसन्तीति निवासाः पचाद्यच् । तादृशाः कृताः निवसिताः करोत्यर्थकणिजन्तान्निष्ठा । तथोक्ताः गुणिनो यस्मिन् तत् ॥१९॥ क्षमतमम् अत्यन्तसमर्थं सुतम् । अवनिनाथः अतमाः तमोगुण-रहितः, नीरजाः रजोगुणरहितः, सत्वगुणयुक्तश्च सन् त्रिदशपरिष-दन्तः अगमत् ॥२०॥ आवीत् ररक्ष । अवरक्षणे लुङ् ॥२१॥ यः पृथ्वीराजः स्वैः असाधारणैः अवदातैः शुद्धैश्च अनुष्ठितैः कर्मभिः कुलं

स्ववंशं असुकुलयत् सुकुलमकरोत् । अजय्यं नास्ति जयो यस्य तमजय्यमित्यर्थः । पक्षपातैः साहाय्यैः अबलं निर्बलं अबलयत् बलवन्तमकरोत् । समदं साभिमानं अदमयत् शिक्षितमकरोत् ॥२२॥ यः पृथ्वीराजः अचलं दृढं अचलयत् प्राभ्रंशयत् । चलकम्पने लङ् । अतलम् अप्रतिष्ठितम् अतलयत् प्रतिष्ठापयामास । तलप्रतिष्ठायां लङ् । अतुलम् अनुपमम् अतुलयत् सदृशीचकार । अनम्रम् अनम्रम् अनमयत् नम्रीचकार ॥२३॥ सतां सत्पुरुषाणाम् अनुकरणेन लब्धया ख्यात्या धन्यस्य पृथ्वीराजस्य ॥२४॥ उदिततमजन्मा उदयेऽतिशयश्च सर्वेषां सुखावहत्वात् ॥२५॥ भारमल्लाभिधाने नरेन्द्रे भुवमवति सति समन्तात्सर्वतः वदनान्येव हिमकराश्चन्द्राः तेषां आभाभिः कान्तिभिः भासमानाः शोभमानाः, अन्यत्र वदनतुल्यहिमकरस्य आभया भासमानाः । विशदाः स्वच्छाः धवलाः श्वेताः ये मुक्ताहाराः त एव ताराः नक्षत्राणि तेषां आलिभिः भासन्त इति तथोक्ताः वध्वः स्त्रियः रजनय इव रेजिरे । एताः रजनयः ता इव वध्व इवरे जिरे । अत्र रूपकोपमयोरेकवाचकानुप्रवेशस्सङ्करः । ताभ्यामुपमेयोपमा सङ्कीर्यते ॥२६॥ गुरूणां भजनं सेवनं तेन समस्तं यथा स्यात्तथा प्राप्तो विद्याया विनोदो येन तथोक्ते । सद्भिः पुरुषैः अनुचरितानि अनुष्ठितानि यानि कर्माणि तेषामाचारेण अनुष्ठानेन निमित्तेन शिष्टालिषु शिष्टपङ्क्तिषु श्रैष्ठ्यं येन तथोक्ते । उपचितः वर्द्धितः विभवः वैभवं येन तथोक्ते । नित्यधर्मैः नित्यकर्मभिः अपचितः क्षीणः दुरितानामोघो यस्य तथोक्ते क्ष्मामहीन्द्रे भारमल्ले भूमण्डलं शासति सति, विदलितानि विकसितानि धवलाभांसि श्वेतकान्तीनि यानि मल्लिकापुष्पाणि तानि बिभर्तीति तथा । 'सुप्यजातौ' विति भृञो णिनिप्रत्ययः । अतिदृढानि बहुबलवन्ति स्थूलवासांसि विजहत् त्यजन् , गन्धोदकैः शिशिराणां गृहाणामन्तः यद्वसनं तत्सम्बन्धि तस्येदमित्यण् । औचित्यं

करोति साधयतीति तथोक्तः जनः। तत्र वसन्नित्यर्थः। आतपानेहा ग्रीष्मः तत्सम्बन्धी आतपानेहसीयः दिवस इव अभात् बभौ। पूर्णोपमा ॥२७,२८॥ धर्मकर्मानुवृत्तौ धर्मकर्मानुष्ठाने असीदन् अनुद्स्यन् भारमल्लः हतनयं गतनीतिकं पुरुषं यमसदनमनयत्। अत्र यमसदनशब्दो दण्डे उपचर्यते। जनः निजचित्ते एष राजा कलियुगमपि पूर्णं सत्यं सत्ययुगमवतेने चकार इति प्रकामं शङ्कते स्म ॥२९॥ यः भारमल्लः सुकृतविनयभाजः पुरुषान् उपचक्रे उपकृतवान्। हतं त्यक्तं निजं स्वकीयं सुकृतं पुण्यं यैस्तादृशानां स्वद्विषां शत्रूणां सम्बन्धसामान्ये षष्ठी, अपचक्रे अपकृतांश्चकार। अधियज्वा अधिक विधिनेष्टवान् अकृशीयान् पुष्टः शिवाराधनलब्धमनोरथः अधिवभवं प्रचुरदक्षिणं क्रतुशतं किं न चक्रे अपि तु चक्रे ॥३०॥ भूपो भारमल्लः निजनिजरुचिभिः स्वस्वलावण्यैः शोभया कान्त्या दर्पिणी सगर्वा या कन्दर्पपत्नी रतिः तस्या यो विजयः तिरस्कारः तेन जनितं उत्पादितं यच्चित्तौद्धत्यं तेन सम्यक् शालिनीभिः सुरवनिताभिरस्पृह ॥३१॥ भगवदिति पदं प्राग्वर्ति पूर्ववर्ति यस्य तादृशो यो दासः भगवद्दासः इत्यभिधानं यस्य तादृशः धरणिमरत्नत्। यः भगवद्दासः निजं नाम स्वां भक्तिं आतन्वतां कुर्वतां तु पुंसां अजनिकरे अजन्मसम्पादके मुक्तिप्रद इति यावत् भगवति परमेश्वरे परभक्त्या परमया भक्त्या दासत्वप्रयोजिकया युक्तं व्यधात् अन्वर्थमकरोत् ॥३२॥ आहताः मारिताः द्विषितोकाः शत्रवः येन तादृशो यः भगवद्दासः रिपुजनवनिताः शत्रुस्त्रियः वैधवेयीं विधवासम्बन्धिनीम् स्त्रीभ्यो ढक्। अतुलपरमशोभामनैषीत् प्रापयत् ॥३३॥ उदिताः दीप्तिसमृद्धाः खरास्तिग्माश्च अंशवः किरणाः यस्य सः सूर्यः यामिनी रात्रिः तस्या यामाः प्रहराः तेषां मध्ये अवतमसेन अवहीनं तमः अवतमसः 'अवसमन्धेभ्यस्तमसः' इत्यच्। तेन निगीर्णं ग्रस्तं जगत्

कल्ये प्रभाते आशु द्योतयति यथा तथा उदयमधिगतो यः भगवद्दासः सर्वं जगदुल्लासयामास । उपमा ॥३४॥ येन भगवद्दासेन दुःखेनाधिगन्तुं शक्यं दुरधिगमं वस्तु अलम्भि लब्धम् । स राजा प्रतिनृपतिजनेभ्यश्शत्रुभ्यः असून् प्राणान् अदित ददौ । असुभ्यः अभयम्, तस्मै अभयाय स्वानुकूले निवासं स्थितिम्, तस्मै स्वम्, स्वात्मने लाघवं लघुत्वं अदात् । एकावल्यलङ्कारः ॥३५॥ शिवा पार्वती । गुहमिव कार्तिकेयमिव । पुलोमजैव पौलोमजा स्वार्थिकाणन्तोऽयम् इन्द्राणी । स्वरधीशितुः इन्द्रात् सजयं जयिनम् जयन्तं तनयमिव सुतमसूत । उपमयोस्संसृष्टिः ॥३६॥ सुतोत्पत्तिः श्रुतिरिव पन्थाः यस्यास्तादृशी कृता श्रुता सती । अर्थान्तरन्यासालङ्कारः ॥३७॥ आशाः दिशः । हविर्भुक् अग्निः । हरिदश्वमण्डलं सूर्यमण्डलम् ॥३८॥ कर्मकाण्डस्य श्रौतस्मार्तविधिशास्त्रस्य परं पारं गतेन पुरोहितेन । नीहारेण हिमेन मुक्तं वपुर्यस्य तादृशेन उष्णाकरेण सूर्येण । उपमालङ्कारः ॥३९॥ यतः यस्मात्कारणात् मानेन गर्वेण सिंह इवातिरेजे बहु शुशुभे अमुतः अस्मात्कारणात् नाम मानसिंहेति नाम रूढं अव्युत्पन्नं नासीत् किन्तु यौगिकमेवासीदिति भावः ॥४०॥

षष्ठस्सर्गः

संख्येषु युद्धेषु । सुसंस्कृतिभिः जातकर्मादिसंस्कारैः समृद्धिमत् ओजो वीर्यं यस्य तं पुत्रं मानसिंहम् ॥१॥ इतः एकविंशतिश्लोकपर्यन्तं मानसिंहवर्णनम् । यस्य मानसिंहस्य कीर्तिः, परावराः समुद्राः तेषां अन्ते अवसानप्रदेशे ये विषयाः देशाः तेष्वपि । परिषदन्तः सभामध्ये । पाण्डित्येन शोभत इति पाण्डित्यशोभिनी या जनता तस्याः आनने वसंत इति तथोक्ता वाग्देवतेव सरस्वतीव । उपमा अतिशयोक्तिश्च ॥२॥

यस्य मानसिंहस्य यशसि दिक्षु वितत्य प्रसृत्य वृत्ते सति केदारिकैः कर्षकैः 'तेन जीवती'ति ठक्। धान्यानि परिपाकबुध्या लुलुविरे छेदितानि। लूञ् लवने कर्मणि लिट्। अपायि पीतम्। पा पाने कर्मणि लुङ्। अत्र भ्रान्तिमदुपमे अलङ्कारौ ॥३॥ नयनाभिरामा कीर्तिः अनुरूपमपि सुधांशुबिम्बं चन्द्रं कलङ्कितं सञ्जातकलङ्कमवेक्ष्य नो भेजे पतित्वेन नाकल्पयत्। मध्य एव तमुज्झित्वा पुरोगन्तुं प्रवृत्ताभूदिति भावः। उपोढसन्मार्गया स्वीकृतपातिव्रत्यया नृपस्य तनयया सदृशी सा कीर्तिः इति शेषः, तं क्षीरनिधिं समुद्रमुपेत्य भजति। तत्पर्यन्तं विस्तृतेत्यर्थः। राजकन्या यथा योग्यं वृणीते तद्वदेषापीत्युपमालङ्कारः ॥४॥ वलक्षा धवला कीर्तिः पातालमाप्य सकलानुरगान् सर्पान् स्वा असाधारणी स्वामिनः शेषस्य भासुरा दीप्ता भञ्जभासेति घुरच् प्रत्ययः। या रुची श्वेतकान्तिः तया रुचितान् दीप्तान् श्वेतानित्यर्थः। उभयेषां शेषस्यान्येषाञ्च भेदमतिं फणानां संख्यैव सहस्रात्मिका आतनुत चकार। फणाकृत एव भेदो न वर्णकृत इत्यतिशयोक्तिः ॥५॥ धवला कीर्तिः विचित्रमपि नानावर्णमपि सरोजवनं कमलवनं-एतत्पुण्डरीकं सिताम्भोजं अत्र भूमौ चकारादन्यत्रापि हरेः नेत्रे तद्विषये उपमितेः उपमानत्वस्य परमात्मनः पुण्डरीकाक्षत्वादिति भावः। अद्वैतभावरूपं फलम् एयात् प्राप्नुयात् आङ्पूर्वकादिणो लिङ्। इत्थं चित्ते विचार्य किं धवलमकरोत् ? अत्र असिद्धिविषया हेतूत्प्रेक्षा तत्सङ्कीर्णातिशयोक्तिश्च ॥६॥ यस्मात्कारणाद्विधोः चन्द्रस्य बिम्बं अधिदिनं दिने न चकास्ति न प्रकाशते। पूर्णं सत्तूर्णं शीघ्रं अनङ्गतायै स्वरूपनाशसम्पादनार्थं देहं मण्डलं विचूर्णयति क्षीणयति। एवं विभाकरस्य सूर्यस्य करैः हस्तैः किरणैश्च उपहन्यमानं ताड्यमानं निष्प्रभीक्रियमाणञ्च भवति। तेन कारणेन यो मानसिंहः महता नोपहतां, नहीनां नक्षीणां नञ्शब्देन सुप्सुपेति समासः। कीर्ति-

मसृजत् ससर्ज। अत्र गम्योत्प्रेक्षाव्यतिरेकौ ॥७॥ राज्ञस्सुतेन मानसिंहेन जन्याङ्गणे रणभूमौ प्रतीपनृपाणां शत्रूणां पूर्णसुधांशुमुख्यः स्त्रियः भर्तुः पत्युः वधेन निमित्तेन तापं भजन्तीति तादृशाः विदधिरे चक्रिरे अनुकूलाः पुरुषाः दधिरे स्वीचक्रिरे इत्यर्थः। वृत्त्यनुप्रासो यमकश्चालङ्कारौ ॥८॥ यस्य मानसिंहस्य विक्रमः, हरितां दिशां अन्तेषु गच्छन्तीति तथोक्तानां सरितां नदीनां कूलानि तटानि कषति लक्षणया व्याप्नोतीति कूलङ्कषः। 'सर्वकूलाभ्र'ेति खश्। अरुर्द्विषदिति मुम्। तथाभूतोऽपि उच्चैस्तटान्तः तटमध्ये स्थितां सोपानपङ्क्तिमधिकृत्य आश्रित्येत्यर्थः। प्रकामं अत्यन्तं वितताः विस्तृताः अभितो हतानि लब्धप्रतिघातानि शन्यम्बूनि तानि धरन्तीति तथाभूतास्सरितः कूलङ्कषेतरतया कूलङ्कषभिन्नत्वेनोपलक्षिता अतनुत चकार। इं कामं तरन्तीति इतराः जितेन्द्रियाः। कूलङ्कषाः अनवरतकूलवर्तिनः इतराः यासां तासां भावस्तयेति परिहारः। मानसिंहस्य प्रतापेन निरुपद्रवेषु सरित्तीरेषु योगिनो वासं चक्रुरिति भावः। अत्र विरोधाभासालङ्कारः ॥९॥ साशा दिक् का अर्जानि यस्याः दिशः आशां मनोरथं कृपयैव एष जनाधिपसूनुः मानसिंहः प्रकामं यथेच्छं नापिपः नापूरयत् पृ पालनपूरणयोर्लङ्। अपिपः अपिपूर्ताम् अपिपरुः। अपिपः अपिपूर्तं अपिपूर्त। अपिपरं अपिपूर्व अपिपूर्म। इति रूपाणि ॥११॥ मानसिंहः अर्थिषु याचकेषु नकारकारी नैवाभूत्। हि यतः तेषामिष्टस्य पूर्तौ क्षमतमः अतिसमर्थः ॥१२॥ नानाविधानविषयेषु विविधदेशेषु समुद्भवानां जनानां तमांसि अज्ञानानि ससौ न्यवर्तयत्। षोऽन्तकर्मणि लिट् ॥१३॥ अनुकूलानां पुरुषाणां परितापस्य दुःखस्य हरौ हारिणि अमुष्य मानसिंहस्य पादयुग्मे को नाम नमनं नो आतनुत अपितु सर्वोऽपि। अत्र दृष्टान्तः नव्येति ॥१४॥ जलधावपि समुद्रेऽपि। अवहेलना अनादरः। योऽसौ समुद्रः। तथाविधोऽपि

गम्भीरोऽपि । व्यतिरेकालङ्कारः ॥१५॥ निगमतत्त्वस्य वेदतत्त्वस्य विचारे दक्षस्समर्थो मानसिंहः । उत्कटाभिः दक्षिणाभिः इद्धैः क्रतुभिः जम्भद्विषं इन्द्रमयजत् । वर्षैः वर्षणैः । परस्परोपकारलक्षणोऽन्योन्यालङ्कारः ॥१६॥ प्रथिमानं विख्यातिम् । सनीरं ससङ्कल्पजलं वसु धनम् 'न विद्यया केवलया तपसा वापि पात्रता । यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रं प्रचक्षत' ॥ इत्युक्तलक्षणानां पात्राणां अर्प्यमाणं दीयमानं सत् यां प्रसिद्धिं सम्पादयति सा प्रसिद्धिरन्यलभ्या न भवति । व्यतिरेकालङ्कारः ॥ ७॥ अर्थिजनाय याचकजनाय धनं ददातीति धनदः य एव मानसिंह एव मुख्यः आसीत् । यः लोकपः लोकपालो धनदः कुबेरः नायं मुख्योऽस्ति । उत्प्रेक्षा ॥१८॥ यं मानसिंहं अन्तरा विना । पुरतः अग्रे । अतिशयोक्तिः ॥१९॥ इतरेण असुकरैः परेण दुष्करैः आराधनैः आराधनोपायैः देवीमाराधयन् सेवमानस्सन् आत्मीयदृग्विषयतां साक्षात्कारमनयत् ॥२०॥ वरेण्यं श्रेष्ठम् । वरेण्याः श्रेष्ठाः । अरुचत् अद्योतत । रुच दीप्तौ लुङ् । द्युतादित्वात्परस्मैपदम् अङ् च । अन्योन्यालङ्कारः ॥२१॥ अधिके वस्तुनि दृष्टे सति अनधिकवस्तुनि न्यूनपदार्थे या दुर्मतिः अनादरात्मिका बुद्धिः सोऽयं स्वभाव इव ॥२२॥ मदनात् अधिकं रूपं यस्य सोऽयं नराधिपसुतो मानसिंहः । सयौवना यौवनसहिताः अतएव मदोत्करेण कर्बुराः कलुषितास्तथोक्ताभिः पत्नीभिः । स्वः स्वर्गस्य वामाः सुन्दर्यः वामनयना अप्सरसस्ताः उपभुञ्जतीनां देवतानां भोगान् अभुक्त बुभुजे ॥२३॥ कामागमेषु कामशास्त्रविषयेषु परिपूर्णविबोधशाली निष्णातः उदारशीलः अकृपणः कुमारो मानसिंहः शम्बरसुरारेः दैत्यस्य हरं नाशकम् कामम् उन्नततराभिरुत्कृष्टाभिः केलिभिः रतिभिः आनन्द एव मन्दिरं तत्र निवासेन विशालमोदं प्रचुरहर्षं चक्रे । परिकरालङ्कारः ॥२४॥ उज्ज्वलो महीयान् मानसिंहः उच्चतरमत्युच्चं शारदस्य सुधाकरस्य शरत्कालिक-

चन्द्रस्य रश्मिभिः शुभ्रं प्रासादमारुह्य नानाविधैः अप्रतिमैः बहुमूल्यैर्भूषणैः भूषितान्यलङ्कृतानि अङ्गानि यस्य तथोक्तः । कान्तानां कृताभिषेकाणां वधूनां सखा कान्तासखः राजाह इति टच् । विहरन् क्रीडन् सुरवद्रराज । उपमालङ्कारः ॥ २५॥ ऊष्मणा ऊष्मोपचारेण निवृत्तं हैमं हिमजन्यदुःखं यत्र तादृशं गर्भगृहं गृहान्तर्गतं गृहम् । हरिणेव इन्द्रेणेव व्यधायि चक्रे । कर्मणि लुङ् । उपमा ॥२६॥ सङ्कल्पितं कृतम् । पर्यङ्कं शयनम् ॥२७॥ स कुमारः । अम्बुयन्त्रेभ्यः जलयन्त्रेभ्यः परितो निस्सरद्भिरम्बुभिः शीतम् । मन्दैः समीरस्य वायोः यातैश्चलनैः शैत्यं नीतं, नानामहीरुहाणां वृक्षाणां सभा पङ्क्तिः तया घनताधियायिनी सघना छाया यस्मिन् तद्वनं आश्रितस्सन् विहारमकरोत् ॥२८॥ वर्षासु वर्षाकाले 'स्त्रियां भूम्नि वर्षा' इति स्त्रीलिङ्गो बहुवचनान्तश्च वर्षाशब्दः । गर्जीरवैः गर्जनाशब्दैः । वर्षति सति । आरामहर्म्यम् उपवनप्रासादम् । यां मुदमवाप तां कोऽपि नवाप भागुरिमते वस्याकारलोपः ॥२९॥ दारैः स्त्रीभिस्सहितः सदारः । चैत्ररथे तत्संज्ञके वने । मालोपमालङ्कारः ॥३०॥ कापि नाम्ना कनकावतिका साध्वी या तस्य वधूरासीत् सेयं शरद्भिर्भूपैः पञ्चद्विषोडशैः १६२५ परिमिते संवत्सरे विमलोर्जमासे कार्तिकमासे सितस्य शुक्लपक्षस्य पुरतः आरम्भे स्थितिभाजि स्थितायां तिथ्यां प्रतिपदि सुतमसूत ॥३१॥ जगत्यां भुवि प्रथितं प्रसिद्धम् । पूर्वभागे संस्थितं जगत्पदं यस्य तादृशो यस्सिंहः जगत्सिंह इति नाम आप ॥३२॥ अग्रयायी पुरस्सरः । ताते पितरि मानसिंहविषये विनयेन वृत्तिं चकार विनयेनैव व्यवजहारेत्यर्थः ॥३३॥ इन्द्रः देवारिभिः दैत्यैः वारितं अपाकृतं बलं वीर्यं यस्य तादृशस्सन् । व्यतिरेकालङ्कारः, वीर्यात्युक्तिर्वा ॥३४॥ आयोधनेषु युद्धेषु शमनः यमः । पापेषु शङ्कितमतिः भीरुः । वत्सलतरः अतिदयालुः । विषयभेदेन बहुभेदोपश्लेषनात्मकः

उल्लेखालङ्कारः ॥३५॥ गाधभावं अतिक्रान्तादतिगाधभावात्। उत्प्रेक्षा काव्यलिङ्गञ्च ॥३६॥ कृपीटयोनेः अग्नेः विभवस्तु शक्तिस्तु प्रणयी मित्रं कम्पनो वायुः तत्सङ्गतस्य संसर्पति प्रवर्तते। तन्वां शरीरे भवस्य क्षेमवतः आधिव्याधिरहितस्येत्यर्थः । असहायविभवस्य सहायरहितपराक्रमस्य यस्य जगत्सिंहस्य वीर्यं अभितः ससार, न तु अग्नेरिवोर्ध्वम् इति भावः । व्यतिरेकालङ्कारः ॥३७॥ द्राघीयसः अत्यन्तदृढस्य । दृढशब्दस्य द्राघादेशः । अस्य जगत्सिंहस्य भुजदण्डजविक्रमः आसमन्तात् धीराणां नीरधीनां समुद्राणां चतुष्टयस्य सीमसु मर्यादासु विश्रान्तिभागभूत्। तत्र गत्वा स्थित इत्यर्थः। भजनेन परमेश्वरसेवया प्राप्तमहर्द्धिना अस्य सुतेन मानसिंहस्य पुत्रेण साम्यं को नृपसुतः प्राप्नुयात् ॥३८॥ वार्मुकः वर्षणशीलः सगर्जनश्च गर्जनसहितश्च मेघसङ्घः। यः जगत्सिंहः। अधिरणं रणे । शिलीमुखानां बाणानाम् ॥३९॥ ताते मानसिंहे, प्रवृद्धे बहुवर्षीयसि तत्पितरि पितामहे भगवद्दासे च जीवति सत्यपि। अतिबुद्धिशाली पुमान् 'दारिद्र्यमनपत्यत्वं रुग्णत्वं मरणं तथा। पुमानत्यन्तमेधावी चतुर्णामेकमश्नुते' इति वचनाच्चतुर्णां मध्ये एकमन्यतममनुभवति। वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारः ॥४०॥ संगाहितुं उत्तरीतुं नैवाशकत् न समर्थोऽभवत् । शक्लृशकौ लुङ् ॥४१॥ तस्य जगत्सिंहस्य आत्मजं सुतं महासिंहम् । अर्थान्तरन्यासालङ्कारः ॥४२॥ बलिनं वीर्यवन्तम्। बलिनं सैन्यवन्तञ्च ॥४३॥ निम्नोन्नतेषु स्थलेषु प्रधीनां चक्रधाराणां निपातेन विचूर्णा सम्यक्पिष्टा या भूमिः तस्यास्सकाशात्सम्प्रोल्लसद्भिः प्रोत्तिष्ठद्भिः घनैः सान्द्रैः रजोभिः धूलिभिः परिमण्डिता आवृता आशा दिशो यैस्तथोक्ताः। वेगेन जवेन निमित्तेन उद्धते विकटे ध्वनौ विषये घनस्वनबुध्या मेघशब्दभ्रान्त्या नृत्यन्तो बर्हिणां मयूराणां व्रजाः समूहाः यैस्तथोक्ताः घनरथाः दृढरथाः अधिजग्मुः ॥४४॥

प्रोत्तुङ्गा अत्युन्नताः मत्ताः मदशालिनः, समलङ्कृताः धृतभूषणाः मेचका नीला आसमन्तात् भा येषां ते एवंभूताश्च ते मातङ्गराजानां गजेन्द्राणां निवहाः समूहाः कर्तारः । स्वराधिपस्येन्द्रस्य आयुधेन धनुषा भूषिताङ्गाः प्रयान्तः प्रचलन्तः, वर्षे वर्षणे उद्धताः प्रगल्भाः, उद्धतायाः चमत्कृतिप्रगल्भायाः तडितः विद्युतः द्युतिभिः शोभिनश्च मेघसङ्घा इव प्रबभुः । पूर्णोपमालङ्कारः ॥४६॥ निस्त्रिंशिनः खड्गवन्तः ॥४७॥ स राजा भगवद्दासः । संवाह्यमानं सञ्चाल्यमानं स्यन्दनं रथम् ॥४८॥ स बलौघः सैन्यसमूहः । क्षमायाः भूमेः उत्थैः उत्थितैः घनैः निबिडैः रजोभिः, स्थगितः निह्नुतः भानोः कराणां प्रचारः प्रसरणं येन तथाभूतस्सन् रोदसी द्यावापृथिवी विगतभेदगुणे विगतो निवृत्तो भेदरूपगुणो ययोस्ते अभिन्ने इत्यर्थः । अकरोत् किम् ? सम्भावना । उच्चानि पदानि अवाञ्चि निम्नानि, अन्यानि अवाञ्चि अन्यानि उच्चानि च विदधे चकार ॥४९॥ समनीनहत् सन्नद्धीचकार ॥५०॥ द्राक् शीघ्रम् । पूर्णोपमालङ्कारः ॥५१॥ रविचक्रवालं सूर्यमण्डलम् । भटानां योधानां शिरांस्येव कमलानि तेषामावलयः पङ्क्तयो यासु ताः न धृतश्चेति कप् । यमकं वृत्त्यनुप्रासश्चालङ्कारौ ॥५२॥ नभोगा नभश्चरी काचित्कान्ता । अत्र रणे । यन्त्रा गजारोहेण । अति तीक्ष्णानां शराणां बाणानां ओघेन कृत्तः छिन्नः मूर्धा यस्य तादृशं गजस्थं पुरुषं परिलभ्य प्राप्य, तं कान्तभावमुपनय्य प्रापयित्वा जगाम । अस्य गजस्थपुरुषस्य पतितं अपघनं अङ्गं गां भुवम् अध्याशिश्रिये अधः पतितमित्यर्थः ॥५३॥ गन्धर्वगाः अश्ववाराः । रूपकसन्देहोत्प्रेक्षालङ्काराः । अत्र यद्यपि विरुद्धरससमावेशः प्रतीयते, तथापि 'स्मर्यमाणो विरुद्धो यः साम्येनाथ विवक्षितः । अङ्गिन्यङ्गत्वमाप्तौ यौ तौ न दुष्टौ परस्परम्' इति प्रकाशोक्तरीत्या न दोषः ॥५४॥ रथा अपि रथिस्थोपचारेण रथिनोऽपीत्यर्थः । लड्डू युद्धं

व्यधुः गदाभिरयुध्यन्तेत्यर्थः ॥५५॥ समिद्धरणौ रणभुवि वीरतमः प्रगल्भतमः, तरस्वी बलवान् अम्बिकापुरपतिः भगवद्दासः, तेन गुर्जराधिपेन सह, प्राक् पूर्वं अर्जुनयशाः श्वेतकीर्तिः तपसा कृशाङ्गः अर्जुनः पाण्डवः कैरातकीं किरातसम्बन्धिनीं तनुं विदधता शिवेनेव युयुधे। पूर्णोपमा ॥५६॥ प्रतिघेन क्रोधेन तप्तः असौ भगवद्दासः। बुधः पण्डितः। सुतीक्ष्णैः अतिगहनैः, निगमगैः वेदशास्त्रगतैः विषयैः, वाद्यन्तरस्य प्रतिवादिनः वचनानि यथा छिनत्ति तद्वत् शत्रोः बाणौघमच्छिनत्। उपमा दृष्टान्तो वालङ्कारः ॥ ५७ ॥ आत्मनीनां आत्मने हिताम्। प्रवासयितुं प्रेषयितुं योग्या प्रवास्या सा चासौ तनुशक्तिश्च ताम्। प्रजिघाय प्राक्षिपत्। हिगतौ लिट्। पूर्वोत्तरार्धयोरुत्प्रेक्षोपमे ॥ ५८ ॥ तस्यावनीमववतः भगवद्दासस्य लघीयान् मानसिंहापेक्षयास्य बहुवयोन्यून त्वेन अतिशयार्थकेयसुन्नन्तत्वनिर्देशः ॥ ३१ ॥ व्यूढा नवपरिणीता वधूः भययुतैः लोकैः श्वशुरादिभिः प्रथममेव पतिं प्रति गमनात्पूर्वमेव विनिवेद्यमाना समर्प्यमाणा सती दान्दूरिति प्रसिद्धेन पुरि स्थितेन क्षेत्रपालेन सम्भुज्यते सम्भुक्ता भवति। पुनः स्वीयं पतिं कुत उपैतीति चेत् यतः यः क्षेत्रपालः बली बलीयान्। काव्यलिङ्गालङ्कारः ॥ ६२ ॥ अवनीतलनाथसूनुः माधवसिंहः इति दान्दूकृतां अनीतिं दुराचारं श्रुत्वा धरणीपतिभिः राजभिः अयमवश्यमेव दण्ड्यः इति मनसि उपायं सम्भाव्य भावयति स्म भावना चात्र कृत्यात्मकत्वेन विवक्षिता ॥ ६३ ॥ व्यूढां कान्तां निवेदयितुमुत्सुकं कञ्चित् पुरुषं दयालुर्नरेन्द्रतनयो माधवसिंहः वचनमाह-भवान् एनां मा निवेदयतु, किन्तु वधूविशेषस्य वेषो यस्य तादृशं मां निवेदयतु, अहं तदन्तं करवै करवाणि प्राप्तकाले लोट् ॥ ६४ ॥ कुमारो माधवसिंहः। तिलकयुक्तेन अलिकेन ललाटेन आभा भासमाना वनिता तद्रूपो जातः ॥ ६५ ॥ खरांशौ सूर्ये। सिञ्जद्भ्यां शब्दाय-

मानाभ्यां अतएव मनोहराभ्यां भूषणाभ्यां नूपुराभ्यां संयुतौ अङ्घ्री यस्यास्सा सुतनुः तन्मन्दिरं अगात् ॥ ६६ ॥ निशीथसमयोऽर्धरात्रं अवधिरवसानकालो यस्य तादृशं नृत्यादिकम् ॥ ६७ ॥ अस्य विष्णोः अपत्यं द्युः कामः, तस्य शिलीमुखो बाणः तस्य तापेन तप्तः उद्दीप्तकामः सः चैत्रपालः दान्दूः अमुष्याः अग्रकरमेव आलम्बत जग्राह । बलिनी बलवती असौ वधूः तदीयं पाणिं करेण स्वहस्तेन व्यधत्त जग्राह । ६८॥ उरगी च उरगश्च उरगौ तयोः । पुमांस्त्रियेत्येकशेषः । पिपतिषन्ति स्म पतितुमिच्छन्ति स्म ॥ ७० ॥ चैत्रपालस्यायं चैत्रपालः विग्रहः देहः । वान्तिं वमनम् । स्वामम्बामिव स्वमातरमिव भूमिं प्रापत् मूर्छितोऽभूदित्यर्थः ॥ ७१ ॥ आगस्कारे सापराधे मादृशे जने ॥ ७२ ॥ युष्माकमिदं यौष्माकीणं तस्मिन्। 'युस्मदस्मदो' रिति खञ 'तस्मिन्निणि चे'ति युष्माकादेशः, ततो वृद्धिः ॥ ७४ ॥ राज्ञः भगवद्दासस्य । ईदृशौ गुणिनौ अमू सूनू मानसिंहमाधवसिंहौ । ज्येष्ठं शर्वसूनुं कुमारस्वामिनम् ॥ ७५ ॥ भोगवतीनां विलासिनीनां सखा सुहृदिति तादृशः ॥ ७६ ॥ निजायाः प्रियतायाः स्नेहस्य आस्पदे आश्रयौ अमू सूनू ॥ ७७ ॥

सप्तमस्सर्गः

सम्यगत्यन्तं अशेषजनस्य प्रियः । सबलेषु स्वतोऽधिकबलेषु निर्बलेषु न्यूनबलेषु यथाक्रमं सन्नतः नम्रः, वत्सलश्च दयालुश्च । वसतिप्रभवैषिणां वासस्थानोपार्जनकामानाम् शरणगतानामित्यर्थः। सः मानसिंहः पुरं अम्बिकापुरम् समशिषत् सम्यक् शशास । यमकः ॥१॥ सकलाः जनताः जनसमूहान् नताः नम्राः अकलयत् ददर्श । उदयान् वृद्धीः उदपादयत् उत्पादितवान् । उदनीनमत् उन्नतांश्चकार । नमेर्णिज-

न्ताल्लुङ् । सुजनता सौजन्यं जनयतीति सुजनताजनः, तस्य भावस्तत्तां सौजन्यवदग्रणीत्वमित्यर्थः । अधिशिश्रिये आललम्बे ॥२॥ जनकता अपि इति छेदः । प्रतिजनान् प्रतिकूलान्, अनयतः कुमार्गात् नयवर्त्मनि नयता प्रापयता, उरुणा महता, निकृतं तिरस्कृतं अन्तकस्यापि तेजो येन प्रभुणा मानसिंहेन जनकता पितृता आपि लब्धा । अप्लृव्याप्तौ कर्मणि लुङ् । जनिकृतां उत्पादयितॄणां पितॄणां जनौ उत्पत्तौ एव हेतुता स्थितेति शेषः ॥ ३ ॥ नतया अखिलया अलया इति छेदः। नृपे त्रिदिवपात् इन्द्रात् अधिकं पाति सति । लब्धसुशर्मणेति जनतया इत्यस्य विशेषणम् कुमतिकर्मसु न विद्यते लय आसक्तिर्यस्यास्तया जनतया ॥४॥ हिताय हितं कर्तुं समुद्यते भास्वति भास्वदध्यवसिते नृपे तपति सति पुरि वनिताः विधवतां वैधव्यं धवन्ति स्वपातिव्रत्यधर्मेण परावर्तयन्ति ता विधवताधवाः । धूञ् कम्पने पचाद्यच् । तासां भावस्तत्तया वितानि मुदितानि चेतांसि यासां ताः । अतएव वनिताः वनमिताः न जज्ञिरे न बभूवुः । स्वतितेजसामपि वन्ह्यादीनामपि भाः कान्तिः अपिहिता तिरोदधे । रूपकातिशयोक्तिव्यतिरेकौ ॥५॥ चुरमुषार्थकधातुजनः चोरजनः निजपदं स्वस्थानं सम्यगशिश्रयत । यः चोरजनः पुरि पदं स्थानं नैव समपद्यत । यतः उभयतो जगतोः इहामुत्र च सभयता । चोरयितुं पुरि न प्रवृत्त इत्यर्थः ॥६॥ विधुवती प्रशस्तचन्द्रवती चन्द्राध्यासितमुखवती च अम्बुजानि कमलानि लक्षणं चिन्हं यस्याः, अम्बुजवल्लक्षणे नेत्रे यस्याः तादृशी शरद् वनितेव नराधिपं मानसिंहं उपनता प्राप्ता । अरिसुहृज्जने यथाक्रमं भयददः अभयददश्च स राजा तां समधिगम्य अलमाबभौ पूर्णोपमा ॥७॥ पथि पङ्क्तिलतैव पङ्क्तयुक्तैव लता परितो रविकरैः परितापिता सती विरहिता रहिता डुधाञ् धारणपोषणयोः कर्मणि निष्ठा, 'दधातेर्हिरि'ति हिरादेशः । वनितेव शुशोष

शुष्काभूत्। रूपकोपमे ॥८॥ ऋतुः शरत्कालः मनुजेश्वरं मानसिंहं अनुचकार, तथापि अमुना ऋतुना समता अभिमतेन धर्मेण सहिता, समता तुल्यता न समिता न सम्यक्प्राप्ता। स्वाभाविकात्कृत्रिममन्यदेवेति भावः ॥९॥ विलोचनयायिना दृग्गोचरीभवता जनाधिपसुतेन मानसिंहेन तरुवच्चारु यन्नभस्तलं तस्मिन् नीलिमगुणेनेत्यर्थः। वर्तमानेनेति शेषः। सितरुचा चन्द्रेण च समं जनता मुदमवाप। अत्र नवाभिषिक्तनृपतेः प्रकृतशरद्वर्णनप्रस्तावे प्रकृतस्यैव चन्द्रस्य निमित्तैकधर्मान्वयात्तुल्ययोगितालङ्कारः ॥१०॥ मलतां मलवत्त्वम् अर्श आद्यजन्तात्तल्। अपाकरोति निवर्तयति इति मलतापकरी, वरी श्रेष्ठा कलशयोनेरगस्त्यस्याभ्युदयाद्धेतोः अपाममलता निर्मलता अभूदिति शेषः।

नृपतिवैरिनराधिपचेतसां सभयता शङ्का अलमत्यर्थं अभयतां भयराहित्यम् इतवती इयाय। इण् गतौ क्तवतुः ॥११॥ सगुणं समौर्वीकं स्वधनुः समदधात् धृतवान्। निजनिजावसराप्तमहोदयैः पुरुषैः विनमा विशेषेण नास्ति मा प्रमाणं यस्यास्सा अपरिमितेत्यर्थः। मा शोभा न विधीयत इति न अपितु विधीयत एव। अर्थान्तरन्यासः। १२। धवलपक्षाणां हंसानां विकूजितं निशमयन् शृण्वन् सन् जनः परमो दृढतरो बोधिः परिचयो यस्याः तां भुजगभोजिनां मयूराणां गणस्य य आरवः तस्य माधुरीं परुषत्वमितां अबोधि बुबुधे। बुध अवगमने।१३। ऋतुः शरत् अनोदयत् प्रेरयामास। बलवतस्ते यदि जिगमिषा गन्तुमिच्छा तर्हि लवतः लवमात्रकालेन गमनं कुरु।१४। त्रिदशराजस्य इन्द्रस्य शराजं शरक्षेपसाधनचापं तत्सदृशं धनुः स्वचापं तस्य धरः सन् प्रथमां दिशं प्राचीम् ॥१५॥ व्रजं मथुराम्। अधिजिगाय जितवान्। सः व्रजपतिः। शरणं रक्षितारम्। शरणं शृणाति हिनस्तीति शॄ हिंसायां कर्तरि-ल्युट। तं मानसिंहम् ॥१६॥ महाजनः महापुरुषः स्मयस्य गर्वस्य

अर्थाद्गोविन्दस्य हरो निवर्तकः भवति, अयस्य शुभावहविधेः राज्यादिफलकस्य हरो न भवति । अर्थान्तरन्यासः ॥१७॥ स नृपः मानसिंहः, मधुपुरीं मथुराम् प्राप्य मुदं हर्षं इतः प्राप्तस्सन्, यमस्वसुः यमुनायाः पयसा जलेन ॥१८॥ सनृपतिः व्रजेश्वरेण सहितः नृपतिर्मानसिंहः । परिपूततमीकृते अतिशयेन पवित्रीकृते । अकृत कृतवान् ॥१९॥ निरुपदीः निर्गतः उपदीः उपक्षयः यस्य दीङ् क्षये भावे क्विप् । तादृशो नरपतिः उपदीकृतवान् न्यवेदयदित्यर्थः ॥२०॥ गवि गोशब्दे उपपदे सति शपरतः 'गवादिषु विन्देः संज्ञायाम्' इति वार्तिकेण विधीयमानो यः शप्रत्ययः सः परो यस्य तादृशाद्विन्दतिधातुतः यद्रूपं तद्गोविन्देति नाम संज्ञां आश्रयन् बिभ्रत्, वचनमतिक्रान्तो विभवः विभुत्वं यस्य तादृशः परमात्मा निजतनुं समदर्शयत्, इति वक्ष्यमाणं वचोऽवदच्च ॥२१॥ निलीनं गुप्तम् मां अनुद्धर बहिर्निष्कासय । मा मो यजतु, मदर्चनं तु मा अजतु मा क्षिपतु । पूजनविषये औदासीन्यं त्वं मा भजेत्यर्थः ॥२२॥ विपदस्सकाशात् द्विषां अतरणो ऽतारकः नृपतिः मानसिंहः ॥२३॥ तां दिग्विजयसम्पादपूर्विकां त्वदनुशासनकारितां जनय सम्पादय । एवं तां प्रसिद्धां हरितां दुःखहरणक्षयत्वं नय प्रापय ॥२४॥ हे भवन् जयतः सर्वोत्कृष्टस्य ते । अयार्थं शुभार्थं नतः नम्रः अर्थाद्गोविन्दे । नरेन्द्रपुरन्दरः मानसिंहः ॥२५॥ अवनितो भूमेस्सकाशात् अभ्युदितं निस्सृतं आधिवतां पीडावतां आधेर्निवर्तकं हरिम् प्रणिदधे स्थापयामास ॥२६॥ अरयः शत्रवः वृता व्याप्ता येन सः । विशेषेण धृतान्यायुधानि येन सः नृपतिः मानसिंहः शिवपुरीं काशीम् ॥२७॥ सहयुद्ध्वा तेन 'सहे चेति भूतार्थे क्वनिप् । नृपतिना मानसिंहेन समजीयत भावे लङ् । नैतच्चित्रम्-बलवतो जनस्य बलवज्जनकर्तृकेत्यर्थः । अरपराभवकारिता जनस्य न विचित्रकृत् । अर्थान्तरन्यासालङ्कारः ॥२८॥ सरितो गङ्गायाः

गुरूणाञ्च पूजनं व्यधित चक्रे । कुलस्य वंशस्य अयनं मार्गं वेत्ति जानातीति तस्मै ॥२९॥ पित्र्यकार्यं पितॄणां श्राद्धम् । अतनुतां महत्वमाप्नोतीति अतनुतापि यशः अतनुत विस्तारयामास ॥३०॥ एवं जय जयेति शब्दं रान्ति रलयोरभेदाल्लान्ति गृह्णते तथाभूतैः सुरवरैः इन्द्रादिभिः महिते पूजिते हरे विश्वनाथे ॥३१॥ अतिबरः अतिश्रेष्ठः नृपः मानसिंहः आत्मना आत्मीयनाम्ना समा तुल्या अभिधा यस्य तादृशं मानमन्दिरं व्यधित चक्रे ॥३२॥ नराधिपे मानसिंहविषये । गदितायाः आधिरोगस्य अपनिवृत्तये शान्त्यर्थं निगदिता उक्ता । अर्थान्तरन्यासः ॥३३॥ अन्वहं प्रत्यहम् । अयं मानसिंहः नृपो न राजा न, किन्तु अहिनृपः शेषः इन्द्रो वा । अपह्नुतिकाव्यलिङ्गयोस्सङ्करः ॥३४॥ अपगतस्य च अपगतिं प्राप्तस्यापि पितुः निरयतो नरकात् रयतो वेगेन समुद्धरणं भवति ॥३५॥ सभिदे द्वैतज्ञानसहिते जने जगदीशितुः जगन्नाथस्य करदतारदता दण्डदायकता भवति ॥३७॥ ततया प्रचुरया कृतितया समलङ्कृतः जनतया सह वर्तत इति सजनतः, जनानां तोषकतायाः आश्रयः सः मानसिंहः निजशक्त्या सहितः जगत्पतिः जगन्नाथः तस्य दर्शनम् ॥३८॥ नराधिपः हरेर्भागात् वशेषितं अवशिष्टम्, अटके ओदनसाधनपात्रे मृण्मये जातमन्नमभुक्त । विमलभावं निष्कपटभक्तिं लाति गृह्णाति तादृशेन भावेन परिप्लुत आर्द्र आभूत् ॥३९॥ स्वं स्वीयम् । असितः कालवर्णः असिसितः असयः खड्गान्तराणि सितानि कृतानि येन हेतुना तादृशं असिं अधावयत् प्राक्षालयदित्यर्थः ॥४०॥ विधातृसुतं नदं ब्रह्मपुत्रं नाम नदम् । तस्य उप समीपे वृत्तिर्यस्य तादृशो यो दीपमहीपतिः तस्य । समराणां युद्धानां भूमानं बाहुल्यं रातीति रलयोरभेदाल्लातीति तादृशी या भूमिः ताम् ॥४१॥ जयिनः जयशीलस्य । विजयिनो जेतारः ४२॥ अनुवतेव शैघ्र्यवशेन सन्धानादर्शनमूला सवनोत्प्रेक्षा । पदे कृत्यवस्तुनि वहितात्मकः

सावधानचित्तः। भटगणस्य विशेषणमिदम् ॥४३॥ परिहृतं परितो मारितं अरिसैन्यं, विशिष्टाः कराः भासो येषां तादृशैः रवेस्सूर्यस्य करैः किरणैः तत्तम इव क्षयमगात् प्राप। उपमालाङ्कारः ॥४४॥ प्रतिघेन क्रोधेन युक्तं मनो यस्य तादृशोऽसौ नृपः दीपः, नृपतिं मानसिंहम्। अनेन दीपेन वनितता स्त्रीत्वं उपचारात्स्त्रीप्रकृतिसिद्धं दुर्बलत्वं, लिङ्गसामान्येन गदायामारोप्यते। अनितस्य जीवितस्य भावः अन प्राणने निष्ठा, तस्याः हरणी प्राणापहारिणीत्यर्थः। कथं स्यादिति मनसि नो विचारितम्। वनितावदबलया गदया कथमीदृशस्य राज्ञः प्राणहरणं स्यादिति भावः ॥४५॥ हेतयः आयुधानि तैः। काव्यलिङ्गमलङ्कारः ॥४६॥ अवर्षि कर्मणि लुङ्। अतिगता अत्यन्तगमनवेगा शरावलिः वनितया अबलया मया अस्य राज्ञो जयो न भवेदिति विचार्य भुवि लयं गता। असिद्ध-विषया हेतूत्प्रेक्षा अपह्नुतिगर्भा च ॥४७॥ समुन्नतचेतसां उद्भटमनसां अयेन शुभावहविधिना मह्यते प्रोत्साह्यत इति अयमहः उत्कटः उत्सवः। यमहा यमस्यापि निहन्ता भवति ॥४९॥ सः दीपः। नरपतेः मान-सिंहस्य। सा आयतिसा इति छेदः। सा सिद्धिः श्रियमन्तरा दैवीसम्पदं विना यदि जयति तर्हि आयतिसा आयतिः उत्तरकालः तत्र सा नाशो यस्याः सा। षोऽन्तकर्मणि भावे क्विप्। चिरस्थायि न भवतीत्यर्थः। अर्थान्तरन्यासः ॥५०॥ पततां पक्षिणां गणं समूहं परितः अभितः ॥५१॥ अद्रिसुता-समनुग्रहात्प्रबलम्, तया पार्वत्या-तव वदनात् त्वं अपसरेति त्रिः त्रिवारं यदा यदि एष्यति तर्हि भवान् मा मां नो एष्यति इति वचसा विनिबद्धतरं जितसमस्तनराधिपमण्डलम्, अयं मानसिंहः किं, इत्यन्तरे मनसि अव-हेलनं विदधतं, नवं वयः दधतञ्च वपुस्थं कायस्थं कञ्चन राजानं स मानसिंहः उपस्थितः प्राप्तः ॥५३,५४॥ प्रियतमाः दीपस्त्रियः, सुताः पुत्राः, तस्यैव मा राज्यसम्पत् तासु। महाहवः महारणः ॥५५॥

दुरितं पापं तदेव कारितं कारणं करोतीति कारी तस्य भावः कारिता, क्रिया सा विद्यते कार्यत्वेन यस्य अर्श आद्यजन्तः। पापरूपकारणेनेत्यर्थः। कारिता दुर्मतिः मानसिंहवधरूपा येन तादृशोऽरिः वपुस्थः ॥५६॥ विशिष्टेन रेण अग्निना चितं व्याप्तं तत् जगत् हरिणैव विष्णुनैव तापितहाटकैः तप्तसुवर्णैः रचितं ध्रुवम्। वस्तूत्प्रेक्षा ॥५७॥ मुदिराणां मेघानां वृन्दं समूहः, अलं अवर्षत् ॥५८॥ जनानां इनस्सूर्यो मानसिंहः स च वपुस्थश्च तयोः जनेन लोकेन ॥६०॥ फणिदैवतं सार्पमस्त्रं हितवान् धनुषि सन्दध इत्यर्थः। प्रहितवान् प्रणिधाय चेत्यर्थः ॥६१॥ अत्यन्तं विशाला दीर्घाः सुपीनाः सुपुष्टाश्च कानि मस्तकानि विग्रहा देहाश्च येषां तान्। जं जेतारं मानसिंहं गच्छन्तीति जगाः तान् भुजगान् जनयति स्म ॥६२॥ समितिगेषु सङ्ग्रामचारिषु मध्ये अमितिं अनौपम्यं गच्छन्ति तादृशाः। नतिगाः नम्राः ॥६३॥ अनन्तकलानिधिः, युधि दृढः, अधिदृढोन्नतविग्रहः, अनुद्धतचेतनः एष नराधिपः सकलसैन्यं फणिगणैः ग्रसितं निरीक्ष्य पन्नगवैरिणां गरुडानां जनयितारं प्रमितमन्त्रं प्रामाणिकमन्त्रम्, अतारं शनैः अजीजपत्। अथ बहवो विनतासुताः भुजगा एव भोजनं भोज्यवस्तु तस्य भोजनमेव कर्म तस्मै तत्कर्तुमित्यर्थः। उदभवन् ॥६४,६५॥ मधुनाशकेन कृष्णेन नोदितः प्रेरितः। उत्प्रेक्षालङ्कारः ॥६६। विटङ्कितैः चकितैः जनैः उदटङ्कि तर्कितमित्यर्थः। उत्पूर्वादकिबन्धने भावे लुङ्। अम्बरेण वाससा वेष्टितम् मण्डितम् अभूदिति शेषः ॥६७॥ अचलस्य शैलस्य सम्बधिनी या सम्पत् तस्याः आवहं भयान्निश्चलमित्यर्थः। अगुरुयादसां अल्पजलजन्तूनां निवहमिव समूहमिव अघसत् अगिलदित्यर्थः। अद भक्षणे लुङ् ॥६८॥ अपूपुपत् सुष्वाप। स्वार्थिकण्यन्तात्स्वापेः लुङ् ॥६९॥ शिलीमुखैः बाणैः। प्रबलतरं अत्युत्कटं कं सुखं यस्यास्तादृशी या देवता तस्या अनुचर्या उपासना विफला कथं

भवति ॥७१॥ अनुदयं अस्तम् । भानि नक्षत्राणि । तिग्माः तीक्ष्णाः भानवः कराः यस्य तादृशो यो भानुस्सूर्यः ॥७२। घनं मेघं अत्येति दानातिशयेन उल्लङ्घयत इति तस्य सम्बुद्धौ। शीतरश्मेः चन्द्रात् भृशं पूर्ण हे नृप ।।७५॥ अमुं मानसिंहम् । ऋतं सत्यं अवधार्य निश्चित्य ॥७६।। निजायास्तनयायाः पुत्र्याः अद्भुतं रूपं धरतीति तादृशी, अनुपदं मुहुर्मुहुः शिशुत्वं उपद्रवं कुर्वती सा वपुस्थाराध्या देवी । वपुस्थेन जगदे ऊचे। कर्मणि लिट् ।७७। उपधितनया कपटकन्या देवी अस्मात्स्थानात् अयि इहि गच्छ इणगतौ लोट् मध्यमपुरुषैकवचनम् । चपलमते गच्छ, सुते प्रयाहि इत्येवं त्रिः गमनवाक्यमाकलय्य श्रुत्वा उवाच ॥७८।। अयासीत् ययौ यातेर्लुङ् । ईयते गम्यते । इण् गतौ कर्मणि लट् । हे स्वर स्वं धनं राति ददातीति तादृश त्वं जन्यात् युद्धात् युद्धं जित्वेति ल्यब्लोपे पञ्चमी इहि गृहं प्राप्नुहि इत्यापाततोऽर्थः । वस्तुतस्तु–ते असुखं भवतु, जन्यात् ग्रामात् त्वं स्वः स्वर्गमेहि म्रियस्वेत्यर्थः ।।७९। कृतवेपथुः सकम्पः ।।८०।। नदे ब्रह्मपुत्रे । चिक्षेप पातयामास। व्यसुत्वं विगतप्राणत्वम् । निन्ये नीतः । नीञ् प्रापणे कर्मणि लिट् ॥८१॥ जजागार प्रबुबुधे ।८६।। आत्मजजन्मनैव पौत्रेण महासिंहेनैव ।।८७। यथागमोक्तं शास्त्रोक्तमार्गानतिक्रमेण ।८८।। अनर्घैः बहुमूल्यैः । ताम् अम्बिकाम् अनु अनुसृत्य, नागरी नगरसम्बन्धिनी ॥८९॥ इयम् अम्बा यदा यदाप्रभृति आस्थात् अशिश्रयत् तदाप्रभृत्येव ॥९०॥ जिगाय जितवान् । एभ्यः देशपालेभ्यः करं आदित जग्राह ॥९१॥ या वाहिनी अटकनाम्नी नदी स्वोत्तरेण हिन्दून् हिः हिंसा तया दूयन्ते परितपन्तीति हिन्दवः दूङ्परितापे क्विप् । भाषा शब्दोऽयमिति केचित् । विजिग्ये जितवान् ॥९२॥ शमनस्याशां दक्षिणदिशम् ॥९३॥ आनायिभिः नाविकैः निवेदिताभिः नौकाभिः । पूर्णोपमा ॥९४॥ अजय्यः जेतुम-

शक्यः भर्ता यस्य तत्तादृशं वर्द्धानं वंढाणेति प्रसिद्धं पुरम्। तत् वर्धमानं पुरं परिवेषयुक् परिधिवेष्टितम् उष्णरश्मेः सूर्यस्य वपुः मण्डलं तत्सदृशं सत् शुशुभे। अत्र व्यस्तरूपकम् ॥६५॥ स्वपौत्रं महासिंहम् ६७॥ अन्वमुः सत्यो बभूवुरित्यर्थः ॥६६॥

अष्टमस्सर्गः

प्रकृतयः अमात्याः ॥१॥ वाक्यगा श्रौत्युपमालङ्कारः ॥२॥ असौ जयसिंहः ॥३॥ नेत्रे श्रुतियायिनी आकर्णान्तविश्रान्ते ॥४॥ सर्वंसहत्वं सुखदुःखसहिष्णुत्वम्। 'पूः सर्वयोर्दारिसहोः' इति खच्, 'अरुर्द्विषदजन्तस्ये'ति मुमागमश्च। अत्रोपमानोपमेययोर्लिङ्गवैषम्यं चिन्त्यम् ॥६॥ एतत् वृद्धिक्षयात्मकं कर्म निरन्तरं द्विषतामन्यथैव विपर्यस्तं न लेभे ॥६॥ भासयति सति प्रकाशयति सति। उपमेयोपमालङ्कारः ॥११॥ मन्त्रः गुप्तभाषणम् ॥१२॥ कृतः षड्वैरिणां कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्याणां विजयो येन तादृशः ॥१३॥ उपायाः सामदानभेददण्डाः ॥१४॥ उपमागर्भितव्यतिरेकः ॥१५॥ वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारः ॥१६॥ नास्ति अन्यस्य राजान्तरस्य शासनं यस्यां तामुर्वीं पाति रक्षति सति ॥१८॥ यदा यस्मिन्समये धर्मविदा तेन जयसिंहेन भूः पालिता तदा दिशः रजस्वलाः स्त्रीधर्मवत्यः वध्व इव कदाचिदपि रजस्वलाः धूलिमत्यः नाभवन् ॥१९॥ शलभाः शलभाख्या ईतयः। शलभा इव पतङ्गा इव ॥२२॥ परिवेत्ता ज्येष्ठेऽनूढेऽपि दारपरिगृहीता कनिष्ठः ॥२९॥ कृतं अभ्यस्तं लक्षणं नाम यस्य सः, तस्य भावः कृतलक्षणता, गुणप्रतीततेत्यर्थः ॥३०॥ नियोग्याः राजकार्यकर्तारः। भस्मकेन बहुभोजनरोगेण उपहता ग्रस्ताः अतएवाप्रमेयभुज इव बुभुक्षिता स्वकुक्षिम्भरा न

जज्ञिरे ॥३१॥ अलङ्कर्मीणः कार्यक्षमः तादृशे राज्ञि राजति सति वर्णेषु ब्राह्मणादिषु को वा अलङ्कर्मीणतां स्वस्वोपयोगिकर्मक्षमत्वं बिभ्रत् नाजायत ॥३२॥ अहंयवः अहङ्कारयुक्ताः । शुभंयवः शुभान्विताः युस् प्रत्ययान्तं पदद्वयम् ॥३३॥ दंशिनः कवचिनः द्विषः शत्रवः । दरान् स्त्रियः ॥३४॥ परिणताः तिर्यग्दन्तप्रहारिणः धरणीपतेर्जयसिंहस्य दन्तावलाः गजाः । वलच् प्रत्ययान्तं पदम् ॥३५॥ रथिनः रथारोहाः सम्बाधमिव सङ्कीर्णतयेव ॥३८॥ मनोभवो मन्मथः यासां राजकन्यानां अपाङ्गेषु कटाक्षेषु प्रणयी निवासरसिकः ॥४१॥ विजिगीषा विजेतुमिच्छा ॥४६॥ चतुरङ्गानि हस्त्यश्वरथपत्तिरूपाणि बलानि यस्य तादृशः ॥४७॥ भूता भूभावः, तलन्तमेतत् । भूता जाता निष्ठान्तमेतत् । विभावनालङ्कारः ॥४८॥ कर्कस्थः कर्कराशिगतः ॥५२॥ न चिराय न क्षीणम् ॥५४॥ पुष्करे गजहस्ताग्रे । दन्तिनः गजस्य ॥५६॥ शरं बाणम् । आरोपयत् निचखान । अत्रासिद्धे कलाशोधनेऽफलेऽपि फलत्वसम्भावनया तदुत्प्रेक्षा । तया च भेदोपलक्षितसामाद्युपायदक्षत्वमस्य राज्ञोऽभिव्यज्यत इत्यलङ्कारेण वस्तुध्वनिः ॥६०॥ भूमौ भयङ्करः भूमिभयङ्करः । सेवर्तिभयेषु कुत्र इति खचि मुम् । अर्थान्तरन्यासः ॥६२॥ नासीरे सेनामुखे परिवर्तिनां भटानाम् ॥६५॥ इषूः बाणान् । स्त्रीलिङ्गनिर्देशेन उपमानपक्षेऽम्बुधारा इति गम्यते ॥६६॥ अनन्तरैः अन्तररहितैः सान्द्रैरित्यर्थः । प्रावृट्काले वर्षाकाले ॥६७॥ अगणनकैः असंख्याकैः । उत्त्रास उच्चैरत्य-तं बिभाय । अकिरत् ववर्ष । अतिशयोक्तिः ॥६८॥ आपत्समुद्रस्य विपत्तिसमुद्रस्येति रूपकम् ॥६९॥ अरम्यभावं सद्वेषभावम् दृष्टान्तालङ्कारः ॥७५॥ सुतरां तुमुलः सङ्कुलः ॥८०॥ भूपतिं जयसिंहम् । आपृच्छय पृष्ट्वा ॥८४॥ विस्मेरः सविस्मयस्सन् ॥८५॥ आशंसितः अभिकांक्षितः जयः प्रकृत उत्कर्षः तेन उद्धुरः उत्साहवान् ॥८७॥ एधयामासुः वर्धयामासुः ॥९०॥

नवमस्सर्गः

शर्मणे शर्माणि लब्धुम् । उपदाभिः निवेद्यवस्तुभिः । शिश्रिये सिषेवे । कर्मणि लिट् पूर्णोपमा । ॥ २ ॥ सकृपता कृपासाहित्यम् । अकृपता कृपाराहित्यम् । पूर्णोपमा ॥ ३ ॥ विपश्चित् पण्डितः । संस्तुतं परिचितम् । अधीतमिति यावत् । कुसुमेषुसरूपं कन्दर्पसमानम् । काव्यलिङ्गमलङ्कारः ॥४॥ विहितमन्तुषु कृतापराधेषु, पश्चात्पादनीरजयुगे पतितेषु सन्नमः क्षमया सहितो जज्ञे ॥ ५ ॥ लोकान्तरं नास्तीति मतिर्येषां ते नास्तिकाः । अपास्य निराकृत्य । अत्रास्तिकभावग्रहणं भयमतिभ्यां समर्थ्यत इति काव्यलिङ्गमलङ्कारः ॥ ६ ॥ रामसिंहस्य पालनावसरे जनता ऐहिकामुष्मिकचिन्तया धर्मानुष्ठानमात्रतत्परासीदिति तात्पर्यार्थः ॥ ७ ॥ नरनाथे प्रियतमे वल्लभे अपारां अपगतं आरं अरिसमूहो यस्याः, अन्यत्र नास्ति पारः सुखावधिर्यस्यां तथाभूतां भूमिं केदारभूमिं जगदुत्पत्तिभूमिञ्च, अन्वहं प्रत्यहं अजस्रं अखण्डं शासति सति सुशीला सुशीलपुरुषवती सुस्वभावा च अतएव अविदारितधर्मा अविदारितः अविच्छेदितः धर्मो यस्यां यया च तादृशी भूः सतीव पारदार्यं परदारत्वं कुलटात्वमिति यावत् अन्यत्र राजान्तरहस्तगतत्वं न जगाम श्लेषसङ्कीर्णयमुपमा ॥ ८ ॥ युक्तरोषविषयाः शत्रुवधादीनि तेषु । सपक्षाः पक्षपातसहिताः । अमुष्य रोषस्य ॥ १० ॥ जनेन सुलभेऽपि क्वापि वस्तुनि लुभ्यतापि लोभं कुर्वतापि न बभूवे न जातम् । परिपूर्णत्वेन तत्रत्यो जनो निस्पृह एवाभूदिति तात्पर्यम् । क्षान्तिनिष्ठमनसा जनेन स्वेच्छयाप्तं लब्धं असुलभ्यमपि असुलभमपीत्यर्थः अथवा असुभिः प्राणैः लभ्यमपि प्राणनिर्गमान्तप्रयत्नसाध्यमपीत्यर्थः । कदापि नाहायि न त्यक्तम् । ओहाङ् त्यागे कर्मणि लुङ् ॥११॥ दिनमुखानि व इति छेदः।

वशब्द इवार्थे । प्रातःकाला इवेत्यर्थः ॥ १२ ॥ प्रथमतः पूर्वन्तु, बहुधा प्रायः प्राणिषु दम्भिता कापट्यम् अनुदितमनुत्पन्नं येषु तत्ता आसीत् । यदि कदाचिन्नासीत् तर्हि सा दम्भिता दिने दिनवत्प्रकाशमाने पुंसि दिवसे च नास्ति कराणां किरणानां चारस्सञ्चारो यस्याः अन्यत्र अकरो दुःखदश्चारो यस्यास्तादृशी विधोश्चन्द्रस्य भेव कान्तिरिव हतो नष्टः पादजश्चारो गमनं यस्यास्तादृशि खञ्जीभूतेत्यर्थः मान्द्यं निष्प्रभस्वमाप प्राप्ता । श्लेषसङ्कीर्णोपमा, खञ्जस्त्रीप्रतीत्यात्मिका समासोक्तिश्च । तयोस्समप्राधान्यात्सङ्करः । १३ ॥ जनेषु चारुता गुणसौन्दर्यं अजनि । तेषु जनेषु अचारुतया अरम्यतया तु निस्स्वता निरात्मत्वं आपि प्राप्ता । सर्वे चारव एवाभवन्नाचारव इति भावः । यदि आपदोऽपि कर्तृपदमिदम् महतीः विपदः लेभिरे, तर्हि एता आपदः अधिभुवनं पृथिव्यां कथं स्युरिति शेषः । खपुष्पायमाणस्य पदार्थस्य क्वापि स्थितिर्न भवतीति तात्पर्यम् । पर्यायोक्तमर्थापत्तिश्चालङ्कारौ ॥ १४ ॥ सुष्टु कर्म शोभनं कर्म जनेषु कृतकार्मणं विहितवश्यताप्रतिपादककर्मकमासीत् । 'वशक्रिया संवननं मूलकर्म तु कार्मणम् इत्यमरः । अन्यथा कार्मणं न कृतं चेत् ॥१५॥ 'तातपुत्रकमनुक्रमतोऽभूत्' इति पाठेन भाव्यम् । अनुक्रमेण उच्चैः अत्यन्तं वत्सलत्वगुरुभक्ती विद्येते यस्य तादृशोऽभूत् । तातसमूहो वत्सलत्ववान्, पुत्रसमूहो भक्तिमांश्चाभूदित्यर्थः । यथासंख्यालङ्कारः ॥१६॥ अनिशमजस्रं सम्पदां धनरूपाणां लावण्यरूपाणाञ्च उन्नतिकर्त्र्यः उत्कर्षकर्त्र्यः, आपदां दारिद्र्यरूपाणां कामज्वररूपाणाञ्च उपहतिं नाशं विदधत्यः रसिकानां नीतेः कामशास्त्रस्य च वेदिनां शर्मकर्मसु रसिका व्यसनिन्यो नीतयः नीतिसरणयः वनिता इव नासन्निति न अपि त्वासन् । श्लेषोत्थापितपूर्णोपमा ॥ १८ ॥ रामसिंहे राज्ञि सति जनाः निर्मत्सरा दयालवश्चासन्निति तात्पर्यम् ॥ १९ ॥ रोगिता रोग एव रुरुजे भग्ना,

जनस्तु रोगग्रस्तः कदाचिन्न भवति स्म। भोगिता सर्पता विलासिताच औरगवर्गे परं सर्पसमूहे परं स्थिता न रराज किन्तु भूमिजनगापि सती। न केवलं सर्पा एव भोगिनः किन्तु जना अपि तादृशा जाता इति भाव॥२१॥ असौ शङ्का निवृत्तिं ऐत् जगाम। इण् गतौ लङ् ॥ २२ ॥ जनतागुणेन जनसमूहगुणरूपरज्वा बद्धा सती। बलिर्दैत्यः बन्धनं लम्भितः प्रापितस्सन् ॥ २३ ॥ अनवधेः अपारस्य पूर्णस्येति यावत्। शर्मणस्सुखस्य। समान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासः ॥ २४ ॥ ताः नृपकन्याः। तेन रामसिंहेन। पुरः पूर्वस्याम् उदीतः अभ्युदितः। परस्परोपकारलक्षणोऽन्योन्यालङ्कारः। स चान्योन्यालङ्कारगर्भितोपमाद्वयेन सङ्कीर्णः। उपमेयोपमानवाक्यद्वययोः क्रमान्वयाद्यथासंख्यालङ्कारश्च ॥ २६ ॥ साहचर्यनियमः नियमपक्षसपक्षवृत्तित्वेन विपक्षावृत्तित्वेन च सामानाधिकरण्यव्याप्तिरित्यर्थः। उपमालङ्कारः ॥ २७ ॥ सकलपावनकर्त्र्यपि गङ्गा साध्वीनां पतिव्रतानां उपक्रमं स्नानाद्युपक्रममिच्छति। दृष्टान्तालङ्कारः। अङ्गैरलङ्कारा भूषिताः न तु भूषणैरङ्गानि इति सौन्दर्यातिशयो ध्वन्यते ॥ २८ ॥ अयं भूपतिवर्यः राजहंसोऽस्ति, मनुजो नास्ति इति ध्रुवमेव। चेन्नहि यदि नहि, तर्हि विमलवारिणि विशेषेणात्यन्ततया मलं पापं वारयति दूरीकरोति, अन्यत्र स्वच्छाम्बुनि वधूनां मानसे मनस्येव सरोवर इति श्लिष्टरूपकं विशेषणगतश्लेषोत्थापितम्। अमुष्य राज्ञो वासस्थितिः कथं स्यात्। अर्थापत्तिः श्लेषसङ्कीर्णं रूपकञ्च ॥ २९ ॥ दर्पकाग्निं कामाग्निं बहुलेन बहून् भेदान् लाति तथोक्तेन, प्रचुरेण च रसेन शृङ्गारेण जलेन च। रूपकं काव्यलिङ्गेन सङ्कीर्यते। तेन चास्य कामशास्त्रप्रावीण्यातिशयो व्यज्यते ॥ ३० ॥ माधवतुं वसन्तुम् ॥३१॥ चूता आम्राः तन्निष्ठं नवीनपत्रसम्बन्धजन्यां शोभां माधवेतरऋतुः ग्रीष्मादिऋत्वन्तरं किमु कुर्यात्? या शोभा नायिकानां अधरोष्ठसाम्यस्य

करी करणशीला । कृञो हेतुताच्छील्येति टच्, तदन्तात् टिड्ढेति ङीप् । काव्यलिङ्गम् ॥ ३२ ॥ असौ कोकिलः । निजपरीक्षणमेव ददाविव । उत्प्रेक्षालङ्कारः ॥ ३३ ॥ वारवनिता वेश्या तया क्रियमाणं हारि हृद्यं लास्यं नृत्यम् अकृतादरवैरः न कृतं आदरे वैरं येन सः । सादरसन्नित्यर्थः ॥ ३५ ॥ अधिसभं सभायाम् । वनजैणाः वन्यमृगाः ॥ ३६ ॥ महीन्द्रो रामसिंहः वित्तशाठ्यं युक्तधनव्ययविषयककार्पण्यम् अतिवर्त्य अतिलंध्य । अर्थान्तरन्यासः ॥३८॥ अधिगृहं गृहे गृहे, आनकाः पटहाः । नवदावाः नव्यविलासाः ॥ ४१ ॥ जनतापः नाथाभावशङ्काकुलत्वरूपः तापं दाहं नाशमिति यावत् आप लेभे ॥ ४३ ॥ अधिजगे अधीतवान् । अजित एव जितं कृतवानिति सम्बन्धः ॥ ४७ ॥ सम्परायभुवि रणभूमौ । इभाः गजाः ॥ ५१ ॥ अपवर्त्य अपहाय स्थितस्येति शेषः । यस्य विष्णुसिंहस्य । मार्दवोपहितं अपारुष्ययुक्तम् । केवलं रिपूणामेव प्रातिकूल्यमाचरति स्म नान्ययेषामिति भावः ॥५२॥ अमानम् अपरिमितमित्यर्थः ॥५५॥ बलिना दैत्येन युवतौ स्वपत्न्यां एको बाणः तन्नामा पुत्रः शरश्च प्रोदपादि समुत्पादितः कर्मणि लुङ् । बलिना भूभुजा तु बलिष्ठेन रामसिंहेन तु रणमह्यां युवतिस्थानीयायां अमितबाणाः अनेकशराः बाणनामानः पुत्राश्च किं न प्रोदपादिषत ? काकुः । श्लेषमूलो व्यतिरेकालङ्कारः ॥ ५६ ॥ भूपस्य रामसिंहस्य चापेन पित्रा जनितः मौर्व्यामिति शेषः । शरसङ्घः सुतस्थानीयः । कार्मुकेति पितुश्चापस्य नाम यौगिकमन्वर्थं किं नो चकार ? काकुः । ननाम च उपकृत्य पृथ्व्यां नम्रोऽभूदित्यर्थः । एतत् पितृनाम सार्थकीकरणं नम्रीभवनञ्च जन्यताश्रयवतां जन्यतायाः पुत्रतायाः आश्रयः आश्रयणम् स्वीकार इति यावत् तद्वतां पुत्राणामित्यर्थः । उचितमेव । समासोक्तिरर्थान्तरन्यासश्च ॥ ५७ ॥ निजबाणैः बाणान्तरैरिति भावः ॥ ५८ ॥

नृपे रामसिंहे मूर्च्छिते सति रिपुसेना अमूर्च्छिता वृद्धा आन्तरी मानसी मुत्प्रीतिर्यस्याः तथाभूता जाता ।। ६० असौ कृष्णसिंहः शिलाया इव घनभावो दाढ्यं यस्य तादृशे वैरिणो वक्षसि बाणपञ्चकं निचखान । तद्बाणपञ्चकं अरिसुलक्ष्म्याः सम्बन्धि द्वारपञ्चकमिव विधाय सपदि गां भुवं व्यविशत् । उत्प्रेक्षा । उपकारकपुरुषवृत्तान्तप्रतीत्यात्मिका समासोक्तिश्च ।। ६२ ।। संख्यभूमिं रणभूमिम् ।।६४।। निधनञ्च मरणञ्च ।।६५।। व्यसुः मृतः । अदः मरणम् । इदं मरणम् । अस्मात् कारणात् इदं विचार्येत्यर्थः ।। ६६ ।। सुतसूनोः विष्णुसिंहस्य बाहुना समवितां सम्यग्रक्षितां स्वां पुरीमम्बिकाख्याम् ।।६७।। प्रसादरसितैः अनुग्रहमधुरैः ।।७१।।

दशमस्सर्गः

प्रयतः शुद्धः, इद्धः प्रदीप्तो बोधो ज्ञानं यस्य, हताः वैरिरूपाः कुम्भिनो गजा येन तादृशः ॥१॥ भूपो विष्णुसिंहः द्विषतां पुराणि प्रकर्षेण रूढः अङ्कुरितः बर्हिषां दर्भाणां भरो यासु तथोक्ता भूमयो येषां तथोक्तानि । शिवानां क्रौष्ट्रीणां मुखोल्का मुखज्वाला तस्या योऽनलः अग्निः तस्य हेतिभिः शिखाभिः दग्धं तृणं येषु तानि । हिंस्रैः क्रूरमृगैरुपचितानि व्याप्तानि नवानि वनानि वनरूपाणि चक्रे । अत्र द्विषत्पुरेषु शून्यत्वेन धर्मेण गम्यमानेन विशिष्टवनत्वारोपाद्रूपकम् ॥२॥ कलाभिस्सह वर्तत इति सकलः कलानिधिरित्यर्थः । यः विष्णुसिंहः । अजाद्भवः आजः लोकः तमनु विलम्बिनीभिः व्याप्ताभिः, जानु मर्यादीकृत्य व्याप्ताभिश्च मालाभिः पङ्क्तिरूपाभिः स्रग्भिः दिगङ्गनाः दिग्रूपास्त्रियः सम्यक् अस्तं अपगतं कालुष्यं दुष्कर्म कापट्यञ्च यथा स्यात्तथा भूषितवान् । श्लेषसङ्कीर्णं सावयवं रूपकम् ॥४॥ निष्टङ्कितः शुद्धीकृतः दुष्टलोको येन

तादृशः ॥६॥ अलीकसम्भाषणतत्परेण मिथ्याभाषणसक्तेन जनेन नोषे नोषितम् । भावे लिट् । वचिस्वपीति सम्प्रसारणम् ॥६॥ वैभवेऽपि सम्पत्तौ सत्यामपि जनस्य विकारयोगा उन्मादादिविकारसम्बन्धा नासन् । खला इव दुष्टा इव । खलोत्थाः दुष्टप्रयुक्ता ये बाधाः कार्यविघातादिरूपाः तैः केऽपि न तेपरे । व्यतिरेकेणेयमुपमा ॥१०॥ परिप्लवं चञ्चलं चित्तं मनः योगिनापि योगाभ्यासवतापि अबध्यमेव नियन्तुमशक्यमेव इत्येष प्रवादः गुण एव गौण एव । तथाहि-यत्र पुरे वियोगिनो वा विशिष्टयोगाभ्यासवन्त इव । वा शब्द इवार्थे । योगिनः साधारणयोगाभ्यासवन्तः अतीव चलमप्येतच्चित्तं बबन्धुः नियन्त्रयामासुरित्यर्थः ॥११॥ उत्करेण सह सम्मार्जनीशोध्यमलेन सह मार्जनीभिः संमार्जनीभिः । उदात्तालङ्कारः । बहिःकरणेन वस्तुना परिचारिकानैस्पृह्यं व्यज्यते । तेन च तासां सम्पत्पूर्णत्वं व्यज्यते । तेन च राज्ञो दानातिशय इति व्यङ्ग्यपरम्परा चमत्कारकारिणी ॥१२॥ जनानां व्याधयः रोगाः त एव मृगाः तेषु । सेषु सशरं धनुः ॥१४॥ दोषाकरबुद्धिं चन्द्रबुद्धिम् । काव्यलिङ्गभ्रान्तिमतोस्संकरः ॥१५॥ विशेषेण वर्द्धिताः अवैरिणां मित्राणां गणाः समूहा येन तादृशः । अगणौनः गणेन द्वादशराजमण्डलेन ऊनो रहितो न भवति तादृशः ॥१६॥ समपौष्टतुष्टिं सत्रजातं तुष्ट्युद्भवहेतुमुच्चैः न तुष्टाव । तदिति शेषः । सत्रजातमित्यर्थः । विशिष्टा पुष्टिस्समृद्धिर्यया तादृशीमतुष्टिं आलभ्य स्वीकृत्य ईष्टे ऐश्वर्यं लभत इत्यर्थः । नष्टिं ऐश्वर्यभङ्गं कदापि नासादयते न लभते । अनुप्रासोऽलङ्कारः ॥२०॥ समांसमीनाः प्रतिवर्षं प्रसविन्यः गावो धेनवः ॥२१॥ प्रतिघस्रं प्रत्यहम् । आतिथेयाः अतिथिषु साधवः ॥२२॥ दोषाकरतुल्यभासः चन्द्रतुल्यभासः

॥२३॥ सरोजसम्बन्धिनी किञ्जल्किता सञ्जातकेसरा या कर्णिका तद्वदित्यर्थः। अङ्गानां कृशत्वधर्मेण केसरसाम्यं प्राधान्येन विवक्षितम्, नरेन्द्रपत्न्या गौरत्वेन कर्णिकासाम्यं बिम्बप्रतिबिम्बरूपम्। तद्धटितेय-मुपमा ॥२६॥ निस्साध्वसं भयरहितम् ॥३६॥ तदित्यव्ययम्। तत्रेति तदर्थः। अरिष्टगेहे सूतिकागृहे सतूलः कार्पासपूर्णः गर्भो मध्यो यस्य तादृशं यदास्तरणं तेनास्तृतमङ्गं यस्यास्तादृशी, स्थितानि उपधा शीर्षाश्रयः प्रावरणादिकानि च यस्यां तादृशी, अधःकृताः अधस्तान्निवेशिता अङ्गार-हसन्तिकानां शिघडीति भाषायां प्रसिद्धानां ओघास्समूहा यस्यास्तादृशी शय्या रराज ॥३९॥ शराः पञ्च अम्बुराशयः चत्वारः अद्रयः सप्त सुधांशुरेकः तत्प्रमितवर्षे पञ्चचत्वारिंशदुत्तरसप्तदशशतप्रमितसंवत्सरे १७४५ सहोऽभिधे मार्गशीर्षसंज्ञे मसि सप्तम्यां तिथौ राज्ञी सूनुं समसूत ॥४०,४१॥ क्षणे उत्सवे ॥४२॥ भूतानि पञ्चभूतानि, भूतानि जातानि ॥४३॥ प्रकृते पत्यौ विष्णुसिंहे स्वः पदं स्वर्गं, आप्ते सत्यपि ॥४४॥ शय्यागतः अनेकेषां विभाकराणां सूर्याणामाभेवाभा यस्य तादृशो बालः अरिष्टगानि सूतिका-गृहे वर्तमानानि तमांसि, खलजनेन कृतं सज्जनानामरिष्टञ्च जहौ दूरीचकार। अतितेजस्वी कुमारोऽयमुत्पन्न इति श्रुत्वा खला अपि सज्जन-बाधां नाकुर्वन्निति भावः ॥४५॥ प्रसूः जननी। पूर्णोपमा ॥४६॥ धनैः द्रव्यैः धनाध्यवसितैर्म्रहनचत्रादिभिश्च आपिताव्याप्ता सा वसुन्धरा द्यौः अपरेव रेजे। उत्प्रेक्षा रूपकञ्च ॥४७॥ अनघः निष्पापः ॥५१॥ चामीकरभाजनस्थं स्वर्णभाजनस्थम् ॥५४॥ धृतमारलीलः कामसुन्दर इत्यर्थः ॥५५॥ वियन् व्यतिक्रमन् बहुलोऽपि कालः अनङ्गतुल्यं मूर्त्तेण तुल्यं यथा स्यात्तथा ज्ञातुं न शक्यते जनैरिति शेषः ॥६०॥ अनुयोगवाणी

कुशलप्रश्नवाणी॥६५॥ पुराभवः पूर्वजन्म तत्रार्जितानि सम्पादितानि पूर्णानि यानि पुण्यानि विधानानि कर्माणि तान्येव सन्ताना मनोरथसम्पादकत्वेन कल्पवृक्षास्तान् गच्छति तन्निष्ठं यत्तारतम्यं तस्मात् हेतोः अत्र अस्मन्निकटे वः स्थितिः धन्या ॥७२॥ कोविदः श्रेष्ठः ॥७४॥ लोकोत्तरः लोक-विलक्षणः ॥७५॥ हे भूमिचन्द्र ! पूर्वैः प्राक्तनैर्मदीयैः दक्षिणाशामनु दक्षि-णदिशं लक्षित्वा, अनुर्लक्षण इति द्वितीया। महितैः पूजितैः महपूजायां क्तः। सा दक्षिणाशा व्यहायि त्यक्ता। अद्यावधि एतत्कालपर्यन्तं विशेषेण काशीकृतं प्रकाशीकरणं यस्यास्तादृशी शम्भुमूर्तिर्यस्यास्तादृशी काशी वाराणसी अधिष्ठिता ॥७६॥ ना नरः ॥७७॥ त्रिस्रोतसा गङ्गया ॥७८॥ उल्बणैः दीर्घैः दृढैश्च । चुम्बकाख्यैः पाषाणैः। अयांसि लोहविकाराः। भवद्यशः श्रुत्वा वयमागता इति भावः ॥८१॥ रुग्भिः कान्तिभिः सितीभावं श्वेतताम् ॥ ८३ ॥ यो ना पुरुषः ऐश्वरीं ईश्वरादागतां ईश्वरप्रसादलब्धामित्यर्थः । शक्तिं नापेक्ष्य अध्यापनमात्रशक्त्या अचेतनेऽपि स्तम्भादावपि चैतन्यं ज्ञानं प्रसभं बलाद्विदध्यात् कुर्यात् सोऽहमस्मि ॥८७॥ हे द्विज ! प्रतिज्ञा अचेतने चैतन्योत्पादनरूपा तद्विषयीकृते शब्दे अचेतनेऽपि चैतन्यं विदध्यादिति शब्दे गौणीलक्षणा-वृत्तिरस्तीति तवेष्टमभिमतम्। पुण्यवतां वरत्वं यतः प्राप्नुवतः कर्तुः अत्यन्तसामर्थ्यं लोकोत्तरसामर्थ्यं इयं लक्षणा व्यनक्ति व्यञ्जनया प्रतिपा-दयति। लक्षणांविना तादृशार्थस्य दुर्लभत्वादिति भावः ॥८९॥ अकार्यं वनिताध्यापनम्। उपयायाम् प्राप्नुयायाम् ॥९१॥ काञ्च कामपि कलां युक्तिम् ॥ ९४ ॥ धरातुराषाट् पृथ्वीन्द्रः। प्रत्ययबन्धि प्रतिबद्धः। निरुत्तरः कृत इत्यर्थः ॥ ९८ ॥ संख्यां विधातुं गणनां

कर्तुम् ॥ १०३ ॥ तत्रैव माधवभट्टशर्मण्येव, उच्चैः महत् पितृत्वं ज्ञानप्रदत्वरूपमारोप्य द्विजस्य अङ्के उत्सङ्गे कुमारौ आशु सपदि निनाय प्रापयामासेत्यर्थः ॥ १०६ ॥ आरङ्कं दरिद्रमारभ्येत्यर्थः । आ भूपं राजसर्यन्तम् ॥ १०८ ॥ वदनस्य मुद्रां मौनमित्यर्थः । मुमोच उवाचेयर्थः ॥ ११० ॥ हृतकूटचित्तः निवृत्तादुष्कल्पन इत्यर्थः ॥ ११२ ॥ हिताय हितं कर्तुम् । शिरस्यां शिरसि भवाम् । यत्प्रत्ययान्तमिदं पदम् ॥ ११५॥ सवेपथुस्सन् सकम्पस्सन् । मिथः रहसि ॥ ११७ ॥ पाकः फलावस्था प्रावीण्यमिति यावत् ॥ १३९ ॥ नुन्नः प्रेरितः ॥ १४५ ॥ जोषं तूष्णीम् ॥ १४६ ॥ सधौत्रः साधःपरिधानवस्त्रः ॥ १५१ ॥ स्वप्रतिवेशिलोकैः स्वगृहनिकटवर्तिजनैः ॥ १५२ ॥ गुणग्रामो गुणसमूहः तस्य ग्रामं निवासस्थानम् ॥ १७४ ॥

जयवंशमहाकाव्यस्य श्लोकानां सूची

[अ]

श्लोकाः	पृष्ठम्
अकलयत्स०	४४
अकरोत्	१४४
अकालमृत्यो:	१४
अकृत भूप०	४७
अक्ष्णोऽरिजन०	५७
अङ्गवङ्ग०	१२९
अगाधबोध:	७९
अग्न्याहितै:	७५
अग्न्याहि०	१९५
अग्निहोत्र०	९५
अग्न्युपासनं	९५
अघसदौर०	५१
अचलमचलयत्	२५
अचिरमेव	४९
अचेतनेऽपि	८१
अजनि जनित०	२१
अजमेर०	१३३
अजय्यमपि	५४
अज्ञातानव०	९४
अटकजाग्र०	४८
अट्टालिका०	१०४
अत: परं	८३
अन्त:प्रवि०	११०
अतिलोल०	१४०
अतीव यात्रा०	१०६
अतोऽलं	११९
अथ काचित्	१३६
अथ क्रुद्धे०	१२३
अथ गयाम्	४८
अथ जात०	१३८
अथ तत्प०	१४५
अथ तयो:	५०
अथ तं	१३६
अथ धरणिं	२६
अथ नरपति:	२४
अथ नाट्य०	१४६
अथ पण्ड०	१४१
अथ पण्ड०	१४२
अथपरास्य	१४२
अथ पुरं	७४

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
अथ प्रकृतयः	५५	अथमात्याः	६०
अथ प्रजोनः	१६	अथासौ भु०	११३
अथ भूमि०	१४१	अथाह सोऽयं	८१
अथ भूयोऽपि	६३	अथैतयोः	१४७
अथ मज्जनं	१३६	अथैनमु०	११२
अथ यज्ञ०	१३६	अथोगलद्०	६३
अथ विधातृ०	४८	अथोद्भटस्संयति	६
अथ शाम०	१३६	अथो महारा०	११०
अथ शोक०	१४३	अथो हनुः	१६
अथ स तत्र	४६	अदहदुज्ज्व०	५०
अथ स मोह०	५१	अधर्मधर्मौ	१४
अथ स वङ्ग०	४८	अधिगेहं	१३७
अथ सस्मार	६२	अधिधर०	१५४
अथ साम	१४०	अधिपल्व	१४५
अथ सुतमधि०	२४	अधिलक्ष्य०	१४१
अथ स्मरन्	११	अधिवसति	१६६
अथ स्वसैन्ये	४	अधीतिकाले	८४
अथाधिगत्य	७३	अधुक्षत द्यां	१६
अथाधिपः	७६	अध्याप्यमाना	८२
अथधिपः	१००	अध्यापितः	८६
अथाधिपः	१५३	अध्वानमु०	१६८
अथावनी०	१०३	अनन्तकृष्णौ	८६
अथापरं	७८	अनयदनय०	२३
अथाभवन्	१५१	अनयतो नय०	४४

श्लोकाः	पृष्ठम्
अनर्थकस्स्वर्ग०	१४
अनश्यदेतत्सकलं	४
अनागतां	११६
अनीतिभाजः	१८
अनुजग्मु०	१४५
अनुजे	१४६
अनेकपः	१६४
अनेकभोगान्	१६
अनेकशो विक्रम०	१७
अनेन देशेन	७६
अन्धीकुर्वन्	१७८
अन्या आसन्	१७३
अन्यानपि	११४
अन्येऽपि	१२०
अन्येऽपि दे०	१०५
अन्येऽपि	१५६
अन्योन्यं	१६६
अन्योन्यमन्योन्यं	६
अन्योन्यमि०	४२
अपशब्द०	१४०
अपारपारावर०	२
अबोधन०	१५१
अब्धेरिव	५५
अभ्रंलिहं	१०५

श्लोकाः	पृष्ठम्
अभ्रंलिहे	१६२
अमन्दसम्बन्धिपदं	१
अमात्यव०	१६६
अम्बामयी	५३
अम्बावती	१६५
अम्बुदोऽयं	६८
अम्भसां कल०	६६
अम्भोहस्तैः	१७८
अयष्ट निष्ट०	७३
अयं छत्र०	१२४
अयं सुशिष्यः	८६
अयि चपल०	५२
अयि नृप०	५२
अरीणि	१४५
अरम्यभावं	६२
अरातयस्ते	१२
अरिमनरिम्	२३
अरिष्टगानि	७७
अरे कुना०	१२२
अरे दुर्म०	११४
अरोगिता सर्व०	१८
अलमवर्षि	४
अलमर्व०	१४०
अलङ्कर्मीणतां	५८

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
अलङ्कृताः	१६८	असितघनघटा०	२२
अलङ्कृतीः	७६	असिभिः	१३१
अलंवचोभिः	१३	असीमपुण्यं	७८
अलीकसम्भा०	७३	असूत काले	७
अल्पीयस्या	१२१	अस्त्यप्युपायः	८८
अवतमस	२७	अस्ति गाल०	१६७
अवन्तिकातः	१०२	अस्त्रैर्युयु०	१३२
अवाप्य	१८१	अस्याः प्रतीरे	४
अशक्तयो यूयं	१७	अहीनमोजोभिः	१७
अशोकमु०	१०६	अहो कुमारौ	८४
अश्ववार०	११२	अहो मदाशा	१०१
अश्वा नि०	१२७	अहो मदी०	१११
अश्वारसमु०	३७	अहो यमा०	१५३

[आ]

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
आकर्ण्य भू०	१११	आद्यस्सखा०	८६
आकर्षिता भो	८१	आद्यस्समस्ता	८६
आगत्य	१६७	आधीरनीर०	३६
आनमेषु स०	६२	आनकास्सुत०	६६
आच्छाद्य०	१२०	आनन्दं	१५५
आजौ वाजि	१८६	आबालमा०	८३
आतिथ्यमा०	७५	आभिः स्त्री०	१७३
आत्मशर्मणि	६६	आम्री शोभा	१७५
आत्मीयमो०	१८३	आम्रे सूने	१७४

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
आयोधनेषु	३५	आलेख्यमध्ये	१०४
आराधनैस्सु०	३२	आवेदितः	८७
आराममा०	१०६	आशाभाज०	१८३
आरामे	१७४	आश्वास्य	१५३
आराममु०	१६७	आसीद्यस्य परा०	५
आरामव०	१६६	आसीदिन्द्रः	१७२
आरोह्य दन्ति०	१०२	आस्ते तृतीयः	६०
आलम्बताग्र०	४२	आहूतवांस्तातं	३
आलम्बमाने	६१	आहूय राजा.	८
आलम्ब्य	१५३,२०२		

[इ]

इति काश्चित्	१३७	इति वचो वि०	५०
इति गतवति	१०	इति वाक्य०	१४५
इति गतवति	४४	इति सर्वाः	१३४
इति गदित०	५२	इति सूनु०	१४३
इति जनैः	५१	इति स्तुता	६२
इति निशम्य	४६	इतीति निर्भर्त्स्य	१७
इति पैतृ०	१४५	इतीरयित्वैव	५३
इति याग०	१४०	इतीरितां	८४
इति युक्त	१४४	इत्यधिक्षे०	११६,१२३
इति राज्ञः	६३	इत्यर्थितः	१११
इति लेखं	६३	इत्यादिवाक्यैः	८,८४
इति वचनं	५२	इत्याद्यनेकात्	१८

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
इत्याद्यने०	१५४	इत्थं लोका०	१४७
इत्याद्यने०	१७०	इत्थं वचन०	११४
इत्याद्यने०	१८२	इत्थं वार्णी	४३
इत्यारामे	१७८,१७७	इत्थं षडे०	१४६
इत्यालपन्तं	८१,८८	इत्थं सुराज्ञि	७
इत्यवेत्य	६८	इत्थं सुसंस्कृ०	२६
इत्येव वाचं	८०	इत्थं स्थिते रात्रिः	३
इत्येवं	१६४	इदं वचो दुर्ल०	१३
इत्युक्तिम्	१०१	इन्द्रादिकान्	५६
इत्युच्यमाने	८२	इन्द्रार्व०	१६८
इत्थं केली	१८०	इन्दौ संस्थं	१८०
इत्थं निगद्य	४१,८३	इभा इभ्याः	१८८
इत्थं नीति०	६६	इभ्यैरन०	१६२
इत्थं परा	२०१	इमेऽध्युवात्सुः	१०७
इत्थं प्रार्थ०	१२६	इषुभिस्तैः	१२४
इत्थमात्म०	६८		

[उ]

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
उक्त्वेत्थं	१६५	उदयकरणनामा	२०
उज्झित्वारम्भः	१७६	उदयमासव०	४५
उत्तिष्ठ वत्सेति	४	उद्धतान्नति०	७०
उत्तीर्यासौ	१७६	उपगता गु०	४५
उत्त्रास	६२	उपगताम०	४६
उत्सङ्गगौ तौ	७६	उपगतवति	२१

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
उपगतवति पुण्यैः	२५	उपेत्य तस्याङ्घ्रि	८
उपनता वनि०	४५	उपेत्यनागौरं	१७
उपनीय	१४३	उभयोर्यु०	११४
उपवने हरि०	४६	उभाविमौ	६०
उपस्थितं	१२१	उरसि खड्ग०	४६
उपस्थिते	१२१	उलूक०	१२५
उपस्थितेषु	१०३	उवाच राजा	८२
उपस्थिते	७०	उषसि नियम०	५२
उपागतं भूमि०	८५	उषसि सम्प्र०	४७
उपायास्से०	५६		

[ऊ]

ऊचुर्वाचं	१८०	ऊर्ध्वज्वालः	१७१
ऊचेभूव०	१६५	ऋतुरनोद०	४६

[ए]

एककेन	६८	एवंकदन०	१२६
एकवर्ण०	६८	एवं कृतेते	४
एतादृशं	११०	एवं विवादे	८२
एतैरमा	१५१	एवं शस्त्रा०	१२८
एतैस्स दु०	१०६	एवं न्यक्कु०	१२२
एत्येदम०	१२१	एवं प्रोत्सा०	१२४
एवमापत्	६२	एवं स्तुता सा	४
एवमन्यान्	१३४	ऐन्द्री काष्ठा	१७६

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
	[ओ]		
ओतुभिर्नृपः	६६	औदम्बर०	१५१
ओमित्यका०	११०		
	[क]		
कण्ठव्याप्त०	१२८	कलशोप०	१३८
कण्ठं सख्याः	१७८	कलिः प्रवृत्तोऽपि	६
कण्ठाश्लेषे	१७६	कस्तूरिका०	१६४
कदाचिदत्यन्त०	१७	काञ्चित्प्रे०	१७६
कदाचिदा०	५३	कांश्चित्सम्भा०	६०
कदाचिदेतां	८२	काकाह्वयद्वीप०	७
कदाप्यवन्त्यां	१०२	काचिच्च	२००
कदाप्यसौ	१६६	काचिन्नारी	१७८
कदापि पत्न्यां	११०	काचित्कान्ता	१८०
कन्यका बहु०	६६	काचिद्गीता	१७८
कनीयसः	८६	काचिन्नरा०	२००
कपिलाः	१४१	कादम्बानां	१७७
कबरी प्र०	२००	कादम्बोत्थैः	१७५
कर्णाः कर्णा०	१८५	काननेयुधि	६८
कर्पूरान्या	१७३	का नाकलोक०	३३
कर्मोदारं	१७१	काममेव	६५
करिणः	१२७	कामोऽर्थो	१५८
कलकूज०	११७	कामाग्मेषु	३३
कलशयोनि०	४५	कारासु ना०	१०८

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
कालभीम०	१२६	कुत्रापि हट्टेषु	१०७
कालीनिली०	१३४	कुमार वाक्यं	८५
कालेऽप्युप०	५८	कुर्वन्तः	१६८
का वा स्तुतिः	१००	कुलमसुकुलयत्	२४
काश्मीर हट्टे	१०८	कूलङ्कषोऽपि	३०
काशिराजः	१२१	कृत्वाकृत०	१३०
काशिराजो	१२३	कृत्वा कृत्या०	१७२
काशिराजेन	१२३	कृत्तमस्तक०	७१
किं धनुर्भिः	११८	कृतयावकं	११६
किं प्रावृषेण्यः	१०१	कृतवान्	१३८
किं माधवे०	१४६	कृतदर्भ०	१४०
किं शर्म ते	७६	कृतलक्षणता	५८
किं सुतैर्बहु०	६७	कृती स्तु०	१३०
किमर्थमत्य०	१००	कृते तदुक्ते	८८
कियच्चिरं	११०	कृपात्मको यः	१२
कियन्ति	१५३	कृपासमु०	१५०
कीर्तिः कलङ्कि०	२६	कृष्णपाद०	११८
कीर्तिः सरोज०	३०	के के न भ्रम०	६६
कीर्तिर्यस्य	१७२	केचिदन्तः	१२६
कीर्तिर्यस्य	१८७	केचित्तथा	१६५
कीर्ति यस्य	१७२	केचिन्महा०	१०७
कीर्तीस्ताः	१५६	केचिन्महा०	१६४
कीर्त्याली०	१५६	केचिद्द्विजाः	१६५
कुत्रापि हट्टे०	१०७, १०८	केचिच्च	१६५

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
केचिद्वन्ति०	१६७	कौन्दा एते	१७७
केनासन्	१५६	कौमारमेव	३०
केवा सन्ति	१८६	कौशलं पर०	६४
कैदारिकैलु०	२६	क्रतुशाला०	१३६
कोक द्वन्द्वं	१८०	क्रतुमुञ्ज०	१३६
कोकाः कोकीः	१७६	क्रमतः	१३८
कोकिलः किल	६८	क्रान्तवान्	६१
कोकिलामधु०	५६	क्रोध एषः	६५
कोकैः कोक्यः	१८१	क्व गतः	१४४
को न यस्य	६५	क्वापि किञ्चित्	६३
को नाम नो	३१	क्वाप्यद्भुतं	१६३
को धर्मशा०	१५२	क्वाप्यारामे	१७४
कोऽयं धर्मः	१७८	क्वासौ पदार्थः	१
कौंद्योवल्यः	१७७	क्षीणे स्व०	११७
क्षणात्पुन०	१२७	क्षीणेषु	१२४
क्षणादुत्थाय	१३३	क्षीणाब्धि०	१५०
क्षणेनोत्थाय	६१	क्षीराब्धेरिव	२०२
क्षत्रियो रण०	७१	क्षुधितं	१४४
क्षमामाला०	१३२	क्षोणीपतिः	२०१
क्षयमागा०	४६		

[ख]

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
खड्गांसाः	१६७	खोहं ग्रहीतुं	५
खण्डितेषु	१२३	खोहाधिपोऽपि	५
खेदेन गर्भो०	७५		

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
[ग]			
गङ्गानीताभिः	६०	गर्भभार०	६८
गजवरूथि०	४६	गर्भवेश्मनि	६६
गजताम०	१४०	गरलमुत्सृ०	५०
गजवाजि०	१४६	गरीयांसः	१८६
गजमाश्रि०	१३७	गरुडपक्ष०	५१
गजावली०	१५२	गव्यूतिमात्रात्	४
गजा गजैः	१०	गाढध्वान्तं	१७६
गजाः शृङ्गा०	११३	गाम्भीर्यमस्य	३१
गजैरने०	१८१	गावस्तव०	१०३
गत्वा गवालेरं	६	गुणाविवृद्धिं	१६
गत्वा गयां	१२६	गुणास्तुवेद्याः	८१
गत्वान्तः पु०	१६२	गुरुः प्रहारव्य०	८५
गतवति वनवीरे	२२	गुरुभजन०	२६
गतवति दि०	४३	गुरुणा	१४४
गते दिवं पुण्य०	१६	गुरुयुग०	१५२
गतेन दूतेन	११०	गुरुस्सखा०	१६६
गदयाऽगदया	११६	गुरोस्सुताः	८६
गन्धर्वगाः	३६	गुल्फ दघ्न०	१२८
गन्धोदग्रा	१७४	गृहागतं विक्रम०	६
गमसम्भ्रम०	१३६	गृहास्समुच्चाः	१४
गर्गादयः	१०१	गृहाणीव	५६
गर्जध्वाना	१७५	गृहाणि वेद०	७५
गर्भक्रिया०	७६	गृहाणि यत्र	१०३

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
गृहे गृहे	१०४	गोविन्द०	१६८
गृहेषु यत्र	१०४	गौडी सगर्भा	७५
गृहास्त्रिलो०	१६१	गौणीतवेष्टं	८२
गेहं धनं	८८	गौर्युत्सवे	१६३
गेहान्यापुः	१७५	गौरवी नर०	६३
गोपीपतिः	१०४	गौरैस्तासां	१७८
गोपीपतिः	१६२	ग्रसितमेष	५१
गोधूमरा०	१६४	ग्रामीण लोकाः	३
गोविन्ददे०	१६३	ग्रीष्मेऽम्बु०	३४

[घ]

घाटेति नाम्ना	१०६	घोरे रणे ग्राम्य०	३
घाटेति ना०	१६७		

[च]

चञ्चद्रथा०	१५२	चतुर्भुजां	६२
चञ्चलाभिः	१२८	चतुर्भुजः	१५१
चकार काव्यं	६०	चतुर्मुखेनापि	१३
चक्रेऽनङ्गं	१७१	चन्द्रश्चोर्वी०	१८२
चचाल	१२१	चयनीत्यु०	१३६
चटच्चट०	१२८	चरोऽपितं	८३
चण्डरश्मिरपि	६२	चलत्तुर०	१५२
चत्वारोऽथ	१२३	चाम्पेयभू०	१०६
चतुर्भुजोऽपि	१२	चारुताऽज०	६६

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
चिन्ता तु चित्ते	७४	चिरं वसंस्तत्र	३
चिरतरमि०	५१	चुरमुषार्थं०	४५
चिरं प्रस०	१५२	चूतनूतन०	६८
चिरं भुक्त्वा	६४	चूडाविधि०	७८
चिरं भुक्त्वा	१७०	चैत्रत्तपासु	३४
चिरस्य	१५३		

[ज]

जगदम्बां	१२०	जयसिंहः	१३१, १३२
जगदधीश०	४८	जलमयं जग०	५०
जगद्विदत्वा	८०	जागेश्वरः	२६५
जगदादि०	१३६	जाज्वल्य०	१२८
जघान लीला०	५	जात्योरेजुः	१७६
जज्वलुर्हुत०	६६	जातकर्मणि	२८
जज्वाल	१२७	जातकर्म०	६६
जजाप	१२५	जातीप्रसूनैः	१०६
जन्यं भीम०	१६८	जानुप्रणयि०	५५
जनयितार०	५१	जालैरिपू०	१५३
जनाननात्	८४	जित्वा रिपुं	५२
जनैर्मनो०	११३	जितवतोऽरि०	४६
जम्भद्विषं	३२	जितोऽमुना	१४७
जयनिवा०	१६२	जीमूताली	१७५
जयवंशमिदं	२०३	जैत्रं स०	११३
जयसिंह०	१४६	ज्ञाता धर्मं०	१८४

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
ज्ञानमक्रियं	६४	ज्योतिर्वरैः	८७
ज्ञातशील०	६६	ज्वालामुखीं	१३४
ज्येष्ठः पुरा	८५	ढुण्ढारव०	१२१
ज्योतिर्नय०	७६	ढुण्ढारी०	१२१

[त]

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
तच्छ्लोकसो०	५४	ततो रिपून्	१५२
तत्क्रीडेच्छ०	१६२	तत्र काशी०	११८
तत्केलिकर्म०	७६	तत्र ज्वाला०	१३४
तत्तीर्थं	१६६	तत्र तत्र	११८
तत्स्फोटन०	११६	तत्रत्यवि०	१६६
तत्सिंहना०	११८	तत्रत्यानपि	६४
तत्सेवाप०	१६६	तत्र तेन	६८
ततः करं	११५	तत्र तेभ्यः	११७
ततः पितुस्स्थानं	१६	तत्र दक्षिण०	७१
ततः प्रत्य०	११८	तत्र युद्धं	११८
ततः प्रत्यचलत्	५६	तत्र योध०	१३१
ततः प्रस्थित्य	१३०	तत्र योधा	१३१
ततः प्राप	६०	तत्रवार०	६८
ततस्सत्का०	१३३	तत्रश्राद्धं	१३३
ततस्सदूतादिति	६	तत्र स्वाज्ञां	१३३
ततोद्विजातेः	१०२	तत्राद्भुताने०	१०५
ततो दुर्म०	११८	तत्राम्बिकेश्वरं	१५
ततो यथावैभवं	५	तथा परः	१११

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
तथाप्यतीव	१३	तमिस्र०	१२८
तथापि पुंसे	७६	तयो रणेऽन्योन्य०	५
तदपि सोऽथ	५१	तस्माद्धैर्यं	१०४
तद्वेगात्	१२७	तस्मादपा०	११०
तद्व्यथां	१२४	तस्मादसूत	२७
तद्युद्धमा०	१५२	तस्मिन्क्षणे	११२
तदागमं	१००	तस्मिन् क्षणे	७७
तदानीम०	१३१	तस्मिन्पुरे	१६४
तदाविरासीत्	१२	तस्मिन्मही	१८२
तद्राजसद्म०	१०५	तस्मिन्वध्व:	१७८
तदीशं	१३४	तस्य प्रतिज्ञां	८५
तदुपदंशन०	५०	तस्यात्मजः	१६७
तदैश्वरं	१४७	तस्यात्मजं	३७
तन्मन्दिरं	४२	तस्यां दिश्यपि	६०
तन्नाम तात:	७८	तस्यां निजं	१६०
तन्निवर्त०	१२७	तस्यानुजो ज्ये०	८७
तपनमपि तताप	२३	तस्यानुजो ज्यौ०	८७
तपः कृशः	१५१	तस्यामसौ दुर्लभ०	३
तपस्विनः	१६४	तस्यावनी०	४१
तमन्वगुः	५४	तस्योपरि०	११०
तमभिवीक्ष्य	४६	तस्योपरि०	१८२
तमांसि बा०	१००	तं ग्राममासाद्य	८६
तमांसि	१२५	तं निशम्य	७१
तमिस्रेभ्यः	१२५	तं प्राप्य ता०	१०२

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
तं प्राप्य राजा	१००	तं रथस्थं	७१
तं मोचयन्नपि	४२	तं वोचय पाणि०	४०
तावतोऽपि	६१	ताःपश्यन्	२०१
तातेऽपि जी०	३६	तिरोहितायां	५२
ता नित्यं	१५८	तीर्थद्विजैः	१२२
तान्याबभा०	१५३	तुल्यतां न	६७
तापाय द्यु०	१८४	तुष्टितो न श०	६६
तापोऽह्नश्च	१७४	तेजस्विनोऽपि	३६
ताभ्यां सुता०	१५४	तेन ताः कृति०	६७
ताभिरद्भुत	६६	तेनधन्ववि०	६३
ताभिर्विलासान्	१०२	तेनाच्छिन०	१२०
ताभिस्तस्मिन्	१७६	तेनाम्बिका०	४०
ताभिस्सम्भुज्य	५६	तेषामनन्यप्रतिम०	१
ताभिस्स यौ०	३३	तैच्चयं तैच्चय०	५६
ताभिस्सोऽयं	१८०	तैर्वितीर्णः	१३३
ताभिस्सह	१०३	तैस्सार्धमरयन्त०	३
ताभी रराज	५६	त्रासं समासे०	७७
तामथो	१३२	त्रिदिवमधि	२६
तामापतन्तीं	६१	त्रिदिवपुरि सः	२३
ताम्राणि	१६३	त्रिस्रोतसा या	८०
तावप्यभू०	१५४	त्रेतां कलावपि	३१
तावाश्विनेयौ	७८	त्रैलोक्यमासीत्	१०३
तासु काचित्	७०	त्वदीयमेतत्	१३
तां विद्यां	१६५	त्वद्योग्यतां	१०२

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
त्वयाप्यमुष्मात्	८५	त्वयि यो रम्य०	६२
त्वयि नृप	५२	त्वं वासन्तीं	१०७

[द]

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
दक्षिणाब्धि०	७०	दानेषु	१५०
दग्धेऽपि सैन्ये	१०	दारभर्तृषु	६६
दण्ड्याम्भू०	१६०	दारुणो न	६५
दत्वा शिषो	२०१	दिगङ्गनाः	१४६
दत्वा दीक्षां	१७३	दिग्विजेता०	६४
ददर्श	१६६	दिने दिनेऽव०	७६
दन्तावलाः	५८	दिनेष्वतीतेषु	५
दन्तावल०	१२६	दिवं विहायैव	६
दम्भं दम्भिषु	५६	दिवस इव	२५
दम्भितानु०	६६	दिवाकरभ्रा०	७४
दयासरि०	१५०	दिवि दिवष०	२२
दलद्द्विष	१४८	दिनानां	१६३
दंशं दंशं	१२६	दीनारलक्षं	१०२
दाडिम्य उच्चैः	१०६	दीपा एते	१८१
दातारः	१५६	दुःखदस्सुख०	६८
दातारः	१८७	दुःखानि	१५०
दाधीचे	१५८	दुग्धाब्धि०	१५०
दानपात्रम्	६१	दुर्गानाथ	१६३
दानमुक्तिरति	६२	दुर्जनस्य	६७
दानवेन बलि०	७०	दुरधिगमं	२७

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
दुराचारि०	१२३	द्रोणोपनामा	१०७
दूतेन राजा	११०	द्वयोर्महद्युद्धमभूत्	३
देवानां	१६३	द्वयो राज्ञोः	१३१
देवारिवारि०	३५	द्वाराणि	१६४
देवालयाः	१०४	द्विजनुर्व०	१४१
देवालयः	१६६	द्विजाङ्गना०	१५०
देवोऽपि नूनं	१०७	द्विजातयो येन	७३
देव्योक्तं सकलं	१५	द्विजातिवर्य०	८३
देशस्सकः	३०	द्विजेन्द्रवर्य०	८४
देशस्सकः	७६	द्विजो जगाद	८३
दोलाधिरूढो	७८	द्विषञ्छरगणं	६१
दोष एव	६३	द्विषद्गजाली०	७८
दोषतापि	६३	द्विषतां श०	१३७
द्योसामसीमश्रियं	६	द्विषन्नृप०	१८१
द्यौर्भूमिः	१८२	द्विषोऽथ खड्गैः	१०

[ध]

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
धनुर्ध्वनि	१२	धर्ममूल०	६४
धनैः कुबेरीयति	१८	धर्मस्य	१८६
धन्या वयं	८०	धर्माधिका०	१६८
धरणी तं	१४६	धर्माय कार्या०	७४
धरा सरोमः	७७	धर्मेण शासन्	७५
धर्मदुर्मति०	६२	धर्मोदारः	१८६
धर्ममेव	६५	धान्यानि गो०	१०७

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
धार्मिकेऽवनि०	६४	धीरो वीरो	१७१
धाराभिर्वं०	१६५	धुरं धुर्यें	६४
धारावेश्मा०	१७५	धृतमौनि०	१३६
ध्वान्तं ध्वस्तं	१८०	धौत्रेति	१२२

[न]

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
न कीपहे०	१५१	नरेन्द्रतथ्यं	१०१
न क्षत्रजातं	७५	नरेन्द्र नैतत्	८२
नक्षत्राणां	१७६	नरेन्द्रमा०	१६०
न जङ्घकस्य०	५७	नरेन्द्रवर्या०	८०
नतं तमालचय	८	नरेन्द्रसः	१६२
न तानकार्षीत्	१६	नरेश वत्स	१३
नदी नदीना	१२	न वेद विद्यारतिं	१६
नदोज्झिता०	५३	न शङ्कतव्यं नर०	८
न दौर्लभेः कः	१५	नाष्टिमाप	६३
ननामतस्मै	८७	नकर्मद०	१६२
नभो मण्ड०	११३	नाज्ञाशक्तिः	१७३
न मन्दरेऽद्रौ	१४	नाथतामधि०	६१
नमोऽस्तुते देवि	४	नामधेयं	६६
नयनाञ्ज०	१३६	नाम्ना यः	१८२
नयमार्गं०	१४६	नाश्रयोऽज्ञ०	६५
नरनाथः	१३०	नासत्यता०	१०३
नरपतिपतिरूहे	२१	नास्तिकीमति०	६५
नरवाह०	१४१	नाहंयवः	५८

श्लोकाः	पृष्ठम्
निजभर्तृ०	२०१
निजमन्त्रि०	१४६
निजाह्निका०	८६
नितम्बगुर्वीः	५६
निद्रया०	१२५
निधाय तत्र	५
निम्नोन्नतप्र०	३७
निरर्था ते चिन्ता	२०२
निरम्बुदे	७७
निर्गुणस्य	६५
निरुत्तरस्सः	८३
निवेदिता सा	८४
निशम्य तत्सैन्यं	१२
निशि शया०	४६
निशीथे प्रेषि०	६३
निस्त्रिंशिनः	३८
निस्स्वत्वं	१५६
निहितप०	१८८
नीतयो न	६६
नीतिमार्गम्	६२
नीवृदन्तर०	६२
नृपतिनासि	४६
नृपतिरथ	५१
नृपतिरपि	४८
नृपतिर्व०	१४६
नृपतिरेत०	५०
नृपः प्रभाते	८५
नृपं स्वसेनाधि०	१७
नृसिंहदुर्गं	१०६
नृत्यादिकं	४२
नेत्रयस्य	१६०
नैवोचितं	८५
नैस्पृह्यं	१६६
नोतयोऽन्य०	६५
नोपद्रवं	५७

[प]

श्लोकाः	पृष्ठम्
पतिर्गवालेर०	६
पत्तयो जन्य०	५६
पत्तयोद्यत०	११३
पत्न्यां सती०	१५४
पथ्यौ प्रया०	१६०
पथि प्रयान्त्यः	१०८
पथि शुशोष	४५
पथि सा पात०	६१

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
पदं निधा०	१५४	परे जीव०	१२२
पदमधत्त	४८	परोवय: प्राप्त	१५
पदमाप्य	१४५	पश्चिमाशा०	१३०
पदातय:	१२७	पशुमप्य०	१४०
पदातयः	१६८	पलायमा०	१५२
पद्माकरः	१६५	पाककर्मखि	६६
परकान्तां	१२२	पाठक: पठन०	६४
परचक्रभयं	५७	पातालमाप्य	२६
पटणनाय०	४७	पात्रेभ्यः	१६०
परन्तपो भूत०	७४	पाथोधिं	१८५
परस्य कान्ता०	१४	पादातयः	३६
परस्पराभा०	८६	पादपद्‌ल०	६३
परस्त्रियं	१०३	पापेष्वालस्य०	५७
पराक्रमकान्त०	१	पारावरान्त०	२६
पराजित:	११५	पारिषीं सम०	७१
परापर०	१२६	पारिप्लवं चित्त०	७४
परिघमत्ति०	४६	पावयन्ति	६६
परिवैसु०	११७	पाहित्वं मां	४३
परिणाहिनि	१३६	पितरं पि०	१४५
परिणिन्ये स	५६	पितरि	१३८
परिणीय	१४३	पतिव्रतां	१२१
परिपाल०	१३७	पितु: पदं पाल०	१६
परिपाण्डु०	१३७	पितुः पदे	१५४
परिवेत्तान	५८	पितुरधिकमपारीत्	२३

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
पितुराहि०	१४५	पुरं स वर्द्धा०	५४
पितुर्ममास्तां	८	पुराजितानि	८०
पित्र्यं पदं	१४८	पुरीमुपेत्य	५२
पित्र्यं तत्पदं	१०	पुरी यदीया	२
पित्र्यं राज्यं	१७१	पुरोधसा वेद०	७८
पित्राज्ञया	८४	पुरोपरा०	१३६
पितॄणां तर्प०	११७	पुरोहितेनाहित०	७
पुण्य स्ये	१३०	पुष्करं	१३३
पुत्रजन्म०	६९	पूर्वप्रबन्धादवगत्य	१
पुत्रस्याध्य०	१६६	पूर्वस्यां दि०	११४
पुनरुच्चै०	१२७	पूर्वाद्रिवाप्त तु	१०५
पुनस्तयोः	११५	पूर्वेषां	१६१
पुरजात्म०	१३७	पृष्ठ्यप्रसि०	१५४
पुरमार्गं	१३७	पृथ्वीपालः	१७२
पुरस्य यस्य	१०८	पैतृकं पदं	६५
पुरं प्रवि०	१३३	पैतृकं पदं	६१
पुरं प्रविश्य	१०२	पौराणे	१६१
पुरं स्वकी०	२००	पौत्रात्मजः	५४

[प्र]

प्रचलत्य०	१४६	प्रजोनमेनं	१६
प्रचलत्तु०	१४७	प्रणम्य मातापितरौ	१
प्रजहार०	१३१	प्रणतित०	१८८
प्रजोननाम्नि	१६	प्रणिपातपरे	६३

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
प्रतापज्वलना०	५७	प्रवृत्तेऽथ	४८
प्रतापतः	१४६	प्रविश्य पुरं	६४
प्रतापतेजः	१४८	प्रवीरो	१२५
प्रतापदीप्र०	७३	प्रसन्नमू०	१६६
प्रतापध०	१४८	प्रसिद्धसू०	१४१
प्रतापभा०	१४८	प्रसेदुरन्तः	७७
प्रतापव०	१४८	प्रसेदुराशाः	२८
प्रतापसूर्ये	१४६	प्रशंसया त्वत्०	८१
प्रतापसू०	१४८	प्रहृतवानि०	४८
प्रतापहे०	१४८	प्रागेव रम्य०	५५
प्रतापाग्नौ	५७	प्रागेव हि	१२२
प्रतापाग्नौ	१८५	प्राच्यां ये ये	६०
प्रतापार्के	१८५	प्राज्ञि त्यक्त्वा	१७४
प्रतापैर०	१२६	प्राज्ञना यद्०	६६
प्रतिदिनमति०	२४	प्रातस्समुत्थाय	८३
प्रतिदिशं	४७	प्राप्यमर्थ०	६८
प्रतिनिकुञ्ज०	४६	प्राप्तं रण०	१५२
प्रतिश्रुता या	८३	प्रावृट्काले	६१
प्रतीपनृप	१८८	प्रासादमुख्य०	३२
प्रत्युतैते	१२३	प्रियानुयुक्ता	८२
प्रथमं न	१४४	प्रेम्णाबद्धाः	१७६
प्रथितः	१३५	प्रोच्येति विप्रः	१०१
प्रबुध्योषसि	६३	प्रोत्तुङ्गमत्त०	३८
प्रयुक्ते	१२५	प्रोवाच भूपाल०	१०१
प्रयोजनं नो०	६७	फुल्लत्सूनां	१७७

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
[ब]			
बतकष्ट०	१४४	बाणौघमच्छि०	४०
बतहन्त	१४४	बालापुरं	५४
बभूवतुर्द्वौ	८८	बालेन तेन	७७
बभूवतुर्द्वौं शि०	८६	बाल्यं राज्ञः	१८६
बलद्वये ऽन्योन्यं	१२	बिम्बं विधोः	३०
बलिप्रदानं	५३	बिल्हीति हे०	८६
बलीयसामग्र०	११	बुद्धिरागम०	६४
बहुभुजबलशाली	२१	बुध्यादेव	१८४
बहु सुखमिह	२०	ब्रह्मकर्म०	६६
[भ]			
भगवति भ०	५२	भिषग्वरैः	७६
भग्नेधनु०	१२३	भुजगभोजि०	४५
भल्लैः शरैः	१८१	भुवमवति	२५
भवतु ते वि०	४७	भुवं शशास	१६
भवत्स्वा०	११६	भुवि निली०	४६
भवन्मुखेन्दू०	१००	भुवोऽन्तरा०	१३
भविष्यति	६३	भूतानि भूतानि	७७
भागिनेयः	६६	भूपचापज०	७०
भाग्यं राज्ञः	४३	भूपानां	१५७
भानावस्तं	१७६	भूपाले	१५६
भानुश्चोरः	१७६	भूभर्तः	१६४
भानोस्ताप:	१७६	भूभर्ता	१६०
भारमल्लः	११६	भूमिगानि	६६

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
भूमीलोकं	१८०	भोगान्भो०	१७६
भूमीशः	१६६	भो राजन्	१६९
भूषणान्यपि	६७	भ्रातृवैरू०	१२०
भेरीध्वनि०	१८१	भ्रात्रर्थमात्मा०	८८

[म]

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
मत्प्रीतिपात्रं	८२	मनोरथान्	१०१
मदग्रजोऽसौ	८७	मलेषिनामा	१७
मदनमदम०	२७	मलेषिसूनुः	१८
मदाज्ञयेतः	१३	मसूरमु०	१९४
मध्यानुजः	८९	महाकाले०	१३०
मधुपुरीम०	४६	महीभुजे	१९१
मन्त्रागम०	१११	मही महीनेन	१९
मन्त्रागमाभि०	७६	महीन्द्र गौरी०	१७
मन्त्रागमाभि०	९०	महेशपूर्वा अपि	४
मन्त्रिणस्सम०	९९	मार्गे रक्षोभिः	३८
मन्त्रिभिस्सह	७२	मातापि	२००
मन्त्रीवरः	१८२	मात्रेत्थमुद्०	८५
मन्त्र्यन्यः	१५८	माधवत्तु	६८
मन्त्र्यासीत्	१५८	माधो राजो	१७३
मन्त्रोऽस्य	५६	मानसानि	६६
मन्दाकिन्याः	१७२	मान्यो राज्ञां	१७२
मनोगङ्गा०	५५	मा भैषीः	१२२
मनोरथः	१९८	मा शोचीरिह	६२

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
मांसलेन	६८	मृदमाद	१३८
मित्राणि मि०	५६	मेरुमुच्च०	६८
मित्राम्भोज०	१५६	मैत्रो मही०	१६६
मुक्तं मेघैः	१७५	मोहदुर्गं	११४
मुख्यावमा०	१११	मोहदुर्गं०	११८
मुख्यो य एव	३२	मोहदुर्गं०	१२०
मुदिरवृन्द०	५०	म्लाने धर्म०	१८७
मुष्ट्याघातैः	४३	म्लेच्छान्वि०	१०५
मूर्च्छितोऽथ	७१		

[य]

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
यं काममु०	१०६	यत्रावसन्	१०६
यच्छ्रुतं न	६२	यथावद०	१११
यः कञ्चुकी सूनु०	७	यथावदभ्यर्च्य	७६
यः क्षमौषध०	६४	यदीयगु०	१८७
यः पर्वणीग्राम०	७६	यदैव तौ	१११
यः प्रतापयति	६७	यद्दानना०	१५०
यः शैलश्च०	१०६	यद्यप्रिया वस्तु	७
यज्वा यज्व०	१४५	यद्यपि द्युति०	६२
यतः प्रतापोऽजनि	१	यद्वाजिनः	१८६
यत्कीतिरू०	१४६	यद्वातिगूढः	८१
यत्प्रताप०	६१	यन्त्रा गजस्थं	३६
यत्र प्रकृ०	१६२	यमाशाम०	१२६
यत्र सत्कृति०	६४	यमुनाचल०	११५
यत्राम्बिके०	१६५	यमुना पु०	११५

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
यशस्सुधा०	१४६	यात्रा भवति	१०६
यशोभिरा०	१४६	यात्रामित्थं	२००
यश्शैशवे सर्वं०	७	यादृक्नप्तं	१८६
यस्य प्रताप०	३१	यादृशी रति०	७०
यस्य प्रज्ञा०	१४८	यामन्वहं	१६५
यस्य भाति	१६१	यामाप्य	१६०
यस्य शास्त्र	७०	यामाश्रयद्भिस्सततं	२
यस्मिन्	१८५	यामाश्रयन्	८०
यस्मिन्नज०	१६७	यामुनेचल०	११७
यस्मिन्नरण्य०	१०६	यां योऽध्यतिष्ठत्स	२
यस्मिन् प्रजाः	२	यावान्यावान्	१८०
यस्मिन्भा०	१८३	या वाहिनी	५३
यस्मिन् म०	१५४	याशोकीया	१७४
यस्मिन्यस्य	१८४	यासां तत्प्र०	१५७
यस्मिन्यु०	१८६	युद्धं महत्	६०
यस्मिन्वना०	१६१	युद्धं रथा अपि	३६
यस्मिन्वस०	१६७	युधिष्ठिरादपि	१८
यस्याभूवन्	१७३	यूयं किं	११६
यस्यां विरेजुः	१०७	ये शास्त्रिणः	८१
यस्योपदे०	१५१	यो जनोऽत्र	६७
यस्यौजोभिः	१७१	योद्धव्यमेतेन	८
या कापि तस्य	३५	योद्धुं जा०	१२३
या कामधेनुः	१०१	योद्धारः	१६८
यागानपि	१६१	योधाधिपः	१८१

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
योऽधीशः	१६१	यो हालाहल०	२०२
योऽमात्य:	१६१	यौवनोद्भव०	६७
यो लोकानुदितः	२०१	यौष्माकीणे	४३

[र]

रजसाप०	१४३	रसान्तरे गार्ध्यं	७
रजस्वलत्वं	१४	राजदुर्गं	११४
रजस्वला वध्वः	५७	राजन्वती या	७
रजोभिरावृते	६०	राजन्वत्तव	१६५
रजोभिरौ०	११३	राजन्यवे०	५३
रणभीम:	११६	राजराज:	१३२
रणभीमेन	११५	राजहंसः	६७
रणमभि०	१८८	राजाकदा०	१५२
रणाङ्गणे	१२५	राजा कदाचित्खलु	८
रत्नाकर:	१११	राजानं	१६२
रत्नानि	११३	राजानो दा०	५६
रथध्वानिघन०	६०	राजापि द्विष०	६१
रथावरू०	११३	राजापि यो नैव	१
रथिनोऽपि	५८	राजावली	३७
रदारदि	१०	राजामात्य:	१८६
रमणी	१३६	राजासमुत्थाय	८३
रममाणा:	१३२	राजिकापरि०	६७
रविरनुद०	५१	राज्ञी काचित्	१६१
रसालवृक्षा:	१०५	राज्ञीनृप०	१८२

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
राज्ञीभिराभिः	७५	रिपुरुदञ्चि०	५०
राज्ञोऽप्यास०	१७३	रिपौ हते वीर्य०	६
राज्ञोऽमात्याश्च	५८	रुदतोऽपि	५८
राज्यं विधाय	७२	रूपधेय०	१६१
राज्यानि	१६४	रूपधेयं	६७
रात्रिन्दिव०	५६	रूपेति ना०	१६०
रामदुर्ग०	११४	रूपोदारा	१७३
रामदुर्गेश०	११६,११७	रेजे कामः	५५
रामसिंह०	७०	रेजे चन्द्रः	१७५
रामाधर०	१०३	रेरे भटाः	१५३
रामा भ्रमन्त्या	१०३	रैपर्वी शर०	७०
रामेश्वरं	१३१	रोगितैव	६७
रामोरमा०	१०६	रोष एव	६६
रिपुनृपो नृ०	४६	रोषवेगवश०	७१
रिपुबलमबलीयः	२१	रोषाकुलः	८४

[ल]

लघुर्महीयांसं	१५	लालली०	११६
ललालल०	११६	लावण्यशील०	३३
लङ्केव सा	१२८	लाहोराख्यं	१३४
लघ्वीपुरी	१०६	लुभ्यतापि	६६
लक्ष्म्यन्धाः	१६४	लोध्रो रेणुः	१७७

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
[व]			
वचस्स्मरन्	१३	वल्गो वा	१२६
वचांसि जग्राह	८०	वह्निद्विशून्येन्दु०	२
वचोऽधिचे०	११६	वन्हिना	१२८
वचोनिशम्य	८५	वन्हिस्सर्वं	१७१
वचोभिरेतैः	१३	वाणिज्यं	१५६
वधूभिरासेवि	१८	वाताधूताः	१७७
वनानि चक्रे	७३	वातायनस्था	१०५
वनेवस०	१४६	वातायनेभ्यः	१०५
वयंविश्वे०	११६	वाते शीते	१७६
वरूथिनः	१६८	वामापि वाम्यं	७४
वल्लभस्य	६७	वामालीभिः	१७७
वशीचकार	६०	वायव्या०	१२६
वसूनि सूते	७४	वायव्यास्त्रे०	१२७
वस्रोजो०	१७६	वाराङ्गना०	१०८
वन्दारुः	१५७	वाराणसी०	१२७
वन्द्यावन्द्य०	१४२	वारुणी	१३१
वर्षत्स्वम्भो०	१७५	वाहाली०	१३५
वर्षन्त्वम्बु०	१८६	वाहास्सिताः	१६८
वर्षन्तीभि	११५	वाहिनीतट०	६५
वर्षाम्बुदा	३२	वाहिनी०	१२६
वर्षासु वर्षति	३४	विकर्त्तनौजाः	७४
वर्षासु वापु०	३६	विकासगन्धा०	१०६
वर्णाश्च सर्वे	२	विक्रमक्रान्त०	५६

श्लोकाः	पृष्ठम्
विघ्नो व्रीड०	१२०
विच्छिद्य०	१२०
विचार्यं चञ्चद्भुज०	८
विजिगीषा	५६
विजिगीषुः	६०
विजित्य शत्रून्	१६
विदुषां	१३६
विद्यया विर०	६८
विद्यया विहि०	६५
विद्यया सह	६६
विद्ययैहिक०	६७
विद्याम्भो०	१५५
विद्यावतां	३२
विद्यावतां	८१
विद्यावतां	१३४
विद्यासु सर्वासु	७३
विद्वद्गोष्ठी	१७२
विद्वान्न	१५०
विद्वान्सः सन्ति	२०३
विधवताधः०	४५
विधाय	१६६
विधिभार०	६१
विधुवति निज०	२२
विध्युक्तं	१६३
विनष्टिं	१२६
विनायकः	१२४
विपश्चितां वेश्व०	७४
विमुखो न	१४१
विरुदत्	१४४
विलक्षास	१३८
विलोकनात्	१००
विलोक्य तां	१२
विलोचनैः	१०८
विवादमित्थं	१४
विवाहिता	१६१
विश्वासितः	८८
विश्वेश्वरः	१०४
विश्वेश्वरः	१६२
विषभूमि०	१४४
विषयानुप०	५६
विषेदुरङ्गानि	७
वीतस्पृहः	१५१
वीरसूः	१२४
वीराग्रणीर्व०	३५
वीराग्रणी	१२४
वीराधमः	११८
वृणुतेस्म	१३६
वृन्दावने ह०	३४

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
वेश्यावेशा०	१७३	व्यजनादि०	१४३
वैणिकैरधि०	६८	व्यदधुरवनि०	२०
वैतालिको०	१८१	व्यधित तत्र	४७
वैदिकी सर०	६४	व्यापकत्वमस्ति	६२
वैदुष्यमध्या०	८७	व्याप्तिरेव	६५
वैनतेय०	१२६	व्यूढां निवे०	४१
वैनतेया०	१२६	व्यूढा वधूः	४१
वैरिवत्तस्ति	७१	व्रजपतिं व्र०	४६
वैशाखे	१८२		

[श]

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
शक्तिं नृपो०	४०	शरवर्षैः	१२०
शक्तिमपि	६१	शरविद्धः	११४
शक्तिमायुध०	५०	शर्मणे निखि०	६५
शक्तिवाट्सु	६५	शालोविशा०	१०८
शक्त्याऽभि०	१३२	शालो वि०	१६४
शक्त्योरो०	११४	शासति प्रिय०	६५
शङ्कित्वे ति	१५६	शास्त्रान्तर०	१५१
शपस्यरातौ	६	शिप्रायां	१३०
शम्भुस्तेने	१७१	शिरस्येकः	६०
शम्भो मे	६३	शिवपुरीम०	४७
शमितमस्त्र०	५०	शिशुखेल०	१४२
शयनाश्र०	१४३	शिशुताश्र०	१४३
शरणाग०	१७१	शिशुरेव	१३८
शरमात्र०	६१	शिष्यप्रशि०	८६

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
शिष्यैस्तदीयैः	८६	श्रीजिन्मह०	१६६
शीलाचार०	१८६	श्रीमान्सवा०	१८३
शुकाश्शुकी०	१०४	श्रीमानसिंह०	३६
शुण्ठीलव०	१६४	श्रीश्रद्धापि	६७
शुद्धस्वान्ता	१७२	श्रुतिमन्त्र०	१४१
शुभे मुहूर्ते	७८	श्रुत्वेत्यनीति०	४१
शुभे मुहूर्ते	८२	श्रुत्वा प्रती०	१११
शूरताच	६७	श्रुत्वाम्बिका०	३८
शूरतां सम०	६१	श्रुत्वा यस्य	६६
शैरीषीषु	१७४	श्रुत्वेति	११५
शैशवेऽपि	६६	श्रुत्वेति	१५३
शोकः कः	१६०	श्रुत्वेत्थं	१६६
श्यामस्य पुत्रः	८६	श्रुत्वेत्थं	१६६
श्यामाभिधानः	८६	श्लोकद्वये	१६१
श्रियः परि०	१२२	श्वो नौ पुनः	६३
श्रियोऽर्जकः	८७		

[स]

संग्रामभूमि०	३५	संश्चक्रे	१६२
संग्रामरूप०	३७	संस्थं नावि	१७८
संमोह्यतं	१३३	स इत्थमुक्तः	८८
संवत्सरे	१८२	स उत्तरस्यां	५३
संवाह्यमानं	३८	स एकदा	१८१
संस्कृतीरकृत	६८	सकलाः	१३८

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
सकला	१४२	स निजशक्ति०	४८
स काकिल:	११	सनीतयोऽप्यत्र	११
स कोट्यधीशः	८७	स पञ्चवारेश०	३
सचेत्र पाल:	१९६	सप्ताङ्गरा०	१५४
सचेतनं रोगि०	८८	सभवति वनवीरे	२२
स छिन्नभिन्नाप०	१०	स भाण्डरेजीपतिः	८
सतापर्तौ	५४	सम्पत्तिः	१५७
सतूलगर्भा०	७७	सम्पत्तौ	१५७
स तेषां त्रास०	६२	सम्पदीन्द्रः	५५
सत्क्षत्रजाता	८४	सम्पूज्य विप्रान्	७८
सत्ये रता	७५	सम्प्रार्थितः	१०२
स दशाह०	१४५	समतनोत्	४७
स दुर्लभस्स्वस्य	३	स मन्दिरे	५३
सदैव कर्णः	१९७	समसूत	१३८
सन्तः काव्य०	२०२	समहरत्स्व०	४५
सन्तानभूमी०	१०१	समाज्ञया यः	९०
सन्तापान्	१६४	समाधिभाजोऽपि	६
सन्ति क्षोणी०	१७१	सम्राट्कुल०	१००
सन्तो ये	१६३	समांसमीनाः	७५
सन्तोषमन्तः	७४	सम्मेनेगणाः	१६०
सन्नते सक्त०	६५	सरसयाव०	२००
सन्नद्धानि०	१६८	सरसा मनोज्ञ०	२०२
सन्मन्दिरे	१०९	स राजदेवः	१८
सन्मन्दिरे	१९३	स राजमा०	१९३

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
स राजमार्गः	१०७	साशा च का	३१
स राज्यमित्थं	१८	सितपक्षेन्दु०	५६
सरिति तत्र	४७	सितसरोज०	४५
सरोजरा०	१६३	सिन्ध्योऽपि	१६४
सर्वथा पर०	६७	सिन्ध्योऽभूत्	१६७
सर्वेऽपि	२००	सिंहतामधि०	६७
सर्वेऽप्यमा०	१४७	सीतापतिः	१०५
सर्वेऽप्युच्चैः	५८	सीतापतिः	१६२
स वधूजनः	१३६	सीतारामेण	२०३
स वरूथ०	१४०	सीमन्तसंस्का०	७६
सविस्मयः	८१	सुकृतविनय०	२६
ससुवर्ण०	१४१	सुगन्धित०	१०८
स सैन्यमुद्घोषित०	११	सुगन्धिता०	१०६
सहसा	११७	सुजयः	१२१
सहस्रच०	१८६	सुजयः	१२२
सागरोऽपि	६३	सुतनाम	१४२
सा दक्षिणाशां	८०	सुतमजनि च	२५
साध्वसाधु०	६७	सुतमधिपति०	२४
सा मन्त्रिणः	१६०	सुतेन तुल्यः	८६
साभिमञ्जन०	२०१	सुतोत्पत्तिः	२७
सामीप्यभाजः	८०	सुतोऽभवत्तत्र	१६
सा राज्ञी	१६२	सुधासिता	१०४
सारोऽयमु०	१०४	सुपर्वणां	१५०
सा वाहिनी	१६६	सुपुण्यकर्मा०	१६

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
सुमदं हन्तु०	१२०	सोऽरिर्मो०	१२५
सुमुखी परा	१३७	सोसिसास:	११६
सुरास्स्वरपि	१४	सौजन्य०	१६०
सुवर्णकुड्येषु	१४	सौहार्दं	१५५
सुवर्णचामी०	११२	सौहृदं खलु	६६
सुष्ठु कर्म	६६	स्तनद्वयं पीव०	७६
सुष्ठुपद्मधन	६७	स्तम्भादुत्थाय	२०२
सेनायां जय०	११५	स्तेयादिका	५७
सेनां सन्नह्य	११५	स्नात्वा गङ्गा०	१२६
सेव्य एव	६३	स्वकीर्तिमु०	७३
सैन्यत्तये सत्यपि	६	स्वच्छाम्बु०	१६३
सैन्ये उभे	३६	स्वधर्मपत्नी	१८
सोढा धर्म०	१८४	स्वधर्ममु०	१०८
सोपतस्थे	६२	स्वप्ने निशा०	५२
सोऽपि जाजी	११६	स्वपौरत०	१०६
सोऽयं कदा०	१६८	स्वभ्रातृजीवे०	८८
सोऽयं कदाचित्	८७	स्वमुत्पादकं	११२
सोऽयं नृपोधर्म०	२	स्वर्गं गते स्वे	२
सोऽयं भूप०	१६७	स्वर्गलोके	१७२
सोऽयं भूमि०	४३	स्वर्यातस्य पितुः	५

श्लोकाः	पृष्ठम्	श्लोकाः	पृष्ठम्
स्वविक्रमोपाय०	१७	स्वर्थैकट्ट०	१६२
स्वसारमासार	१६	स्वेदाम्बूनां	१७५
स्वसुहृद्वनिता०	५७	स्वैर्भल्लैः	१६६
स्वामिनं समु०	७१	स्मितकान्ति०	१२७
स्वामिन्स्वामी	१८१		

[ह]

हंसालापः	१७६	हस्तिनः	१२८
हंसालीयं	१७७	हाहाकारः	१२४
हट्टे क्वचित्	१०७	हासो हर्षः	१८०
हट्टेषु	१६३	हिण्डोनमा०	८६
हतनयमन०	२६	हिण्डोनराज्यं	८६
हता हता एव	१६	हितोपदेशात्	७३
हतेषु सर्वेषु	४	हीनता घन०	६८
हत्वेरथमुद्धनं	४०	हूणकाम्बोज०	६४
हरिणा	१४३	हेतोरतस्त्वं	६
हरिप्रस्थं	१३३	हेम्नस्तुला०	१६०
हरो हरिर्वा	१२	हैमन्तिकीषु	३४
हर्षयन्नभि०	७२	हैमन्युच्चैः	१७६
हवनोत्थि०	१४०	हैयङ्गवीनचौरो	२०२
हव्यवाडपि	६२		

मुद्रकः—राजस्थान प्रिंटिङ्ग वर्क्स, जयपुर ।

मुद्रक :—
राजस्थान प्रिंटिङ्ग वर्क्स
जयपुर